साक्षी की साधना

प्रवचन-क्रम

1. ध्यान अक्रिया है...3

2. अहंकार का विसर्जन...11

3. अनंत धैर्य और प्रतीक्षा..18

4. श्रद्धा-अश्रद्धा से मुक्ति...32

5. सहज जीवन-परिवर्तन...50

6. विवेक का जागरण...65

7. प्रेम है परम सौंदर्य..81

8. समाधि का आगमन...96

9. ध्यान आत्मिक दशा है..112

10...साक्षीभाव
.... 117

11...ध्यान एकमात्र योग है
.... 132

12...सत्य की खोज
.... 144

13...ध्यान का द्वार: सरलता
.... 154

पुस्तक परिचय-

‘जिज्ञासा के हल करने के दो रास्ते हो सकते हैं। एक रास्ता है फिलासफी का, तत्वज्ञान का--कि हम सोचें और विचार करें कि हम कौन हैं? किसलिए हैं? और जीवन की पहेली के संबंध में चिंतन के माध्यम से कोई समाधान खोजें।
इस भांति जो समाधान खोजा जाएगा, वह बौद्धिक होगा। विचार करके हम निर्णय करेंगे। पश्चिम ने वैसा रास्ता पकड़ा। पश्चिम में जो फिलासफी का जन्म हुआ, वह चिंतन के माध्यम से, विचार के माध्यम से सत्य को जानने की चेष्टा से हुआ। पिछले ढाई हजार वर्षों में वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे।
भारत ने एक बिल्कुल नया दृष्टिकोण, एक बिल्कुल नया द्वार खोलने की कोशिश की। वह द्वार चिंतन का न होकर दर्शन का है। वह फिलासफी का न होकर दर्शन का है।
दर्शन का अर्थ हैः हम सत्य को विचारना नहीं चाहते, हम सत्य को देखना चाहते हैं। विचारना और देखना, ये दोनों बहुत अलग बातें हैं। देखने पर अगर प्रश्न अटक गया, तो सवाल यह नहीं है कि वहां ईश्वर या आत्मा जैसा कोई है, सवाल यह है कि मेरे पास उसके प्रति संवेदित होने को आंख है या नहीं? इसलिए भारतीय दर्शन केंद्रित हो गया मनुष्य के भीतर अंतःचक्षु के विकास पर।’ सदगुरु ओशो के अनुसार वह भीतरी आंख साक्षी की साधना द्वारा खुलती है।
इस पुस्तक के 13 प्रवचन प्रत्येक साधक के लिए पठनीय और करणीय हैं।

1

साक्षी की साधना
पहला प्रवचन

ध्यान अक्रिया है

हम ध्यान के लिए बैठे थे। ध्यान से मेरा प्रयोजन है एक चित्त की ऐसी स्थिति जहां कोई संताप, जहां कोई प्रश्न, जहां कोई जिज्ञासा शेष न रह जाए। हम निरंतर जीवन-सत्य के संबंध में कुछ न कुछ पूछ रहे हैं। ऐसा मनुष्य खोजना कठिन है जो जीवन के सत्य के संबंध में किसी जिज्ञासा को न लिए हो। न तो हमें इस बात का कोई ज्ञान है कि हम कौन हैं, न हमें इस बात का कोई ज्ञान है कि हमारे चारों ओर जो जगत फैला है, वह क्या है। हम जीवन के बीच में अपने को पाते हैं बिना किसी उत्तर के, बिना किसी समाधान के। चारों तरफ प्रश्न हैं और उनके बीच में मनुष्य अपने को घिरा हुआ पाता है।
इन प्रश्नों में कुछ तो अत्यंत जीवन की बुनियाद से संबंधित हैं। जैसे--मैं क्यों हूं? मेरी सत्ता क्यों है? मेरे होने की क्या आवश्यकता है? क्या अनिवार्यता है? और फिर मैं कौन हूं? और यह जन्म और मृत्यु और जीवन का यह सारा व्यापार क्यों है? यह जिज्ञासा, यह प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति के मन में--चाहे वह किसी धर्म में पैदा हो, चाहे किसी देश में पैदा हो--उठता है।
इस जिज्ञासा के हल करने के दो रास्ते हो सकते हैं। एक रास्ता है फिलासफी का, तत्वज्ञान का--कि हम सोचें और विचार करें कि हम कौन हैं? किसलिए हैं? और जीवन की पहेली के संबंध में चिंतन के माध्यम से कोई समाधान खोजें।
इस भांति जो समाधान खोजा जाएगा, वह बौद्धिक होगा। विचार करके हम निर्णय करेंगे। पश्चिम ने वैसा रास्ता पकड़ा। पश्चिम में जो फिलासफी का जन्म हुआ, वह चिंतन के माध्यम से, विचार के माध्यम से सत्य को जानने की चेष्टा से हुआ।
भारत में फिलासफी जैसी कोई चीज पैदा नहीं हुई। जो लोग भारतीय दर्शन
को भी फिलासफी कहते हैं, वे नितांत भूल की बात करते हैं। वे शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। फिलासफी और दर्शन पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। पश्चिम में उन्होंने सोचा कि विचार के द्वारा हम सत्य के किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाएंगे। पिछले ढाई हजार वर्षों में वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे। एक चिंतक दूसरे चिंतक से सहमत नहीं होता। एक चिंतक युवा अवस्था में जो कहता है, स्वयं ही बुढ़ापे में उसे बदल देता है। आज जो कहता है, कल परिवर्तित हो जाता है। शाश्वत और नित्य सत्य पर चिंतन नहीं ले जा सका।
असल में विचार ले भी नहीं जा सकता है। विचार का अर्थ हैः हम उन बातों
के संबंध में सोच रहे हैं जो अननोन हैं, अज्ञात हैं, जिन्हें हम जानते नहीं। जैसे मुझे प्रीतिकर लगता है कि मैं कहूं, जैसे अंधा प्रकाश के संबंध में विचार करे, तो विचार करेगा क्या? आंख जिसके पास नहीं हैं, प्रकाश के संबंध में विचार करने का कोई उपाय भी उसके पास नहीं है। कोई धारणा, कोई कंसेप्शन वह प्रकाश का नहीं बना सकता है। उसका चिंतन सब अंधेरे में टटोलना हो जाएगा।
शायद आपको यह ख्याल हो कि अंधे को कम से कम अंधेरा तो दिखता होगा! सोच सकता है कि अंधेरे के विपरीत जो है वह प्रकाश होगा। लेकिन मैं आपको स्मरण दिलाऊं, अंधे को अंधेरा भी दिखता नहीं। अंधे को अंधेरा भी नहीं दिखता है, क्योंकि अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। न अंधे को अंधेरे का पता है और न प्रकाश का पता है। उसे विपरीत का भी पता नहीं है, इसलिए प्रकाश के संबंध में कोई धारणा बनाने की सुविधा उसे नहीं है।
जीवन-सत्य के प्रति लगभग हम अंधे हैं। हम जो भी सोचेंगे, जो भी विचार करेंगे, वह हमें किसी समाधान पर ले जाने वाला नहीं है। इसलिए भारत ने एक बिल्कुल नया दृष्टिकोण, एक बिल्कुल नया द्वार खोलने की कोशिश की। वह द्वार चिंतन का न होकर दर्शन का है। वह फिलासफी का न होकर दर्शन का है।

दर्शन का अर्थ हैः हम सत्य को विचारना नहीं चाहते, हम सत्य को देखना चाहते हैं। विचारना और देखना, ये दोनों बहुत अलग बातें हैं। हम सत्य को विचारना नहीं चाहते, हम विचार भी नहीं सकते, हम सत्य को देखना चाहते हैं। अगर देखना चाहते हैं, तो प्रश्न की भूमिका बदल जाएगी। तब तर्क सहयोगी न होगा। चिंतन का सहयोगी है तर्क, लॉजिक। और अगर दर्शन, देखना है, तो तर्क सहयोगी न होगा, तब सहयोगी योग होगा। इसलिए पूरब में दर्शन के साथ योग विकसित हुआ, पश्चिम में फिलासफी के साथ तर्क विकसित हुआ। तर्क पृष्ठभूमि है चिंतन की, योग पृष्ठभूमि है दर्शन की। देखने पर अगर प्रश्न अटक गया, तो सवाल यह नहीं है कि वहां ईश्वर या आत्मा जैसा कोई है, सवाल यह है कि मेरे पास उसके प्रति संवेदित होने को आंख है या नहीं? असली सवाल तब सत्य का न होकर आंख का हो जाएगा। अगर मेरे पास आंख है, तो जो भी है, उसे मैं देख सकूंगा। और अगर मेरे पास आंख नहीं है, तो जो भी हो, वह मेरे लिए अज्ञात हो जाएगा। इसलिए भारतीय दर्शन केंद्रित हो गया मनुष्य के भीतर अंतःचक्षु के विकास पर।
बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। मौलुंकपुत्त नाम के एक युवक ने बुद्ध
से जाकर ग्यारह प्रश्न पूछे थे। उन ग्यारह प्रश्नों में जीवन के सारे प्रश्न आ जाते हैं। उन ग्यारह प्रश्नों में, तत्व-चिंतन जिन्हें सोचता है, वे सारी समस्याएं आ जाती हैं। बहुत मीठा संवाद हुआ। मौलुंकपुत्त ने अपने प्रश्न पूछे। बुद्ध ने कहाः मेरी एक बात सुनोगे? छह महीने, साल भर रुक सकते हो? साल भर प्रतीक्षा कर सकते हो? अच्छा हो कि साल भर मेरे पास रुक जाओ। साल भर बाद मुझसे पूछ लेना। मैं तुम्हें उत्तर दे दूंगा। मौलुंकपुत्त ने कहाः अगर उत्तर आपको ज्ञात है, तो अभी दे दें। और अगर ज्ञात नहीं है, तो स्पष्ट अपने अज्ञान को स्वीकार कर लें, मैं लौट जाऊं। क्या साल भर आपको चिंतन करना पड़ेगा, तब आप उत्तर देंगे?
बुद्ध ने कहाः मुझसे पहले भी तुमने ये प्रश्न किसी से पूछे थे? मौलुंकपुत्त ने कहाः अनेकों से। लेकिन उन सभी ने तत्काल उत्तर दे दिए, किसी ने भी यह नहीं कहा कि इतने दिन रुक जाओ।
बुद्ध ने कहाः अगर वे उत्तर उत्तर थे, तो तुम अब भी उन्हीं प्रश्नों
को क्यों पूछते चले जाते हो? अगर वे उत्तर वस्तुतः उत्तर बन गए होते, तो अब तुम्हें दुबारा उन्हीं प्रश्नों को पूछने की जरूरत न रह जाती। इतना तो निश्चित है कि तुम फिर उन्हीं को पूछ रहे हो। वे उत्तर, जो तुम्हें दिए गए, उत्तर साबित नहीं हुए हैं। मैं भी तुम्हें तत्काल उत्तर दे सकता हूं, लेकिन वे उत्तर व्यर्थ होंगे। असल में किसी भी दूसरे के दिए गए उत्तर व्यर्थ होंगे। उत्तर तुममें पैदा होने चाहिए। इसलिए मैं कह रहा हूं कि वर्ष भर रुक जाओ। और अगर तुम वर्ष भर के बाद पूछोगे, तो मैं उत्तर दूंगा। बुद्ध का एक शिष्य था, आनंद, वह यह बात सुन कर हंसने लगा। उसने मौलुंकपुत्त से कहा कि तुम इनकी बातों में मत आना। मैं कोई बीस वर्षों से इनके निकट हूं। अनेक लोग आए और उन अनेक लोगों ने अनेक विध प्रश्न पूछे। बुद्ध सबसे यही कहते हैंः वर्ष रुक जाओ, दो वर्ष रुक जाओ। मैं प्रतीक्षा करता रहा कि वर्ष भर बाद, दो वर्ष बाद वे पूछेंगे और हमें बुद्ध के उत्तर ज्ञात हो सकेंगे। लेकिन न मालूम क्या होता है, वर्ष भर बाद, दो वर्ष बाद वे पूछते नहीं, और बुद्ध के क्या उत्तर हैं, आज तक पता नहीं चल पाए हैं। इसलिए अगर पूछना है तो अभी पूछ लो, यह तो तय है कि वर्ष भर बाद तुम पूछोगे नहीं। बुद्ध ने कहाः मैं अपने वचन पर निर्भर रहूंगा, तुमने पूछे तो उत्तर दूंगा। तुम पूछो ही न, तो बात अलग है।
मौलुंकपुत्त वर्ष भर रुका। वर्ष भर बाद बुद्ध ने कहा कि पूछते हो?
वह हंसने लगा, वह बोलाः पूछने की कोई जरूरत नहीं है।
भारत की पूरी की पूरी जो पकड़ है, जो एप्रोच है सत्य के प्रति, वह बाहर
से उत्तर उपलब्ध करने की नहीं, भीतर एक द्वार खोलने की है। उस द्वार के खुलने पर, प्रश्नों के पर्टिकुलर उत्तर मिलते हैं, ऐसा नहीं, असल में प्रश्न गिर जाते हैं। प्रश्नों का उत्तर मिलना एक बात है, प्रश्नों का गिर जाना बिल्कुल दूसरी भूमिका की बात है। महत्वपूर्ण उत्तर का मिलना नहीं है, महत्वपूर्ण प्रश्न का गिर जाना है। हमारे मुल्क के लंबे योगिक

प्रयोगों ने कुछ निष्कर्ष दिए हैं। उनमें निष्कर्ष एक यह हैः प्रश्न हमारे अशांत चित्त की उत्पत्ति है। चित्त शांत हो जाए, प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। समस्त प्रश्न हमारे अशांत, उद्विग्न चित्त की उत्पत्ति हैं। ईश्वर के संबंध में, जन्म के संबंध में, मृत्यु के संबंध में--समस्त प्रश्न मात्र अशांत चित्त की उत्पत्ति हैं। चित्त शांत हो जाए, वे विसर्जित हो जाते हैं।
निष्प्रश्न हो जाना ज्ञान को उपलब्ध हो जाना है। प्रश्नों के उत्तर
पा लेना पांडित्य को उपलब्ध होना है, निष्प्रश्न हो जाना ज्ञान को उपलब्ध हो जाना है। प्रश्नों के बहुत उत्तर याद कर लेना बौद्धिक है, प्रश्नों का विसर्जन आत्मिक है।
जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, उससे कोई विशेष प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलेगा, क्रमशः धीरे-धीरे प्रश्न विसर्जित हो जाएंगे। एक निष्प्रश्न चित्त की स्थिति बनेगी, वही समाधान है, वही समाधि है। जहां कोई प्रश्न खोजे से न उठे, जहां जीवन के प्रति कोई जिज्ञासा जाग्रत न हो, जहां कोई उद्विग्नता, जहां कुछ अज्ञात सा प्रतीत न हो, जहां कुछ भी मुझे जानना है ऐसी उत्तेजना शेष न रह जाए, उसी क्षण--इस प्रश्नों के गिर जाने की निःशंक, निःसंदिग्ध हो जाने की स्थिति में--व्यक्ति को सत्य का साक्षात होता है। प्रश्नों के होने पर सत्य खोजा नहीं जा सकता, प्रश्नों के गिर जाने पर सत्य प्रकट हो जाता है।
इसीलिए हम समाधि को समाधान कहते हैं। समाधि का अर्थ ही समाधान है। यह समाधान कोई दूसरा व्यक्ति किसी को दे सकता है, अगर कोई ऐसा कहता हो, तो वह वंचक है, वंचना कर रहा है। यह समाधान कोई दूसरा व्यक्ति आपको दे सकता है, ऐसा कोई दावा करता हो, वह आपके अज्ञान का शोषण कर रहा है। कोई भी दावा करता हो--कोई पैगंबर, कोई तीर्थंकर, कोई अवतार अगर यह दावा करे कि यह ज्ञान मैं आपको दे सकता हूं--तो वह धोखे की बात कह रहा है। वह केवल आपके अज्ञान का शोषण कर रहा है, उसे सत्य का ज्ञान नहीं है।
इसलिए कोई तीर्थंकर, कोई अवतार, कोई पैगंबर यह दावा नहीं करता कि मैं आपको ज्ञान दे सकता हूं। वह केवल इतना कह सकता है कि मुझे ज्ञान कैसे उपलब्ध हुआ, उसकी विधि की मैं चर्चा कर सकता हूं। किसी को ठीक प्रतीत हो, उसका उपयोग कर ले। ज्ञान नहीं दिया जा सकता; मैं कैसे ज्ञान तक पहुंचा, इसकी विधि के बाबत चर्चा की जा सकती है। सत्य नहीं दिया जा सकता; सत्य का अंतःसाक्षात कैसे हुआ, उस "कैसे" का उत्तर दिया जा सकता है। सत्य क्या है, इसका उत्तर नहीं; सत्य कैसे साक्षात हुआ, इसका उत्तर दिया जा सकता है। जो "क्या" का उत्तर देते हैं, वे फिलासफर, वे चिंतक हैं। जो "कैसे" का उत्तर देते हैं, वे योगी हैं।
योग "कैसे" का उत्तर है--अंतःचक्षु कैसे खुल सकते हैं? और जो भी सत्ता है, उसके हम आमने-सामने कैसे खड़े हो सकते हैं? उस सत्ता से एनकाउंटर कैसे हो सकता है? उस सत्ता से साक्षात कैसे हो सकता है?
अगर यह बात समझ में आए, तो प्रश्न खोजने और उत्तर खोजने की दिशा व्यर्थ हो जाएगी। तब प्रश्न को विसर्जित करने की दिशा सार्थक होगी। जिसको मैं ध्यान कह रहा हूं, वह प्रश्नों को विसर्जित करने की दिशा है। प्रश्न हैं, क्योंकि विचार हैं; प्रश्न हैं, क्योंकि चित्त में विचार हैं; अगर विचार न रह जाएं, प्रश्न भी नहीं रह जाएंगे। निर्विचार चित्त में कौन सा प्रश्न उठेगा? कैसे उठेगा? प्रश्न का ढांचा तो विचार से बंधा है। अगर विचार शून्य हो जाएं चित्त में, तो कोई प्रश्न न उठेगा, कोई जिज्ञासा जाग्रत न होगी। उस शांत क्षण में, जहां कोई जिज्ञासा, कोई प्रश्न नहीं उठ रहा, कुछ अनुभव होगा। जहां विचार नहीं रह जाते, वहां अनुभव का प्रारंभ होता है। जहां तक विचार हैं, वहां तक अनुभव का प्रारंभ नहीं होता। जहां विचार निःशेष हो जाते हैं, वहां भाव का जागरण होता है, वहां दर्शन का प्रारंभ होता है।
विचार पर्दे की तरह हमारे चित्त को घेरे हुए हैं। उनमें हम इतने तल्लीन हैं, इतने आक्युपाइड हैं, इतने व्यस्त हैं, विचार में इतने व्यस्त हैं कि विचार के अतिरिक्त जो पीछे खड़ा है उसे देखने का अंतराल, उसे देखने

का रिक्त स्थान नहीं मिल पाता। विचार में अत्यंत आक्युपाइड होने, अत्यंत व्यस्त होने, अत्यंत संलग्न होने के कारण पूरा जीवन उन्हीं में चिंतित होते हुए बीत जाता है; उनके पार कौन खड़ा था, उसकी झलक भी नहीं मिल पाती है। इसलिए ध्यान का अर्थ हैः पूरी तरह अनआक्युपाइड हो जाना। ध्यान का अर्थ हैः पूरी तरह व्यस्तता से रहित हो जाना।
तो अगर हम अरिहंत-अरिहंत को स्मरण करें, राम-राम को स्मरण करें, तो वह
तो आक्युपेशन ही होगा, वह तो फिर एक व्यस्तता हो गई, वह तो फिर एक काम हो गया। अगर हम कृष्ण की मूर्ति या महावीर की मूर्ति का स्मरण करें, उनके रूप का स्मरण करें, तो वह भी व्यस्तता हो गई, वह ध्यान न हुआ। कोई नाम, कोई रूप, कोई प्रतिमा अगर हम चित्त में स्थापित करें, तो भी विचार हो गया। क्योंकि विचार के सिवाय चित्त में कुछ और स्थिर नहीं होता। चाहे वह विचार भगवान का हो, चाहे वह विचार सामान्य काम का हो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, चित्त विचार से भरता है। चित्त को निर्विचार, चित्त को अनआक्युपाइड छोड़ देना ध्यान है।
मैंने पिछली बार, जब मैं आया था, तो मैंने जापान के साधु के बाबत आपको कहा संभवतः। रिंझाई वहां एक साधु हुआ। उसके आश्रम को देखने जापान का बादशाह एक दफा गया। बड़ा आश्रम था, कोई पांच सौ उसमें भिक्षु थे। वह साधु एक-एक स्थान को दिखाता हुआ घूमा कि यहां साधु भोजन करते हैं, यहां साधु निवास करते हैं, यहां साधु अध्ययन करते हैं। सारे आश्रम के बीच में एक बहुत बड़ा भवन था, सबसे सुंदर, सबसे शांत, सबसे विशाल। वह राजा बार-बार पूछने लगाः और साधु यहां क्या करते हैं?
वह कहने लगाः वहां के बाबत बाद में बात करेंगे।
बगीचा, लाइब्रेरी, अध्ययन-कक्ष, वह सब बताता हुआ घूमा। वह राजा बार-बार पूछने लगाः और साधु यहां क्या करते हैं--यह जो बीच में भवन है?
वह साधु बोलाः थोड़ा ठहर जाएं, उसके संबंध में बाद में बात कर लेंगे।
जब पूरा आश्रम घूम कर राजा वापस ही होने लगा, तब उसने दुबारा पूछा कि
वह बीच का भवन छूट ही गया, वहां साधु क्या करते हैं?
उस आश्रम के प्रधान ने कहाः उसको बताने को इसलिए मैं रुका, वहां साधु कुछ करते नहीं, वहां साधु अपने को न करने की स्थिति में छोड़ते हैं। वह ध्यान-कक्ष है, वहां साधु अपने को न करने की स्थिति में छोड़ते हैं, वहां कुछ करते नहीं। बाकी पूरे आश्रम में काम होता है, वहां काम छोड़ा जाता है। बाकी पूरे आश्रम में क्रियाएं होती हैं, वहां क्रिया नहीं की जाती है। जब किसी को वहां क्रिया छोड़नी होती है, तो वहां चला जाता है, सारी क्रियाएं छोड़ कर चुप हो जाता है।
ध्यान अक्रिया है। वह कोई क्रिया नहीं है। कि हम सोचें कि वह कोई काम
है, कि हम बैठे हैं और एक काम कर रहे हैं। अगर काम कर रहे हैं, तो वह ध्यान नहीं है। ध्यान का अर्थ है कि जो निरंतर काम चल रहा है चित्त में, उसको विराम दे देंगे। कोई काम नहीं करना, चित्त को बिल्कुल क्रिया-शून्य छोड़ देना। चित्त की क्रिया-शून्य स्थिति में क्या होगा? चित्त की क्रिया- शून्य स्थिति में भी तो कुछ होगा। चित्त की क्रिया-शून्य स्थिति में केवल दर्शन रह जाएगा, केवल देखना रह जाएगा। चित्त की क्रिया-शून्य स्थिति में, जो हमारा स्वभाव है, वही केवल रह जाएगा।
दर्शन, ज्ञान हमारा स्वभाव है। हम सब छोड़ सकते हैं, ज्ञान और दर्शन को नहीं छोड़ सकते। सतत चौबीस घंटे ज्ञान हमारे साथ मौजूद है। जब गहरी नींद में सोते हैं, तब भी स्वप्न का हमें पता होता है; जब स्वप्न भी विलीन हो जाते हैं और सुषुप्ति होती है, तब भी हमें इस बात का पता होता है कि बहुत आनंदपूर्ण निद्रा। सुबह उठ कर हम कहते हैं, रात्रि बहुत आनंद से बीती। कोई हमारे भीतर उस समय भी जाग रहा है, उस समय भी जान रहा है। कोई हमारे भीतर उस समय भी चैतन्य है। उठते-बैठते, सोते-जागते, काम करते, न काम करते, हमारे भीतर एक सतत ज्ञान का अविच्छिन्न प्रवाह बना हुआ है। समस्त क्रियाएं छोड़ देने पर केवल ज्ञान का अविच्छिन्न प्रवाह मात्र शेष रह जाएगा। सिर्फ जान रहा हूं, सिर्फ हूं; बोधमात्र होने का, सत्ता का बोधमात्र शेष रह जाएगा।

उसी बोध में, उसी सत्तामात्र में छलांग लगाना धर्म है। उसी में कूद जाना--उसी अस्तित्व में--धर्म है। और वहां जो अनुभूति होती है, वह जीवन के बंधन से, जीवन की आसक्ति से, जीवन के दुख से मुक्ति दे देती है। क्योंकि वहां जाकर ज्ञात होता है कि वह जो अंतरसत्ता भीतर बैठी हुई है, वह निरंतर मुक्त है पाप से, दुख से, पीड़ा से। एक क्षण को भी उस पर कभी कोई पाप का, पीड़ा का, दुख का कोई दाग नहीं लगा। वह चैतन्य नित्य शांत, नित्य मुक्त है। वह चैतन्य नित्य ब्रह्म स्थिति में है। उस चैतन्य में कभी कोई विकार नहीं हुआ, न विकार होने की संभावना है।
जैसे ही यह दर्शन होता है, जीवन एक अलौकिक धरातल पर आनंद की अनुभूति
के प्रति उन्मुख हो जाता है। इस उन्मुखता को मैं ध्यान और समाधि कहता हूं। मैंने दो बातें कहींः अव्यस्त, अनआक्युपाइड और अक्रिया। असल में दोनों का एक ही अर्थ है। दोनों को एक शब्द में कहें, तो परिपूर्ण शून्यता ध्यान है। यह परिपूर्ण शून्यता व्यक्ति अगर लाना चाहे, तो मेरी समझ में, उसे तीन अंगों पर अपने प्रयोग करना होता है। प्राथमिक रूप से उसका शरीर है। अगर उसे अक्रिया में जाना है, निष्क्रियता में जाना है, तो शरीर को अक्रिय छोड़ना होगा। शरीर को बिल्कुल निष्क्रिय छोड़ना होगा, जैसे कि मृत्यु में शरीर छूट जाता है, उतना ही निष्क्रिय छोड़ देना होगा, ताकि शरीर पर जितने भी तनाव, जितने भी टेंशंस हैं, वे सब शांत हो जाएं।
यह तो आपने अनुभव किया होगा, शरीर पर अगर कहीं भी तनाव हो, पैर में अगर दर्द हो, तो चित्त बार-बार उसी दर्द की तरफ जाएगा। अगर शरीर में कहीं कोई तनाव न हो, तो चित्त शरीर की तरफ जाता ही नहीं। यह आपको अनुभव हुआ होगा, आपको शरीर में केवल उन्हीं अंगों का पता पड़ता है, जो बीमार होते हैं। जो अंग स्वस्थ होते हैं, उनका पता नहीं पड़ता। अगर आपके सिर में दर्द है, तो आपको पता चलेगा कि सिर है; और अगर सिर में दर्द नहीं है, तो सिर का पता नहीं चलेगा। शरीर जहां-जहां तनावग्रस्त होता है, वहीं-वहीं उसका बोध होता है। शरीर अगर बिल्कुल तनाव-शून्य हो, तो शरीर का पता नहीं चलेगा।
तो शरीर को इतना शिथिल छोड़ देना है कि उसमें सारे तनाव विलीन हो जाएं,
तो थोड़ी देर में देह-बोध विलीन हो जाता है। थोड़ी देर में, देह है या नहीं है, यह बात विलीन हो जाती है। थोड़े दिन के ही प्रयोग में देह-बोध विसर्जित हो जाता है। शरीर का परिपूर्ण तनाव-शून्य होना, शरीर से मुक्त हो जाने का उपाय है। इसलिए ध्यान के पहले चरण में हम शरीर को ढीला छोड़ देते हैं।
अभी आज प्रयोग के लिए बैठेंगे, शरीर को बिल्कुल उस समय ढीला छोड़ देना है, जैसे मुर्दा हो गया, जैसे उसमें कोई प्राण नहीं है। उसमें कोई कड़ापन, कोई तनाव, कोई अकड़, कोई कायम नहीं रखनी है, सब छोड़ देनी है। इतना ढीला छोड़ देना है, जैसे यह मिट्टी का लोंदा है, हमारी इसमें कोई पकड़ नहीं है, इसमें कोई जान नहीं है। अपने ही शरीर को बिल्कुल मुर्दा की भांति छोड़ देना है। जब शरीर को बिल्कुल शिथिल छोड़ देंगे, उसके बाद मैं दो मिनट तक आपके सहयोग के लिए सुझाव दूंगा, ये सजेशंस दूंगा कि आपका शरीर शिथिल होता जा रहा है। मेरे दो मिनट तक निरंतर कहने पर कि शरीर शिथिल हो रहा है, आपको भाव करना है कि शरीर शिथिल हो रहा है। सिर्फ यह भाव मात्र करना है कि शरीर शिथिल होता जा रहा है।
आप हैरान होंगे, भाव की इतनी शक्ति है कि अगर आप बहुत संकल्पपूर्वक भाव करें, तो प्राण तक शरीर से छूट जा सकते हैं। जिसको भारत में इच्छा- मृत्यु कहते हैं, वह केवल भाव मात्र है। अगर आप ठीक से भाव करें, शरीर वैसा ही हो जाएगा।
रामकृष्ण के बाबत एक उल्लेख है। रामकृष्ण ने सारे धर्मों की साधना की। इस तरह की साधना करने वाले जगत में वे पहले साधु थे। दूसरे साधु जगत में ढेर हुए हैं, वे अपने धर्म की साधना करके सत्य को पा लेते हैं। रामकृष्ण को लगा कि और धर्मों की साधनाएं भी सत्य तक ले जाती हैं या नहीं? तो उन्होंने सारे धर्मों की साधनाएं कीं और उन्होंने पाया कि हर धर्म की साधना सत्य तक ले जाती है।
बंगाल में एक संप्रदाय प्रचलित है, राधा-संप्रदाय। उसकी भी साधना उन्होंने की। राधा-संप्रदाय की मान्यता है कि केवल परम ब्रह्म ही पुरुष

है, शेष सारे लोग नारियां हैं, सारे लोग राधाएं हैं। पुरुष भी उस संप्रदाय का अपने को उस परम चैतन्य, परम ब्रह्म की पत्नी के रूप में ही स्वीकार करता है। वह यही भाव करता है कि वह परम चैतन्य की नारी है।
रामकृष्ण ने उसकी भी साधना की। आप हैरान होंगे, रामकृष्ण ने तीन दिन
यह भाव किया कि वे राधा हैं, और उन पर सारे स्त्री के लक्षण प्रकट हो गए। उनकी वाणी बदल गई, उनके बोलने का ढंग बदल गया, उनके अंगों में भी परिवर्तन आया। इसे लाखों लोगों ने आंख से देखा। लोग हैरान हो गए कि यह क्या हुआ? राधा-संप्रदाय के तो ढेर लोग हैं। उनमें दोहराते भी हैं। लेकिन रामकृष्ण में पहली दफा यह लोगों ने साक्षात किया कि उनमें स्त्री के सारे लक्षण आ गए। तीन दिन की निरंतर यह भाव-स्थिति ने, कि वे राधा हैं, उन्हें राधा की परिणति दे दी। उन लक्षणों को जाने में छह महीने लगे।
अभी पश्चिम में, पूरब के और बहुत से मुल्कों में इस पर ढेर काम हो रहा है। हम जैसा भाव करें, शरीर में वैसी परिणतियां हो जाती हैं।
तो अगर ठीक से हम भाव करें कि शरीर शिथिल हो रहा है, परिपूर्ण चित्त से भाव करें, पूरे समग्र चित्त से भाव करें कि शरीर शिथिल हो रहा है, दो मिनट में आप पाएंगे कि शरीर मृत हो गया। उसमें कोई प्राण नहीं है। ऐसी स्थिति में अगर शरीर गिरने लगे, तो उसे रोकना नहीं है। अच्छा हो कि जरा भी उसे न रोकें, जब शरीर गिरने लगे, उसे बिल्कुल गिर जाने दें। उसके बाद दो मिनट तक भाव करना है कि श्वास शांत हो रही है। मैं दोहराऊंगा कि श्वास शांत हो रही है, दो मिनट तक आपको भाव करना है कि श्वास शांत हो रही है। अगर हमें परिपूर्ण शून्यता में जाना है, तो शरीर का शिथिल होना अनिवार्य है, श्वास का शांत होना अनिवार्य है। दो मिनट भाव करने पर श्वास शांत हो जाती है। उसके बाद मैं दो मिनट तक कहूंगा कि चित्त मौन हो रहा है, विचार शून्य हो रहे हैं। दो मिनट तक भाव करने पर विचार शून्य हो जाते हैं।
और इन छह मिनट की छोटी सी प्रक्रिया में अचानक आप पाएंगे कि एक रिक्त स्थान में, एक अवकाश में, एक शून्य में प्रवेश हो गया। चित्त मौन हो जाएगा। भीतर वाणी और शब्दों का उठना विलीन हो जाएगा। भीतर एक रिक्त स्थान, खाली जगह रह जाएगी, जहां कुछ भी नहीं है। न कोई विचार है, न कोई रूप है, न कोई आकृति है, न कोई गंध है, न कोई ध्वनि है, जहां कुछ भी नहीं है, केवल अकेले आप रह गए। उस अकेलेपन को, उस लोनलीनेस को, जहां बिल्कुल अकेला मैं रह गया चारों तरफ रिक्त आकाश से घिरा हुआ, उस अकेलेपन में ही उस स्व का अनुभव उदभूत होता है, जिसको महावीर ने आत्मा कहा है, जिसको शंकर ने ब्रह्म कहा है, या जिसको और लोगों ने और नाम दिए हैं। उस सत्य का अनुभव उस अत्यंत एकाकीपन में होता है।
एकाकीपन की हम तलाश करते हैं जंगल में जाकर, वनों में भाग कर, पहाड़ों
पर भाग कर। लेकिन एकाकीपन का संबंध स्थान से नहीं है, स्थिति से है। अकेलापन जंगल में जाकर नहीं खोजा जा सकता। पशु-पक्षी होंगे, उनसे ही मेल-जोल हो जाएगा, उनसे ही संगी-साथीपन बन जाएगा। अकेलापन अपने में जाकर पाया जाता है, जहां सब रिक्त हो जाए और मैं बिल्कुल अकेला रह जाऊं। उस अकेली स्थिति में, उस नितांत एकांत स्थिति में, जहां केवल होने मात्र की स्पंदना रह गई, वहां कुछ अनुभव होता है जो जीवन में क्रांति ला देता है। उसके लिए बहुत अत्यंत सरल सा छोटा सा प्रयोग है। यह प्रयोग इतना छोटा सा है कि कई दफे लग सकता है कि इतने से प्रयोग से कैसे आंतरिक साक्षात हो सकता है? लेकिन बीज हमेशा छोटे होते हैं, परिणाम में वृक्ष विराट हो जाते हैं।
जो बीज को छोटा समझ कर यह भाव कर ले कि इससे क्या वृक्ष होगा, वह वृक्ष से वंचित रह जाएगा। बीज हमेशा छोटे होते हैं, परिणाम में विराट उपलब्ध हो जाता है। अत्यंत सूक्ष्म सा बीज ध्यान का बोने पर, विराट अनुभूति की फसल को काटा जा सकता है।
मेरी बात आप समझ गए होंगे। तीन चरण में हम ध्यान के लिए बैठते हैं अभी। सब लोग उस समय दूर बैठेंगे, ताकि गिरने की सुविधा हो। सारे लोग थोड़े फासले पर बैठ जाएं और काफी गौर से देख लें कि गिरने की सुविधा हो। कल कुछ असुविधा हुई।

आंख बंद कर लें। दोनों हाथ जोड़ कर संकल्प कर लें।... अब हाथ छोड़ दें, और जैसा मैं सुझाव देता हूं, भाव करें। पहले हम शरीर के शिथिल होने का भाव करेंगे, फिर श्वास शांत होने का भाव करेंगे, और इसके बाद मन के मौन होने का भाव करेंगे। अंत में दस मिनट के लिए परिपूर्ण विश्राम में चले जाएंगे।

(तीन चरण में ध्यान-प्रयोग होता है, जिसका ध्वनि-मुद्रण उपलब्ध नहीं है। उसके बाद ओशो पुनः बोलना शुरू करते हैं।)

एक बहुत ही प्राचीन उपाख्यान है, उसे कह कर मैं आज के कार्यक्रम को पूरा करूंगा। एक बिल्कुल झूठी सी कथा है, लेकिन मुझे बहुत अर्थपूर्ण मालूम होती है।
कथा है, नारद वैकुंठ जा रहे हैं। मार्ग में उन्हें एक वृद्ध साधु मिला, वृक्ष के नीचे, उसने नारद को कहा कि तुम पूछ लेना प्रभु से कि मेरी मुक्ति को अभी कितनी देर और है? मुझे मोक्ष कब तक मिलेगा?
नारद ने कहाः जरूर लौटते में पूछ लूंगा।
पास में उसी दिन दीक्षित हुआ एक फकीर अपना तंबूरा लेकर नाच रहा था। नारद ने मजाक में उससे भी कहा कि तुम्हें भी पूछना है क्या?
वह फकीर कुछ बोला नहीं।
नारद वापस लौटे, उस वृद्ध साधु के पास जाकर उन्होंने कहाः मैंने पूछा था, ईश्वर ने कहा कि अभी तीन जन्म और लग जाएंगे।
उस साधु ने अपनी माला नीचे फेंक दी और कहाः तीन जन्म और! अन्याय है! कितना धीरज रखूं!
नारद तो आगे बढ़ गए। वह वृक्ष के नीचे अभी नया-नया दीक्षित हुआ साधु नाचता था, नारद ने कहाः सुनते हो! तुम्हारे संबंध में भी पूछा था, प्रभु ने कहा कि वह जिस वृक्ष के नीचे नाच रहा है, उसमें जितने पत्ते हैं, उतने ही जन्म उसे साधना में लगेंगे, तब मुक्ति उपलब्ध हो सकेगी।
वह फकीर बोलाः बस इतने ही पत्ते! तब तो जीत लिया! जगत में कितने पत्ते हैं! इस वृक्ष पर तो बहुत थोड़े से हैं! वह वापस नाचने लगा। और कथा कहती है, वह उसी क्षण मुक्त हो गया।
मुझे प्रीतिकर लगती है यह बात। वह उसी क्षण मुक्त हो गया। इतना धैर्य!
कि उसने कहाः इतने से पत्ते! इतने से जन्म! तब तो जीत लिया। जगत में तो कितने पत्ते हैं! इतना धैर्य जिसमें है, उसने इसी क्षण पा लिया।
अधैर्य बाधा है। अधैर्य लंबा करता है। अगर अनंत धैर्य के साथ मैं एक क्षण को भी शांत हो जाऊं, उसी क्षण सब हो जाएगा। तो थोड़ा सा अधैर्य छोड़ कर, थोड़े से परिणाम की एकदम नितांत इच्छा और प्रयोजन छोड़ कर अगर प्रयोग किया, तो बहुत सुनिश्चित है कि थोड़े ही दिनों में कुछ दिखना शुरू हो, कुछ होना शुरू हो। और अगर वैसा कुछ हो जाए, तो उससे ज्यादा मूल्यवान कुछ भी नहीं है। मैं आशा करता हूं कि थोड़े से लोग, जिनको प्रीतिकर लगेगा, वे प्रयोग करेंगे। अगर प्रयोग किया और अगर धीरज रखा, तो परिणाम निश्चित है। क्योंकि सिवाय शांत होने के, सिवाय परिपूर्ण शांत होने के, मनुष्य के लिए जगत-सत्य को और स्वयं के सत्य को जानने का कोई उपाय नहीं। कोई धर्मग्रंथ जो नहीं दे सकेंगे, वह स्व के भीतर उतरने से उपलब्ध हो जाएगा।
अमृत और अनंत और नित्य चैतन्य को पाने की राह एक ही है, और वह हैः किसी भांति, जो आंखें बाहर के जगत को देख रही हैं, वे भीतर देखने लगें। आंख से भीतर देखने की घटना शून्य में घटित होती है। जैसे ही विचार शून्य हुए, बाहर देखने को कुछ भी नहीं रह जाता। जब बाहर देखने को कुछ भी नहीं रह जाता है, तो जो देखने की शक्ति, जो दर्शन की शक्ति बाहर उलझी थी, वह बाहर निराधार होने के कारण अनिवार्यतया स्व-आधार हो जाती है। बाहर से आलंबन छूट जाने के कारण स्व-आलंबित हो जाती है। बाहर उस चेतना को स्थान नहीं मिलता ठहरने को, अनिवार्यतया वह स्वयं में ठहर जाती है।
इसलिए शून्य के अतिरिक्त और कोई ध्यान नहीं है। इस पर थोड़ा प्रयोग करेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूं।

साक्षी की साधना
दूसरा प्रवचन

अहंकार का विसर्जन

ध्यान के संबंध में दो-तीन बातें समझ लें और फिर हम ध्यान का प्रयोग करें।
पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि ध्यान का श्वास से बहुत गहरा संबंध है। साधारणतः देखा होगा, क्रोध में श्वास एक प्रकार से चलती है, शांति में दूसरे प्रकार से चलती है। कामवासना मन को पकड़ ले, तो श्वास की गति तत्काल बदल जाती है। और कभी अगर श्वास बहुत शांत, धीमी, गहरी चलती हो, तो मन बहुत अदभुत प्रकार के आनंद को अनुभव करता है।
मन की सारी दशाएं श्वास से गहरे में संबंधित हैं। इसलिए पहले दस मिनट
के लिए श्वास पर थोड़ा सा प्रयोग करेंगे। श्वास इन दस मिनटों में गहरी लेनी है, जितनी आप ले सकें, बिना दबाव और जोर के, कोई परेशानी और तकलीफ न हो; और उतनी ही गहरी वापस छोड़नी है। हमारे फेफड़ों में अगर बहुत कार्बन डाइआक्साइड भरा हो, तो चित्त का शांत होना कठिन हो जाता है। अगर हमारे प्राणों में बहुत आक्सीजन चला जाए--खून में, श्वास में, सब तरफ प्राण-वायु भर जाए--तो ध्यान में जाना बहुत आसान हो जाता है।
तो सबसे पहली बात तो दस मिनट गहरे श्वास का प्रयोग करना है। इस प्रयोग में सारा ध्यान श्वास पर ही रखना है। श्वास भीतर गई, तो हमें जानते हुए कि श्वास भीतर जा रही है, ध्यान को भीतर ले जाना है। श्वास बाहर गई, तो जानना है कि श्वास बाहर जा रही है, उसके साथ ही ध्यान को बाहर ले जाना है। ध्यान श्वास के झूले पर झूलने लगे। श्वास भीतर जाए तो हमारा ध्यान भीतर जाए; श्वास बाहर जाए तो हमारा ध्यान बाहर जाए। दस मिनट के लिए एक ही काम है कि हम श्वास को जानें कि श्वास कहां है--भीतर गई तो हम भीतर चले जाएं; बाहर गई तो हम बाहर चले जाएं। श्वास के साथ ही हमारे चित्त की डोर बंध जाए। बस श्वास ही रह जाए, और सब कुछ मिट जाए। दस मिनट गहरी श्वास लेनी है और श्वास के साथ ही बाहर-भीतर जाना है। आंख हम इन दस मिनटों में बंद रखेंगे, ताकि और कुछ दिखाई न पड़े।
बैठने में दो-तीन बातें ख्याल ले लें।
एक तो कोई किसी को छूता हुआ न बैठे, कोई भी किसी को जरा भी स्पर्श न करे। तो थोड़ा-थोड़ा हट जाएं। कोई भी किसी को स्पर्श करता हुआ न हो। और यहां तो जगह बहुत है, इसलिए बिल्कुल फैल कर बैठ सकते हैं। दूसरे का स्पर्श दूसरे को भूलने नहीं देता। दूसरे की मौजूदगी ख्याल में बनी रहती है। और ध्यान में जरूरी है कि सब भूल जाए, हम अकेले रह जाएं।
दूसरी बात, शरीर को सीधा रख कर बैठें। अकड़ाने की जरूरत नहीं है, आराम
से जितना सीधा हो सके। रीढ़ सीधी हो, जमीन से नब्बे का कोण बनाती हो, इतना भर ख्याल कर लें। वह भी पहले दस मिनट के प्रयोग के लिए। फिर आंख बंद कर लें। और आंख भी बंद करने का मतलब है आंख पर भी जोर न डालें, आहिस्ते से पलक बंद हो जाने दें।
आंख बंद कर लें। शरीर को सीधा रखें। आंख बंद कर लें। फिर ले जाएं, फिर छोड़ दें। रोकना नहीं है; ले जाना है, छोड़ देना है। और पूरे दस मिनट के बाद मैं कहूंगा, तब आप आंख खोलेंगे, तब तक श्वास पर ही ध्यान रखना है। श्वास भीतर गई, तो हम जानते हुए भीतर जाएं; श्वास बाहर गई, तो हम जानते हुए बाहर जाएं। ध्यान का मतलब यह है कि श्वास की जो गति है भीतर और बाहर, वह हमसे चूक न पाए, हम उसके साथ ही बाहर-भीतर डोलते रहें।
शुरू करें!
आंख बंद कर लें। गहरी श्वास लें। बस श्वास ही रह जाएगी दस मिनट के लिए,
और सब बंद हो जाएगा। गहरी श्वास भीतर ले जाएं, पूरे फेफड़े भर लें, फिर बाहर निकालें; भीतर ले जाएं, बाहर निकालें। दस मिनट में मन बहुत शुद्ध और शांत हो जाएगा। फिर हम दूसरा ध्यान का प्रयोग करेंगे। दस मिनट के लिए यह प्राथमिक काम करें। अब मैं चुप हो जाता हूं, दस मिनट बाद आपको सूचना

करूंगा, तब तक आंख नहीं खोलनी है, श्वास गहरी लेनी है और ध्यान श्वास पर रखना है।

(दस मिनट तक श्वास का ध्यान-प्रयोग जारी रहता है, दस मिनट के बाद ओशो दूसरे प्रयोग के लिए सुझाव देते हैं।)

दूसरा प्रयोग, हम... अलग-अलग समझा रहा हूं आपको ताकि ख्याल में आ जाए... दूसरा प्रयोग हैः सर्व-स्वीकार का।
अभी हम बैठे थे, श्वास ले रहे हैं, श्वास पर ध्यान कर रहे हैं--पक्षी आवाज कर रहे हैं, कोई बच्चा चिल्लाएगा, सड़क से कोई टक निकलेगा--ये सारी आवाजें हमारे चारों तरफ हो रही हैं। साधारणतः ध्यान करने वाले लोग, प्रार्थना-पूजा करने वाले लोग अपने चारों तरफ के जगत से एक दुश्मनी ले लेते हैं। अगर घर में एक आदमी ध्यान करने लगे, तो वह ध्यान के पहले जितना अशांत था, उससे ज्यादा ध्यान के बाद दिखाई पड़ेगा। कहीं घर में बर्तन गिर जाएगा, कोई बच्चा रोने लगेगा, तो उसका क्रोध और बढ़ जाएगा। उसे लगेगा कि डिस्टर्बेंस हो रहा है, बाधा पड़ रही है।
मेरी दृष्टि में, ध्यान ऐसी प्रक्रिया है जो समस्त बाधाओं को स्वीकार
कर लेती है, किसी बाधा को बाधा नहीं मानती। और जब तक हम ऐसी ध्यान की प्रक्रिया न सीख सकें जिसमें हम बाधाओं को भी सीढ़ियों की तरह प्रयोग कर लें, तब तक ध्यान में जाना असंभव है। क्योंकि बाधाएं तो चारों तरफ हैं। रास्ते से टक निकलेगा, पक्षी आवाज करेंगे, उन्हें कोई प्रयोजन नहीं कि आप ध्यान करने बैठे हैं, कि आपके ध्यान में बाधा न पड़ जाए। और अगर आपने ऐसा समझा कि बाधा पड़ रही है, तो बाधा पड़ जाएगी।
बाधा बाधाओं के कारण नहीं, हमारी इस भाव-दशा के कारण होती है कि बाधा
पड़ रही है। अगर यह भाव-दशा छोड़ दी जाए और हम स्वीकार कर लें कि जो भी हो रहा है, ठीक है, हम राजी हैं। पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम राजी हैं। तो पक्षियों की आवाज आपकी शांति को गहरा देगी, कम नहीं करेगी। रास्ते से टक निकल रहा है, हम राजी हैं। कोई बच्चा रो रहा है, हम राजी हैं। क्योंकि आज तो आप बगीचे में आकर बैठ गए हैं, अगर प्रयोग करना चाहेंगे तो घर में ही करेंगे, सड़क चलेगी, घर में आवाज होगी, बात होगी, शोर होगा, और अगर यह दृष्टि रही कि यह सब बाधा बन रही है, तो ध्यान असंभव हो जाएगा।
तो दूसरा दस मिनट के लिए हम प्रयोग करेंगे सर्व-स्वीकार का। जो भी हो रहा है, मैं उससे राजी हूं, मेरा कोई विरोध नहीं है। पक्षी आवाज कर रहे हैं, मैं राजी हूं। और जब आप राजी होकर पक्षी की आवाज सुनेंगे--क्योंकि फिर सुनने के सिवाय कोई उपाय न रहा--जब शांति से, आनंद से, स्वीकार से पक्षी की आवाज सुनेंगे, तो आप पाएंगे कि पक्षी की आवाज आपके भीतर गूंजती है, चली जाती है, आप एक खाली घर की तरह रह गए, वह आवाज कोई बाधा नहीं डालती, बल्कि उस आवाज के बाद आप और शांत हो गए जितना कि आवाज के पहले थे। जैसा कि कभी रात रास्ते पर चलते हों, अंधेरी रात हो और कार निकल जाए, तो कार के प्रकाश के गुजर जाने के बाद रास्ता और अंधेरा मालूम पड़ने लगता है। ठीक ऐसे ही आवाज गुजरेगी, अगर हमने उसका विरोध न किया, तो और घनी शांति पीछे से लौट आती है। तो दस मिनट हम सर्व-स्वीकार का प्रयोग करेंगे। क्योंकि बिना सर्व-स्वीकार के प्रयोग के ध्यान में जाना असंभव है। न तो आप हिमालय पर भाग कर जा सकते हैं... और वहां भी भाग कर चले जाएं, तो वहां भी कुछ न कुछ हो रहा है। आदमी न बोलेंगे, पक्षी बोलेंगे; सड़क पर कोई न गुजरेगा, तो वृक्षों में हवाएं बहेंगी और आवाज होगी। सारे जगत में जीवन है, जीवन की आवाज है, उससे भागा नहीं जा सकता, उसे स्वीकार कर लेना पड़े।
और फिर जब सभी तरफ परमात्मा है, तो सभी आवाजें उसकी हैं। विरोध उचित
भी नहीं है। एक पक्षी ही चिल्ला रहा है, तो वह भी परमात्मा ही चिल्ला रहा है। और अगर वृक्ष में हवाएं आती हैं, सूखे पत्ते उड़ते हैं, वे भी परमात्मा के हैं। सब परमात्मा का है। और जब इस सबके साथ हमें एक हो जाना है, तो विरोध करके हम एक न हो पाएंगे। अ-विरोध, नॉन-रेसिस्टेंस दूसरा सूत्र है।

तो हम दस मिनट के लिए फिर बैठें। गहरी श्वास लेंगे, श्वास पर ध्यान रखेंगे, और साथ ही दूसरा प्रयोग करेंगे कि जो भी हो रहा है उससे मैं राजी हूं, मैं स्वीकार करता हूं, मेरा कोई विरोध नहीं है। और जैसे ही यह भाव भीतर घना होगा कि मैं राजी हूं, मैं स्वीकार करता हूं, वैसे ही मन गहरी शांति में उतरने लगेगा। पुनः आंख बंद कर लें। गहरी श्वास, श्वास पर ध्यान और चारों ओर के जीवन की स्वीकृति, विरोध नहीं। मन को गहरी से गहरी शांति के रास्ते पर अपने आप गति मिलनी शुरू हो जाती है। किसी भी चीज का अस्वीकार नहीं है, विरोध नहीं है। विरोध से ही बाधा बन जाती है।

(दस मिनट तक सर्व-स्वीकार का ध्यान-प्रयोग जारी रहता है, दस मिनट के बाद ओशो तीसरे प्रयोग के लिए सुझाव देते हैं।)

और तीसरी बात, मनुष्य के और परमात्मा के बीच में जो सबसे बड़ी दीवाल है,
वह दीवाल परमात्मा की तरफ से नहीं, मनुष्य की ही तरफ से है। और वह दीवाल है मनुष्य का यह ख्याल कि मैं हूं। यह ख्याल जितना मजबूत है, यह अहंकार, यह ईगो कि मैं हूं, जितना मजबूत है, उतनी ही बड़ी दीवाल हमारे और उसके बीच खड़ी हो जाती है। ध्यान की पूरी गहराई में "मैं" का मिट जाना जरूरी है, अन्यथा दीवाल नहीं गिरेगी, और उससे मिलना भी नहीं हो सकेगा।
तो तीसरा सूत्र "मैं" को विसर्जन कर देने का है।
तीसरे सूत्र में पहले दोनों सूत्रों का प्रयोग जारी रहेगा और तीसरा सूत्र भी जुड़ जाएगा। श्वास हम गहरी लेंगे। सब स्वीकार का भाव रखेंगे कि जो भी हो रहा है, उससे मैं राजी हूं। कहीं कोई मन में विरोध लेने की जरूरत नहीं है। धूप तेज है तो तेज है, और मैं राजी हूं, जो भी हो रहा है। और ध्यान श्वास पर ही जारी रहेगा। और तीसरी बात उसमें जोड़ देनी है, उसमें यह भाव जोड़ देना है कि मैं नहीं हूं, मैं मिट गया हूं। जैसे बूंद पानी में गिर जाए सागर में और खो जाए, ऐसा ही मैं खो गया हूं। जैसे-जैसे यह भाव गहरा होगा कि मैं खो गया, मैं मिट गया, मैं समाप्त हो गया, वैसे-वैसे ही वह है, इसका भाव अपने आप प्रकट होने लगेगा। यहां मैं मिटूंगा, वहां उसका होना शुरू हो जाएगा। इस तरफ मैं मिटूंगा, उस तरफ वह होना शुरू हो जाएगा। बूंद गिरती है सागर में, इधर बूंद मिटी नहीं कि उधर सागर हुआ नहीं, बूंद मिटी और सागर हुई।
मनुष्य मिट जाए, तो परमात्मा इसी क्षण है। और मिटने के लिए हिम्मत नहीं हमारी। अपने को सम्हाल कर रखते हैं कि कहीं खो न जाएं, कहीं मिट न जाएं। शायद जरूरी भी है जिंदगी में। लेकिन घड़ी भर को चौबीस घंटे में अगर मिट जाएं, तो पता चलेगा कि तेईस घंटे होकर जो नहीं मिला, वह एक घंटे न होकर मिल गया। तेईस घंटे जो कोशिश कर-कर के सुख न मिला, शांति न मिली, वह एक घंटा मिट गए और सब पा लिया।
तीसरा प्रयोग, दस मिनट के लिए। और फिर इन तीनों प्रयोगों को साथ, सुबह
जब सोकर उठें, तब एक आधा घंटे के लिए करें, और रात जब सोने लगें बिस्तर पर तो बिस्तर पर ही लेट कर करें और करते-करते ही सो जाएं।
अगर एक घंटा चौबीस घंटे में से इस बात के लिए दिया जा सके, तो दो-तीन महीने के भीतर ही आप पाएंगे कि आपके भीतर से कोई नये आदमी का जन्म शुरू हो गया। कुछ नया ही होना शुरू हो गया, जिसका हमें पता भी नहीं था।
लेकिन हम इतने कमजोर लोग हैं कि दो-तीन महीने भी घंटा भर परमात्मा को देना संभव नहीं हो पाता। एक-दो दिन करेंगे और सोचेंगे कि पता नहीं कुछ होगा कि नहीं होगा।
तीन महीने एक बात ख्याल रख लें कि कुछ न भी होगा, तो कुछ खो नहीं जाएगा। आदमी कुआं खोदता है, तो पहले तो कंकड़-पत्थर ही हाथ लगते हैं। सोचे कि कंकड़-पत्थर ही हैं, छोड़ो, दूसरी जगह खोदें। वहां भी खोदता है, वहां भी कंकड़-पत्थर ही हाथ लगते हैं। पहले तो दस-बीस फीट, पचास फीट कंकड़-पत्थर ही खोदना पड़ते हैं, तब कहीं जल-स्रोत आते हैं। यहां जब हम मन की खुदाई पर उतरते हैं--और ध्यान यानी मन की खुदाई, मन का कुआं बनाना--तो भी कंकड़-पत्थर ही हाथ आते हैं पहले। लेकिन अगर कोई लगा ही रहे, लगा ही रहे, तो जल-स्रोत भी

आ जाता है। और ज्यादा देर नहीं है प्रतीक्षा करने की। लेकिन हमारी थोड़ी प्रतीक्षा करने की भी क्षमता नहीं रह गई है।
तो तीसरे प्रयोग को करें। तीसरा प्रयोग हैः "मैं नहीं हूं" इस भाव में डूब जाना है।
फिर से पुनः आंख बंद कर लें। गहरी श्वास लेना शुरू करें। श्वास भीतर जाए, तो ध्यान भीतर जाए; श्वास बाहर जाए, तो ध्यान बाहर जाए। देखते रहें--यह श्वास भीतर गई, यह श्वास बाहर लौटी; यह फिर भीतर गई, यह फिर बाहर लौटी-- श्वास को देखते रहें। श्वास अनदेखी न रहे, श्वास की स्मृति बनी रहे कि यह श्वास भीतर जा रही है, यह श्वास बाहर जाने लगी। श्वास पर ही सारा ध्यान हो और गहरी श्वास हो। फिर सब स्वीकार का भाव रहे--जो भी है, स्वीकार है; जो भी है, स्वीकार है। और अब तीसरे प्रयोग में डूब जाएं--एक भाव करें, जैसे बूंद सागर में गिर जाती है, ऐसे ही मैं भी गिर गया अनंत के सागर में, मिट गया--मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं...

(दस मिनट तक अहंकार-विसर्जन का ध्यान-प्रयोग जारी रहता है, दस मिनट के बाद ओशो पुनः बोलना शुरू करते हैं।)

ध्यान के पहले चरण में दस मिनट गहरी श्वास लेना है और श्वास को ध्यानपूर्वक लेना है। इस संबंध में एक-दो बातें और ख्याल में ले लें।
दिन के किसी भी समय में क्रोध आ जाए, मन अशांत हो जाए, चिंतित हो जाए,
तो इस प्रयोग को एक मिनट के लिए करके देखें। जब भी मन क्रोधित हो, अशांत हो, चिंतित हो, गहरी श्वास लें और श्वास पर ध्यान करें। एक मिनट से ज्यादा क्रोध, चिंता या अशांति टिकनी असंभव हो जाएगी।

जमीन पर जापान शायद अकेला देश है, जहां अधिकतम लोग प्रसन्नचित्त दिखाई पड़ते हैं। इस संबंध में खोज-बीन चलती थी कि वहां के लोगों की प्रसन्नता का कारण क्या है? तो बहुत अजीब बात पता चली और वह यह कि जापान में छोटे-छोटे बच्चों को मां-बाप एक बात जरूर सिखाते हैं--कि जब भी क्रोध हो, मन अशांत हो, चिंतित हो, तो गहरी श्वास लो और श्वास पर ध्यान करो। इससे उनके पूरे व्यक्तित्व में बुनियादी अंतर हुआ है।
तो इसे कभी भी, दिन में किसी भी क्षण में अशांति मालूम पड़े, क्रोध मालूम पड़े, चिंता मालूम पड़े, तो एक मिनट के लिए प्रयोग करके देखें। गहरी श्वास लें और श्वास पर ध्यान करें। और जब ध्यान के लिए बैठें, तब तो अनिवार्य रूप से दस मिनट के लिए पहले गहरी श्वास लेकर। अगर इस प्रयोग को ही एक घंटे पूरा किया जाए, तो अलग से और कुछ करने की जरूरत भी नहीं है। बुद्ध की ध्यान की प्रक्रिया का नाम हैः अनापानसतीयोग। बुद्ध अपने भिक्षुओं को एक ही बात सिखाते थे, और वह यह कि तुम अपनी श्वास के आने-जाने की स्मृति रखो। अनापानसतीयोग का मतलब हैः श्वास का आना-जाना और उसकी स्मृति। जानते हुए कि श्वास भीतर आई, जानते हुए कि श्वास बाहर गई। अगर कोई व्यक्ति जितना ज्यादा श्वास पर ध्यान रख सके--रास्ते पर चलते हुए, बस में बैठे हुए, खाना खाते हुए, रास्ते पर चलते हुए--उतना ही उसका मन गहरी से गहरी शांति की पर्तों में उतरता चला जाता है।
अगर इस प्रयोग को ही एक घंटा रोज किया जा सके, तो तीन महीने में आप एक रूपांतरण देखेंगे। और कल्पना भी न कर पाएंगे कि इतना छोटा सा प्रयोग इतने बड़े परिणाम कैसे ला सकता है!
लाने के कारण हैं। जैसे ही हम गहरी श्वास लेते हैं और श्वास पर ध्यान करते हैं, तो श्वास हमारी आत्मा और शरीर को जोड़ने वाला सेतु है, ब्रिज है। उसी के द्वारा आत्मा और शरीर जुड़े हुए हैं। जब हम गहरी श्वास लेते हैं, तो शरीर और आत्मा के बीच का फासला बड़ा हो जाता है। और जब हम श्वास पर ध्यान करते हैं, तो शरीर धीरे-धीरे बाहर अलग पड़ा रह जाता है, आत्मा अलग हो जाती है और ध्यान बीच के अंतराल पर हो जाता है।
यह अगर एक घंटा रोज तीन महीने तक सिर्फ इतना ही प्रयोग कर सकें, तो आपका शरीर आपसे अलग है, इसकी स्पष्ट प्रतीति हो जाएगी, यह किसी शास्त्र

में पढ़ने जाना नहीं पड़ेगा। न केवल यह, बल्कि जितने लोग हम यहां बैठे हैं, अगर इतने लोग इस प्रयोग को कर सकें, तो कम से कम तीस परसेंट लोगों को तो किसी न किसी दिन यह भी अनुभव हो सकता है कि शरीर अलग पड़ा है, मैं अलग खड़ा हूं, और अपने ही पड़े हुए शरीर को देख रहा हूं। शरीर के बाहर होने का अनुभव भी हो सकता है। और एक बार भी यह अनुभव हो जाए, तो मृत्यु समाप्त हो गई। क्योंकि तब हम जानते हैं कि शरीर ही मरेगा, मेरे मरने का अब कोई कारण नहीं है। और जिस व्यक्ति के जीवन से मृत्यु का भय चला जाए, उस व्यक्ति के जीवन से सभी भय चले जाते हैं। क्योंकि मूल भय मृत्यु है। और जिस व्यक्ति को ऐसा दिखाई पड़ जाए कि मैं शरीर से अलग हूं, उसके जीवन में वह द्वार खुल जाता है जो प्रभु का द्वार है। लेकिन ऐसे दस मिनट शुरू में इसे करें।
आने वाले तीन दिनों में प्रयोग को हम समझेंगे। यह सुबह की बैठक इसीलिए है कि प्रयोग आपके पूरी तरह ख्याल में आ जाए।
रात सोते समय इसे करें आज भी। करते-करते बिस्तर पर ही लेट जाएं, करते- करते सो जाएं। अगर करते-करते ही सो जाएं, तो बहुत कीमती परिणाम होंगे। क्योंकि रात सोते समय जो हमारी आखिरी मन की दशा होती है, वह फिर पूरी नींद में उसकी प्रतिध्वनि होती रहती है। और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे पूरी नींद ध्यान में बदली जा सकती है। और आज की दुनिया में इतना समय नहीं किसी के पास कि अलग से ध्यान के लिए बहुत समय दे सके। इसलिए मेरी समझ ऐसी है कि रात सोते समय ध्यान अगर किया जाए, तो धीरे-धीरे बिना कोई अलग से समय निकाले रात की पूरी नींद ध्यान में बदल जाती है। और थोड़े दस-पंद्रह दिन में ही आपको पता पड़ना शुरू होगा कि नींद की क्वालिटी बदल गई, उसकी गहराई बदल गई। और जब सुबह आप उठेंगे, तो ऐसा नहीं लगेगा कि नींद से उठे, ऐसा लगेगा कि गहरे ध्यान से उठे। ताजगी, शांति, हलकापन--वह सब सुबह से ही मालूम होने शुरू हो जाएंगे। और यदि संभव हो सके, तो दो बार--सुबह स्नान के बाद कर लें, रात सोते समय कर लें। एक घंटा तीन महीने के लिए ध्यान के लिए दे दें।
फिर तीन महीने के बाद देना नहीं पड़ेगा ध्यान के लिए घंटा, ध्यान अपने
आप ले लेगा। तीन महीने तक आपको देना पड़ेगा, तीन महीने के बाद आपकी कोई जरूरत न रहेगी। वह जो आनंद की झलक आएगी, वह जो शांति की किरण आएगी, वह जो परमात्मा का स्पर्श मालूम पड़ना होगा शुरू, वह अपने आप बुला लेगा, अपने आप पुकार लेगा। मन का नियम है कि जहां आनंद है, मन उस तरफ अपने आप बहा चला जाता है। एक बार हम रास्ता भर पकड़ लें आनंद का, तो जैसे नदी सागर की तरफ भाग रही है, ऐसा मन आनंद की तरफ भागने लगता है। और जहां पूर्ण आनंद है, वहीं परमात्मा का निवास भी है।
कल सुबह फिर हम सात बजे यहां बैठेंगे। तो घर से स्नान करके आएं। अगर कोई नये मित्र आपके साथ आते हों, तो उन्हें भी बता दें कि वे स्नान करके आएं, चुपचाप आएं। घर से ही चुप होना शुरू हो जाएं और यहां आकर चुपचाप बैठ जाएं, यहां कोई शब्द का प्रयोग न करें। जितनी देर में मैं आऊंगा, दस-पांच मिनट पहले आप आ गए हैं, तो गहरी श्वास लेते हुए, कहीं भी कोने में बैठे हुए, जो मैंने कहा है वह करते रहें। मैं फिर आऊंगा, तो फिर हम सामूहिक बैठ कर प्रयोग करेंगे।
एकाध, दो मित्र ऐसे ही देखने आ गए हैं कि दूसरे क्या कर रहे हैं। उन्हें कल नहीं आना है। क्योंकि जिसे प्रयोग नहीं करना है उसे नहीं आना है। वह सबके लिए उपद्रव का कारण बनता है। उसे पता नहीं होता। और दूसरे को देख कर कुछ भी नहीं समझा जा सकता। क्या देख कर समझेंगे दूसरे को? अगर कोई देखे, तो उसे देख कर क्या समझेगा? वह आंख बंद किए बैठा है, उसे देख कर आप क्या समझेंगे?
कुछ भी समझना है, तो अपनी ही आंख बंद करके भीतर देखना पड़ेगा, दूसरे को देखने से कुछ समझ में आने वाला नहीं है।
तो तमाशबीन की तरह कोई भी न आए। एक-दो सज्जन आ गए हैं, वे कल से कष्ट न करें। और अगर आते हों कल, तो अपनी ही फिकर करें। दूसरा क्या कर रहा है, इसकी चिंता में किसी को पड़ने की जरूरत नहीं।
सुबह की हमारी बैठक पूरी हुई।

इस संबंध में कोई भी प्रश्न हों, तो कल लिखित मुझे दे देंगे, तो ध्यान
के पहले उनकी बात कर लूंगा। और अगर किसी को व्यक्तिगत कुछ इस संबंध में पूछना हो, तो दोपहर को तीन से चार कोई भी आकर पूछ ले सकता है।
सुबह की हमारी बैठक पूरी हुई।
बातचीत हम नहीं करेंगे, चुपचाप यहां से विदा हो जाएंगे।

साक्षी की साधना
तीसरा प्रवचन

अनंत धैर्य और प्रतीक्षा

जो दिखाई पड़ जाए उसका जीवन में प्रविष्ट हो जाना, वह भी उतना महत्वपूर्ण नहीं है; उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है, जो जीवन में प्रविष्ट हो वह आरोपित, जबरदस्ती, चेष्टा और प्रयास से न हो, बल्कि ऐसे ही सहज हो जाए--जैसे वृक्षों में फूल खिलते हैं, या सूखे पत्ते हवाओं में उड़ जाते हैं, या छोटे-छोटे तिनके और लकड़ी के टुकड़े नदी के प्रवाह में बह जाते हैं। उतना ही सहज जीवन में उसका आगमन हो जाए।
वह तो तीन दिनों में मैं चर्चा करूंगा, उसे आप समझने और सोचने की दिशा में सहयोगी बनेंगे। अभी आज की रात तो कुछ बहुत थोड़ी सी प्राथमिक बातें मुझे कहनी हैं।
लेकिन इसके पहले कि मैं वे बातें कहूं, यह भी आपसे निवेदन कर दूं। साधारणतः जो लोग भी धर्म और साधना में उत्सुक होते हैं, वे सोचते हैं कि बहुत बड़ी-बड़ी बातें महत्वपूर्ण हैं। मेरी दृष्टि भिन्न है। जीवन बहुत छोटी-छोटी बातों से बनता है, बड़ी बातों से नहीं। और जो व्यक्ति भी बहुत बड़ी-बड़ी बातों की महत्ता के संबंध में गंभीर हो उठता है, वह इस तथ्य को देखने से वंचित रह जाता है, अक्सर वंचित रह जाता है। उसे यह बात नहीं दिखाई पड़ पाती है कि बहुत छोटी-छोटी चीजों से मिल कर जीवन बनता है।
परमात्मा और आत्मा और पुनर्जन्म और इस तरह की सारी बातें धार्मिक लोग विचार करते हैं। इसमें बहुत छोटे-छोटे जीवन के तथ्य, दृष्टियां और हमारे सोचने और जीने के ढंग उनके ख्याल में नहीं होते। और तब बड़ी बातें हवा में अटकी रह जाती हैं; और जीवन के पैर जिस भूमि पर खड़े हैं, उस भूमि में कोई परिवर्तन नहीं हो पाता।
कुछ छोटी-छोटी थोड़ी सी बातों के संबंध में आज की रात चर्चा करना चाहूंगा। अगर उन पर थोड़ा ध्यान देंगे, तो आने वाले तीन दिनों में कुछ गहरा काम भी हो सकता है। इसके पहले कि मैं बात शुरू करूं, एक छोटी सी कहानी कहूं, शायद उस कहानी के आधार पर पूरी चर्चा होती चले।
दो मित्र पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकले। उन्होंने चाहा और आकांक्षा की कि हम सारी पृथ्वी को घूम डालें और देख डालें, और जीवन के विविध रूपों को अनुभव करें, और जीवन में जो अनुभव की संपदा है उसे बटोरें। लेकिन एक उनमें से अंधा था। बड़ी दया की दूसरे मित्र ने, वह उसका हाथ पकड़ कर उसे सारी पृथ्वी घुमाने के लिए राजी हुआ था। अंधा आदमी अपनी लकड़ी टेक कर और अपने मित्र का सहारा लेकर यात्रा शुरू किया।
लेकिन थोड़े ही दिनों में अड़चनें आनी शुरू हुईं। दूर से मित्र बने रहना एक बात है और लंबी यात्रा में सहयोगी और साथी होना बिल्कुल दूसरी। बहुत सी कठिनाइयां आनी शुरू हो गईं। छोटी-छोटी बातों में उपद्रव और विरोध शुरू हो गया। कटुता आनी शुरू हो गई। पृथ्वी बड़ी थी, परिक्रमा बहुत बड़ी थी। थोड़े ही दिनों में दोनों के बीच मनमुटाव गहरा हो गया।
एक रात दोनों एक रेगिस्तान में सोए। बहुत सर्द और ठंडी रात थी। सुबह जैसे ही अंधे मित्र की आंख खुली, उसने टटोल कर अपनी लकड़ी ढूंढ़नी चाही, जिसे वह रात रख कर सो गया था। उसके हाथ में लकड़ी आ भी गई, देख कर वह हैरान हुआ, जो लकड़ी उसके हाथ में आई थी, वह बहुत चिकनी, साफ-सुथरी, बहुत सुंदर मालूम हो रही थी। वह हैरान हुआ कि यह लकड़ी कहां से आ गई? उसकी लकड़ी तो बहुत साधारण और खुरदुरी थी। उसी लकड़ी से उसने अपने आंख वाले मित्र को हिलाया और जगाया और कहा कि उठो, सुबह हो गई है और पक्षी गीत गाने लगे हैं और मुर्गों ने बाग दे दी है, और अच्छा होगा कि हम जल्दी यात्रा पर निकल जाएं, इसके पहले कि सूरज चढ़े और धूप बढ़ जाए।
आंख वाले मित्र ने आंख खोली और वह घबड़ा कर दूर खड़ा हो गया और उसने अपने अंधे मित्र से कहा कि मित्र, तुम जो लकड़ी हाथ में लिए हो वह लकड़ी नहीं है, कृपा करके उसे जल्दी छोड़ दो! वह रात में, सर्दी में ठिठुर गया एक सर्प है और तुम उसे पकड़े हुए हो!

लेकिन उस अंधे आदमी ने कहाः अब तो हद्द हो गई! मेरे पास आंखें नहीं हैं, यह तो मैं समझता हूं, लेकिन मेरे पास हाथ हैं। तुम तो शायद अब यह भी कहने लगे कि तुम्हारे पास हाथ भी नहीं हैं। मुझे अनुभव हो रहा है कि लकड़ी है, सर्प नहीं है। और मैं तुम्हारी चालाकी भी समझ गया। शायद यह सुंदर लकड़ी तुम्हें बहुत मन को भा गई होगी और तुम चाहते हो कि मैं इसे छोड़ दूं तो तुम उठा लो। लेकिन मुझे धोखा देना इतना आसान नहीं है।
उसके मित्र ने बार-बार प्रार्थना की कि तुम कृपा करो और उसे छोड़ दो, वह सर्प है और लकड़ी नहीं है। लेकिन जितना वह मित्र प्रार्थना करता गया, उतना अंधे का आग्रह बढ़ता चला गया। अंततः बात यहां पहुंच गई कि उस अंधे आदमी ने कहा कि अब हमारा साथ आगे नहीं बन सकेगा। वे दोनों मित्र अलग हो गए। आंख वाले ने बहुत दुख से उस मित्र को विदा किया, लेकिन कोई रास्ता नहीं था। थोड़ी ही दूर चलने पर जब धूप तीखी हो गई, तो सर्प की सर्दी थोड़ी कम हुई, उसमें प्राण वापस लौटे। और उस अंधे आदमी का जो होना था वह हुआ। उस सर्प ने उसे काटा और वह अंधा आदमी मरा।
यह कहानी मैं किसी विशेष प्रयोजन से कह रहा हूं।
मनुष्य के जीवन में एक लंबी यात्रा है, हर मनुष्य के जीवन में, लंबी परिक्रमा है पूरी पृथ्वी की। जन्म से मृत्यु के बीच लंबी यात्रा है। और हर मनुष्य के भीतर दोनों मित्र मौजूद हैं--आंख वाला भी और न आंख वाला भी। जो आंख वाली शक्तियां हैं मनुष्य के भीतर, बहुत कम लोग उन्हें जगा पाते हैं और उन पर भरोसा करते हैं। जो अंधी शक्तियां हैं, अधिकांश लोग उन्हें ही पकड़ लेते हैं और उनके ही अनुगामी हो जाते हैं। यहां तक भी कि हम अंधी शक्तियों के साथ होकर आंख वाली शक्तियों का साथ भी छोड़ देने को तैयार हो जाते हैं। तब फिर जीवन में बहुत भटकन, एक अंधापन, दुख और पीड़ा शुरू होती है। और वह पूरा जीवन जीवन न रह कर मृत्यु की ही एक लंबी प्रक्रिया मात्र हो जाती है। फिर हम मरते हैं, रोज मरते जाते हैं, और एक दिन मौत आती है और समाप्त हो जाते हैं। लेकिन जीवन के अर्थ को और आनंद को नहीं जान पाते हैं। जीवन के अर्थ और आनंद को तो वही जान सकता है, जो स्वयं के भीतर आंख वाली शक्तियों का सहारा पकड़े। और जो स्वयं के भीतर अंधी शक्तियों का सहारा पकड़ता है, वह जीवन से भटक जाता है और अंधकार में खो जाता है। अंधापन अंधकार में ले जा सकता है, आंखें प्रकाश में। और प्रकाश के अतिरिक्त न जीवन का अर्थ है कोई और न जीवन में आनंद है कोई। और प्रकाश के बिना जीवन भटक जाता है।
कौन सी शक्तियां हमारे भीतर अंधी हैं, उनकी मैं बात करूंगा। कौन सी शक्तियां हमारे भीतर आंख वाली हैं, उनकी मैं बात करूंगा। उन तत्वों की भी बात करूंगा जो अंधी शक्तियों को प्रबल करते हैं और उनकी भी जो उन्हें निर्बल करते हैं और आंख वाली शक्तियों को जगाते हैं और चैतन्य करते हैं। यदि आपके जीवन में दुख, चिंता और पीड़ा हो, यदि आपने जीवन की कोई थिरक
और संगीत और आनंद अनुभव न किया हो, तो एक बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ लेना, जाने-अनजाने आपने जीवन की अंधी शक्तियों को ही बल दिया होगा, अन्यथा यह नहीं हो सकता था। अगर रास्ते पर हम चलें और पैर बार-बार गड्ढे में पड़ जाते हों और बार-बार किसी से टकराहट हो जाती हो और चोट लग जाती हो, तो हम समझेंगे कि या तो आंखें बंद हैं या आंखें अंधी हैं। लेकिन जीवन में यह रोज होता है, कि रोज बार-बार उन्हीं-उन्हीं गड्ढों में हमारे पैर जीवन के पथ पर गिरते हैं; नये-नये गड्ढों में भी नहीं। कल जो क्रोध किया था, वही क्रोध आज भी किया। आज जो क्रोध किया है, कल वही क्रोध फिर भी होगा। क्रोध के बाद पछताएंगे भी, दुखी भी होंगे, निर्णय भी करेंगे न करने का, लेकिन फिर घड़ी दो घड़ी बाद वही भूल सामने आ जाएगी, वही गड्ढा, वही आदमी, वही पैर और फिर वही गड्ढे में गिरना हो जाएगा।
जीवन निरंतर कुछ थोड़ी सी भूलों को ही दोहराते हैं हम जीवन भर। यह निरंतर उन्हीं-उन्हीं भूलों का दोहराना, जिनके लिए हम पछताए, दुखी हुए, पीड़ित हुए, कष्ट उठाया, निर्णय किया नहीं करने का, फिर उन्हीं को दोहराते हैं, किस बात की सूचना होगी? इस बात की कि भीतर आंख या तो बंद है या हमने जीवन में जो भी दृष्टि पकड़ी है वह अत्यंत अंधकारपूर्ण और अंधी है। उन्हीं

भूलों को इसके अतिरिक्त दोहराने का कोई भी कारण नहीं है। और फिर जो-जो हम जीवन में चाहते हैं, वही-वही उपलब्ध नहीं हो पाता। हर मनुष्य आनंद चाहता होगा, शांति चाहता होगा, एक संगीतपूर्ण व्यक्तित्व चाहता होगा, फूल की तरह सुरभित आत्मा चाहता होगा। लेकिन यह हो नहीं पाता। और जो हम करते हैं, वह सब ठीक हमें, जो हम चाहते हैं, उसके विरोध में ले जाता है।
इससे किस बात की सूचना मिलती होगी?
एक ही बात की सूचना मिलती होगीः आकांक्षाएं तो हमारी ठीक हैं, लेकिन आंखें हमारी अंधी हैं। और आंखें अंधी हों, तो स्मरण रखिए, खुद की आंखें अंधी हों, तो इस दुनिया में किसी दूसरे की आंख आपके काम नहीं पड़ सकती है। कृष्ण की, या क्राइस्ट की, या बुद्ध की, या महावीर की, या किसी की भी आंख आपके काम नहीं पड़ेगी। और आपकी आंख अंधी हो, तो आपके हाथ में सूरज भी लाकर रख दिया जाए, तो भी प्रकाश नहीं कर सकेगा, उसमें कोई अर्थ नहीं होगा।
एक अंधा आदमी एक मित्र के घर रात विदा ले रहा था। उसके मित्र ने कहाः अंधेरी रात है, सन्नाटा है, अमावस है, रास्ते सुनसान हैं, लोगों के घर बंद हैं, अच्छा होगा कि तुम हाथ में एक दीया लिए जाओ।
उस अंधे ने कहा कि आप बड़ी पागलपन की बातें करते हैं, मैं दीया भी ले जाऊं तो उसका क्या अर्थ? मेरी आंखें तो नहीं हैं। तो मेरे हाथ में प्रकाश भी होगा तो मैं क्या करूंगा?
फिर भी मित्र ने बहुत आग्रह किया, उसके आग्रह को मान कर वह अंधा आदमी
एक कंदील को लेकर रास्ते पर निकला। लेकिन वह कोई दस कदम ही गया होगा कि कोई दूसरा आदमी आकर उससे टकरा गया। उस अंधे आदमी ने कहाः मेरे मित्र, मुझे तो लालटेन नहीं दिखाई पड़ती, लेकिन तुम्हें तो दिखाई पड़ती होगी! क्या मैं किसी दूसरे अंधे आदमी से मुलाकात कर रहा हूं?
उस दूसरे आदमी ने कहाः नहीं भाई, मुझे तो दिखाई पड़ता है। लेकिन तुम्हारी कंदील की बाती बुझ गई है, तुम बुझी हुई कंदील लिए हुए हो, इसलिए कैसे दिखाई पड़ता?
तो अंधे आदमी को तो यह भी पता नहीं चल सकता कि कंदील बुझी है या जली है।
दुनिया भर के शास्त्र बुझी हुई कंदीलों की भांति हमारे हाथों में हैं। जिनसे कोई अर्थ नहीं है। कोई कुरान को लिए हुए है; कोई गीता को; कोई बाइबिल को; और तीनों टकरा जाते हैं रास्तों पर। तीनों की कंदीलें बुझ गई हैं। लेकिन कंदील बुझी है या जली है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, जब तक कि खुद के पास आंख न हो। आंख के बिना प्रकाश का कोई भी अर्थ नहीं है।
तो चाहे हम कितने ही प्रकाशवान लोगों को पूजें, औरों के वचनों को आदर दें, कोई उससे जीवन में हित होने वाला नहीं है, कोई मंगल होने वाला नहीं है। मंगल तो तब होगा, जब आंख खुली हो। और मैं स्मरण दिलाना चाहता हूं आपको कि आंख खुली हो तो अंधकार में भी रास्ता मिल सकता है और आंख बंद हो तो प्रकाश में भी कोई रास्ता नहीं है। मैं फिर दोहराता हूं, आंख बंद हो तो प्रकाश में भी कोई रास्ता नहीं है और आंख खुली हो तो अंधकार में भी रास्ता मिल जाता है।
जीवन में जो हमारे इतनी चिंताएं, इतना संताप, इतनी एंग्.जायटी, इतनी अशांति है, क्या कभी सोचा कि यह क्यों है? क्या कभी विचारा कि यह कैसे पैदा हो गई है?
यह आसमान से नहीं बरसती है, इसे हम पैदा करते हैं। जिस ढंग से हम रोज जीते हैं, उससे हम पैदा करते हैं। हमारे जीने का ढंग गलत है, सोचने का ढंग गलत है; देखने की दृष्टि मंद है; हाथ में, जीवन में कोई प्रकाश नहीं है। जो भी हम करते हैं, वह गलत ले जाता है। जो भी हम बनाते हैं, वह गलत हो जाता है। जिस भांति भी हम चलते हैं, वही रास्ता भटका देता है।
तो इन सारे तथ्यों को देखने पर एक बात ख्याल में आ जानी चाहिए और वह यह
कि हमने अपने जीवन में आंखों वाली शक्तियों को विकसित करने में संकोच किया होगा और अंधी शक्तियों को सहारा दिया होगा। कोई भी अंधी शक्तियां हों। श्रद्धा अंधी शक्ति है, विश्वास अंधी शक्ति है। विचार, विवेक, आंख वाली शक्तियां हैं। लेकिन हमने श्रद्धा को, विश्वास को, इनको बल दिया है।

विवेक को और विचार को नहीं। मूर्च्छा अंधी शक्ति है और हमने हर तरह से मूर्च्छा खोजी है। हमने तरह-तरह से बेहोश होने के उपाय किए हैं। न केवल हमने शराब और अफीम और गांजा, और अभी नई दुनिया में मैक्सलीन और एल एस डी, और इस तरह की चीजें खोजी हैं जिनसे हम मूर्च्छित हो जाएं, बल्कि हमने भजन, कीर्तन, धूप, नाम-जप, मालाएं और भी न मालूम कितनी ऐसी मानसिक तरकीबें खोजी हैं जिनसे मन तंद्रा में चला जाए और सो जाए। हमने मन को जगाने और चैतन्य करने के उपाय नहीं खोजे, हमने मन को सुलाने के, तंद्रा में ले जाने के, नींद में ले जाने के, मूर्च्छित होने के उपाय खोजे हैं।
निश्चित ही मूर्च्छा और नींद से एक तरह की शांति मिलती है, लेकिन वह शांति उसी तरह की है जिस तरह की मुर्दा आदमी को मिलती है। जीवंत वह शांति नहीं है, जो मूर्च्छा से आती हो। जीवंत शांति तो वह है, जो परम जागरण से उत्पन्न होती हो।
इस सबकी मैं बात करूंगा कि हमने किस भांति मूर्च्छा को, आंखें बंद करने को बल दिया है, सहारा दिया है और क्यों दिया है। और इसकी भी बात करूंगा कि कैसे हम उससे मुक्त हो सकें और जीवन-शक्तियों को, विवेक की और चैतन्य की शक्तियों को जगा सकें। इन दोनों की इन तीन दिनों में मैं चर्चा करूंगा।
इसके पहले कि वे तीन दिन की चर्चाएं आपके सामने हों, वे सारी बातें आपसे कहूं, इन तीन दिनों की बातों को सम्यक रूप से समझने, विचार करने, उस तरफ आंख उठाने के लिए कुछ छोटी-छोटी बातें आपसे अपेक्षित होंगी।
पहली अपेक्षा तो यह होगी कि इन तीन दिनों में--जो पीछे आप करते आए हैं, सोचते रहे हैं, विचार करते रहे हैं, उससे थोड़ा सा दूर हट कर अगर बातों को सुनने की कोशिश करेंगे, तो शायद कुछ हो सके। उससे थोड़ा तटस्थ होकर अगर सोचेंगे, तो कुछ हो सकता है। आमतौर से हम उसे भूल नहीं जाते जो हमारे मन में बैठा हुआ है।
एक फकीर के पास एक नया युवक दीक्षा लेने गया था। उस युवक ने जाकर उस फकीर के पैर पड़े और कहा कि मैं दीक्षित होने आया हूं।
तो उस फकीर ने पूछाः तुम किस जगह से आते हो?
उसने कहाः मैं पेकिंग से आता हूं।
उस फकीर ने पूछा कि पेकिंग में चावल के क्या भाव हैं?
वह युवक हंसा और उसने कहाः क्षमा करें, पेकिंग को मैं पीछे छोड़ आया, उसके चावलों को भी, उसके भाव को भी। और जिस रास्ते से मैं गुजर जाता हूं, वह मेरे लिए मिट गया हो जाता है; और जिस पुल पर से मैं गुजर जाता हूं, उसको मैं तोड़ देता हूं। मुझे कुछ पता नहीं कि पेकिंग में चावल के क्या भाव हैं।
उस फकीर ने कहाः तब ठीक है, तब मैं तुम्हें दीक्षा देने को राजी हूं। अगर तुम बताते कि पेकिंग में चावल के क्या भाव हैं, तो मेरे दरवाजे बंद हो जाते और मैं तुम्हें विदा कर देता। क्योंकि जो आदमी पेकिंग से चला आया और अब भी वहां के भाव साथ में लिए आया है, वह आदमी सत्य की खोज के लिए शांत नहीं हो सकता।
तो इन तीन दिनों में एक प्रार्थना करूंगा कि पेकिंग में चावल के क्या भाव हैं, उसको छोड़ देना। पेकिंग हो या अमरावती हो या कुछ और हो, वहां क्या चावल के भाव हैं, अगर वह तीन दिन याद रहे, तो बहुत कुछ काम नहीं हो सकता। और यह कठिन नहीं है। यह स्मरण मात्र कि जो बीत जाता है, उसका कोई भार चित्त पर नहीं होना चाहिए, यह स्मरण मात्र बीते से विदा दे देता है।
अभी रात जब आप सोएं, तो स्मरणपूर्वक यह ख्याल लेकर सोएं कि जो बीत गया,
वह बीत गया, और इन तीन दिनों में मैं बीते हुए को बार-बार मन पर नहीं लौटने दूंगा। इन तीन दिनों में जो सामने होगा उसको जीऊंगा और जो बीत गया उसको छोड़ दूंगा। अगर इस विचारपूर्वक स्मरण के साथ आप सोए, सुबह आप और तरह से उठेंगे, जैसे कि आप रोज उठते रहे होंगे, उससे बिल्कुल भिन्न उठेंगे। क्योंकि एक मन का बहुत अदभुत नियम हैः हम जिस बात को लेकर सो जाते हैं, ठीक उसी बात पर सुबह जागना होता है। उससे भिन्न बात पर कोई कभी नहीं जागता। रात जिस चिंता को लेकर आप सो गए हैं, सुबह उसी चिंता पर आप वापस जाग जाएंगे। रात भर वह चिंता आपके मस्तिष्क के द्वार पर खड़ी प्रतीक्षा करेगी,

जब आप जागेंगे, वह हाजिर हो जाएगी। रात्रि का अंतिम विचार सुबह का प्रथम विचार होता है। तो आज रात्रि का अंतिम विचार यही हो कि मैं, जो पीछे है, उसे छोड़ता हूं। कम से कम तीन दिन के लिए मैं, जो सतत वर्तमान है, उसमें जीऊंगा, अतीत को बीच में नहीं लाऊंगा।
जो व्यक्ति अतीत को बीच में नहीं लाता चित्त के, उसका चित्त बहुत निर्मल और शांत हो जाता है। क्योंकि अशांति सब अतीत से आती है; वर्तमान में कोई भी अशांति नहीं होती। इस तत्व पर तो अभी हम और विचार करेंगे तो समझ में आएगा कि कुछ थोड़े से सुझाव आपको दे रहा हूं। वर्तमान में, वह जो प्रेजेंट मोमेंट है, उसमें कोई अशांति नहीं होती। सब अशांति अतीत से संबंधित होती है या भविष्य से संबंधित होती है, वर्तमान में कभी कोई अशांत नहीं होता। आप खुद ही अपनी अशांति को देखेंगे तो समझ जाएंगे, या तो वह बीती हुई होगी या आने वाली होगी। ठीक क्षण में मौजूद कोई अशांति नहीं होती। अभी हम यहां बैठे हैं, अगर हमारा चित्त इसी क्षण में मौजूद हो जाए, कौन
सी अशांति है? अगर हम इसी क्षण में जाग जाएं, कौन सी अशांति है? अगर किसी जादू से आपका सब अतीत पोंछ दिया जाए, तो कौन सी अशांति है?
जीवंत क्षण में कोई अशांति नहीं होती है। पिछला भार, अतीत का भार चित्त को अशांति देता है। और आने वाले दिन की कल्पना और योजना चित्त को अशांति देती है।
इन तीन दिनों में, समझ लीजिए, न तो कोई अतीत है और न कोई भविष्य है। तीन दिन में बस ये तीन दिन के क्षण हैं, जो सामने क्षण आता है, वही है। इन तीन दिनों में इस भांति जीकर देखिए, एक बिल्कुल नई दृष्टि जीवन के प्रति खुल जा सकती है। और एक बार यह ख्याल में आ जाए कि जीवन पर जो भार है, जो टेंशन है, जो तनाव है, वह अतीत और भविष्य का है, तो मनुष्य को एक बिल्कुल नया द्वार मिल जाता है खटखटाने का। और तब फिर वह रोज घड़ी दो घड़ी को सारे अतीत और सारे भविष्य से मुक्त हो सकता है। और ख्याल रखिए, न तो अतीत की कोई सत्ता है सिवाय स्मृति के और न भविष्य की कोई सत्ता है सिवाय कल्पना के, जो है वह वर्तमान है। इसलिए यदि किसी भी दिन परमात्मा को या सत्य को जानना हो, तो वर्तमान के सिवाय और कोई द्वार नहीं है। अतीत है नहीं, जा चुका; भविष्य है नहीं, अभी आया नहीं है; जो है, एग्झिस्टेंशियल, जिसकी सत्ता है, वह है वर्तमान। इसी क्षण, जो सामने मौजूद क्षण है, वही। इस मौजूद क्षण में अगर मैं पूरी तरह मौजूद हो सकूं, तो शायद सत्ता में मेरा प्रवेश हो जाए। तो शायद जो सामने दरख्त खड़ा है, ऊपर तारे हैं, आकाश है, चारों तरफ लोग हैं, इन सबके प्राणों से मेरा संबंध हो जाए। उसी संबंध में मैं जानूंगा उसको भी जो मेरे भीतर है और उसको भी जो मेरे बाहर है।
इन तीन दिनों में अगर हमने थोड़ा सा भी समझपूर्वक जीने की कोशिश की--तो क्षण-क्षण में जीने की कोशिश करें, यह मेरा पहला निवेदन है। जब भोजन कर रहे हों, तो सिर्फ भोजन करें। भोजन के पहले की बात भूल जाएं और... मात्र भोजन करें। और सारा चित्त और सारे प्राण भोजन करने में ही तल्लीन हो जाएं। वे यहां-वहां डोलते हुए न हों।
अभी तो यह होता है कि हम जब भोजन करते हैं, तब चित्त कहीं और होता है--
घर में होता है, दुकान में होता है। जब दुकान में होते हैं, तब वह भोजन कर रहा होता है। जब बाजार में होते हैं, तब चित्त घर में होता है; जब घर में होते हैं, तब बाजार में होता है। मतलब यह कि जहां हम होते हैं, वहां हम नहीं होते। तो जीवन में एक विशृंखलता और एक खंडित स्थिति पैदा हो जाती है। और यह खंडित स्थिति इतनी खतरनाक है कि जब हम सोते हैं तब चित्त, दिन में जो उसने किया, उसका स्मरण करता है, सपने देखता है। जब हम दिन में काम करते हैं, तो रात जो सपने अधूरे रह गए हैं, चित्त उन सपनों को पूरा करता है। चित्त पूरे वक्त अनुपस्थित है, एब्सेंट है, जहां हम हैं। तो हमारा जीवन से संबंध कैसे होगा?
जब हम किसी को प्रेम कर रहे हैं, तब चित्त हमारा कहीं और है। तो जीवन में प्रेम कैसे होगा? और इसीलिए हम जीवन भर अनुभव करते हैं कि हम प्रेम चाहते हैं कि करें और हम चाहते हैं कि कोई हमें प्रेम दे, लेकिन न तो हम प्रेम कर पाते हैं और न कोई हमें प्रेम दे पाता है। प्रेम के लिए जरूरी है

कि हम वर्तमान में हों। लेकिन जब हम प्रेम करते हैं तब चित्त कहीं और होता है। और जहां चित्त प्रेम करते वक्त होता है, जब हम वहां होंगे, तो चित्त वहां होगा जहां उसे प्रेम करते वक्त होना चाहिए था।
ऐसे जीवन में सारी चीज टूट गई है। हम कहीं हैं, चित्त कहीं है। जब हम प्रार्थना करते हैं, तब चित्त कहीं और है; जब हम व्यवसाय करते हैं, तब चित्त कहीं और है। हम किसी काम में भी ठीक-ठीक मौजूद नहीं हैं।
इन तीन दिनों में एक छोटा सा प्रयोग करें--कि जो भी काम कर रहे हैं उसमें पूरी तरह मौजूद हो जाएं। अभी रात को यहां से जाकर सोएंगे, तो पूरी तरह सोएं। पूरी तरह सोने का मतलब यह है कि सोते वक्त इस भांति सोएं कि सारा काम समाप्त हुआ, अब सिवाय सोने के और कोई भी काम नहीं है। अब मैं अपने पूरे प्राणों से सोने जा रहा हूं। और मेरे पूरे प्राण सिर्फ सोने भर के काम को करें, और कोई भी काम नहीं है। उसी भांति सोएं। सुबह स्नान करें तो इस भांति स्नान करें कि स्नान करते वक्त आपका पूरा व्यक्तित्व स्नान कर रहा है, आपका चित्त कहीं और नहीं भागा जा रहा है।
थोड़े ही दिन स्मरणपूर्वक अगर हम चित्त के साथ सजगता बरतें, तो बहुत कठिन नहीं है कि एक दिन वह घड़ी आ जाए कि हम जो काम कर रहे हों, उसमें हम पूरी तरह मौजूद हो जाएं। बुहारी लगा रहे हों, तो पूरी तरह मौजूद हो जाएं। और अगर बुहारी लगाते हुए भी कोई पूरी तरह मौजूद हो जाए, तो उसे बुहारी लगाने में वही आनंद उपलब्ध होगा, जो किसी बड़े से बड़े योगी को ध्यान करने में उपलब्ध हुआ है। कोई फर्क नहीं रह जाएगा। ध्यान का एक ही अर्थ है कि हम जो कर रहे हैं, उसमें हमारा चित्त पूरी तरह मौजूद है, पूरी तरह लीन है, उससे बाहर नहीं है। कोई भी छोटा काम। अभी यहां से उठ कर आप अपने कमरे की तरफ जाएंगे, तो चलेंगे रास्ते पर, तो इस भांति चलें कि चलने के सिवाय और कोई क्रिया आपके चित्त में नहीं हो रही, बस सिर्फ चल रहे हैं, चलना ही रह जाए और आप मिट जाएं। अगर चलना ही रह जाए और आप मिट जाएं, तो आपके कमरे तक जो सौ कदम उठाए जाएंगे, वे सौ कदम परमात्मा के निकट ले जाएंगे। और उन सौ कदमों में ही आपको पता चलेगा कि चित्त तो अपूर्व रूप से शांत हो गया है।
तो इधर इन तीन दिनों में सतत इस बात की फिकर करें। जो भी काम कर रहे हों, उसे इतनी पूर्णता से करें, इतने पूरे, टोटल, इतने समग्ररूप से उसमें डूब जाएं कि उसके बाहर कुछ भी न रह जाए, आप वही हो जाएं।
एक दफा ऐसा हुआ, तिब्बत में एक बादशाह को अपने राज्य की एक मोहर बनानी थी। और मोहर पर उसके किसी सलाहकार ने कहा कि एक बोलता हुआ मुर्गा उस मोहर पर खोदा जाए। उसे बात जंच गई। उसने सारे राज्य के चित्रकारों को खबर की कि कोई बोलते हुए मुर्गे का चित्र बनाए। राज्य में एक बूढ़ा चित्रकार था, उसे भी बुलाया। लेकिन उसने कहा कि मैं इतना बूढ़ा हो गया हूं कि अब मैं नहीं बना सकूंगा।
तो राजा ने कहा कि तुम बनाते तो हो, चित्र तो बनाते हो, यह क्यों नहीं बना सकोगे?
उसने कहा कि कोई और बना सके तो बेहतर।
बहुत से चित्रकार मुर्गों के चित्र बना कर लाए, नमूने के लिए, लेकिन
उस बूढ़े चित्रकार ने कहा कि ये सब फिजूल हैं, ये कुछ भी नहीं हैं।
आखिर राजा परेशान हो गया, उसने कहाः तुम खुद बनाते नहीं, दूसरों को बनाने देते नहीं। फिर हम क्या करें?
उसने कहा कि मैं बनाऊं, लेकिन मेरा पक्का नहीं है, क्योंकि कम से कम तीन वर्ष लग जाएंगे।
राजा ने कहाः तीन वर्ष! एक मुर्गे का चित्र बनाने में?
उसने कहाः चित्र बनाना तो दो क्षण में हो जाएगा, लेकिन मुर्गा बनने में तीन वर्ष लग जाएंगे।
राजा ने कहाः तुम पागल हुए हो! मुर्गा तुमसे बनने को कह कौन रहा है?
उसने कहाः जब तक मैं मुर्गे को भीतर से न जानूं कि वह कैसा है, और जब वह बांग देता है तो उसके प्राणों में क्या होता है, जब तक यह मैं न जान लूं, जब तक यह स्फुरणा मेरे प्राणों में न हो जाए, तब तक मैं कैसे मुर्गे को बोलता हुआ बना सकूंगा? तीन वर्ष लगेंगे। मैं बूढ़ा आदमी हूं, विश्वास नहीं दिला

सकता, बीच में मर भी सकता हूं। तीन वर्ष राज्य की तरफ से मेरी व्यवस्था करनी पड़ेगी भोजन की, क्योंकि उस वक्त मैं कुछ भी नहीं करूंगा।
राजा ने कहा कि ठीक, हम व्यवस्था करेंगे।
तीन वर्ष की व्यवस्था की गई। वह बूढ़ा कलाकार जंगलों में चला गया, जहां जंगली मुर्गे रहते थे। दो-तीन महीने बाद राजा ने आदमी अपने देखने भेजे कि वह आदमी पागल तो नहीं है! क्योंकि एक मुर्गा बनाने के लिए तीन साल बहुत होते हैं। और एक निष्णात कलाकार है, जीवन भर उसकी प्रसिद्धि रही है, उसके हाथ में अदभुत जादू है। तुम जाकर देखो कि वह पागल क्या कर रहा है?
वे मित्र देखने गए, देख कर हैरान हो गए! वह बूढ़ा तो मुर्गों के बीच छिपा हुआ बैठा है, आस-पास मुर्गे बांग दे रहे हैं। उन्होंने तो उसे देखा, लेकिन उस बूढ़े ने उन्हें नहीं देखा।
और तीन महीने बाद गए, देखा कि वह तो मुर्गों के साथ दौड़ रहा है चारों हाथ-पैर पर। वह तो बिल्कुल पागल मालूम होता है, यह क्या कर रहा है?
तीन वर्ष पूरे हुए, राजा ने खबर भेजी, वह आदमी वापस दरबार में आया। राजा ने कहाः चित्र बना कर लाए हो?
उसने जोर से, जैसे मुर्गा आवाज देता है, वैसी आवाज दी।
राजा ने कहाः हम यह नहीं चाहते हैं, हमें चित्र चाहिए। तुम मुर्गे की आवाज सीख कर आए, इससे क्या होता है?
उस बूढ़े ने कहाः चित्र तो बना देना अब एक क्षण भर का काम है। सामान बुला लें, मैं यहीं बना दूंगा। लेकिन तीन वर्ष मैं मुर्गे के साथ एक होने की कोशिश किया, वह बात हो गई।
उसने एक चित्र बनाया, जो कहा जाता है मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में किसी भी पशु या पक्षी का ऐसा चित्र कभी नहीं बनाया गया। वह चित्र अदभुत है। उसने राजा से कहा कि अब इस चित्र की परीक्षा कर लो।
उसने कहाः इसकी क्या परीक्षा है? हम कैसे जानें कि यह चित्र इतना अदभुत बना?
उसने कहाः चित्र को रख दो और असली मुर्गों को ले आओ। अगर असली मुर्गा देख कर भाग जाए, तो तुम समझ लेना कि चित्र बना।
असली मुर्गे लाए, वे मुर्गे भाग गए। मुर्गे बाहर से झांक कर देखे उस चित्र को और वापस लौट गए। वह जो मुर्गा था, वह तो लड़ने की स्थिति में पूरी बांग देकर खड़ा हुआ था।
उस चित्रकार ने कहाः आदमी ही नहीं, मुर्गा भी पहचान लेगा कि मुर्गा है।
यह जो, उससे राजा ने पूछाः कैसे यह तुमने बनाया?
उसने कहाः तीन वर्ष तक मैं मुर्गे के साथ एक होने की कोशिश किया। मैं अपने को भूल गया और मुर्गा होता चला गया। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे ऐसे क्षण आए, जब मुझे यह स्मरण भी नहीं रहा कि मैं हूं। एक ही बात स्मरण रही--मुर्गा है। और उन्हीं क्षणों में मैंने मुर्गे की आत्मा को जाना।
जीवन में चौबीस घंटे जो भी हम कर रहे हैं, उसके साथ इतनी आत्मलीनता, इतना आत्मसात हो जाना जरूरी है कि हम मिट जाएं और वही रह जाए जो हम कर रहे हैं। चाहे वह काम कितना ही छोटा क्यों न हो, बड़ा क्यों न हो। जो भी काम हो, उसमें हम डूब सकें पूरे। यह डूबना इन तीन दिनों में एक छोटा सा प्रयोग करें। और मैं कह रहा हूं, चौबीस घंटे जो भी आप कर रहे हैं, उसमें उसका ध्यान रखें। इन तीन दिनों में ही एक बुनियादी फर्क अनुभव होगा। एक बात ख्याल में आएगी।
आज रात सोने से ही शुरू कर दें। वह अभी दूर है, जब यहां से उठ कर जाएं, तभी शुरू कर दें। वह भी थोड़ा दूर है, अभी मुझे सुन रहे हैं, सुनने में ही शुरू कर दें। सुनते वक्त सिर्फ सुनने की क्रिया रह जाए, आप जैसे सिर्फ सुन रहे हैं, और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। मात्र सुन रहे हैं, कान ही कान रह गए हैं और आप नहीं हैं। जैसे आप सिर्फ कान ही हैं जो सुन रहे हैं, आंख ही हैं जो सिर्फ देख रही हैं। अगर इस सुनने की क्रिया को भी इतनी शांति से और इतनी लीनता से सुनें, तो कुछ और सुनाई पड़ेगा। तब शायद वही सुनाई पड़ जाए जो मैं आपसे कह रहा हूं।

लेकिन अगर इतनी लीनता नहीं है सुनते वक्त, तो आप वह नहीं सुनेंगे जो मैं कह रहा हूं, आप वही सुनेंगे जो आप सुनना चाहते हैं, सुन सकते हैं, पहले से सुने हुए हैं, पहले से सोचे हुए हैं। तब आप वही सुनेंगे, तब फिर वह नहीं सुन पाएंगे जो मैं आपसे कह रहा हूं।
तो यहीं से शुरू कर दें। और इन तीन दिनों एक छोटे सूत्र पर काम करें कि
जो भी काम कर रहे हैं--उठ रहे हैं; बैठ रहे हैं; सो रहे हैं--उसमें पूरी तरह लीन हो जाएं।
यह तो पहला सूत्र।
दूसरी बात, अगर प्रत्येक कर्म में आत्मलीनता की बात पर थोड़ा ख्याल किया, तो चित्त बहुत गहरी शांति को अपने आप उपलब्ध होता है, उसके लिए कोई बहुत विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। दूसरी बात, चित्त इसलिए अशांत है कि हम कुछ होना चाहते हैं, कुछ बनना चाहते हैं, कोई दौड़ है हमारे भीतर, कोई एंबीशन, कोई महत्वाकांक्षा है--कोई धनी होना चाहता है, कोई बड़े पद पर होना चाहता है, कोई बड़ा त्याग करना चाहता है, कोई बड़ा साधु होना चाहता है, कोई मोक्ष जाना चाहता है, कोई समाधि उपलब्ध करना चाहता है, कोई सत्य पाना चाहता है--लेकिन कोई हमारी दौड़ है बड़ी गहरी। उस गहरी दौड़ की वजह से सारा चित्त अशांत और विकलता से भर जाता है।
मैं यह निवेदन करूं, जिस व्यक्ति को सच में ही, सच में ही जीवन के साथ आत्मलीन होना हो, सच में ही जीवन के साथ एकात्मता साधनी हो, उसे एक बात ख्याल में रखनी चाहिए, उसे अपने ना-कुछ होने को स्वीकार कर लेना चाहिए। उसे कुछ होने की दौड़ से नहीं, बल्कि ना-कुछ होने के केंद्र को स्वीकार कर लेना चाहिए।
जो व्यक्ति भी अपने नोबडी होने को स्वीकार कर लेता है, ना-कुछ होने को, उसके जीवन में अदभुत बातें होनी शुरू हो जाती हैं। और वह जो-जो होना चाहता था, वह अनायास होना शुरू हो जाता है। दो बातें हैं, एक तो जैसे एक आदमी पानी में तैरता है, हाथ-पैर फेंकता है; और एक दूसरा आदमी है जो पानी में बहता है, हाथ-पैर फेंकता नहीं, पानी की धारा पर अपने को छोड़ देता है और बहा जाता है। इन तीन दिनों में तैरने की कोशिश न करें, बहने की कोशिश करें। कोई ऐसी बहुत सचेत चेष्टा न करें कि यह करना है, वह करना है, यह होना है, वह होना है, बल्कि ऐसे जैसे तीन दिन आएंगे और गुजर जाएंगे और हमें चुपचाप बहे जाना है। यह अदभुत बात है कि जो व्यक्ति बहने के अर्थ को समझ लेता है, उसके चित्त से सारा तनाव विलीन हो जाता है। जो करने की कोशिश करता है, तैरने की, उसका चित्त बहुत तनाव से, बहुत अशांति से भर जाता है। और जो अशांति से भर जाता है, वह कभी सत्य को अनुभव नहीं कर सकता और न जीवन के आनंद को उपलब्ध हो सकता है। जीवन के आनंद की अनुभूति तो अत्यंत सरल चित्त में हो सकती है। और सरल चित्त का पहला लक्षण हैः बहता हुआ चित्त, तैरता हुआ नहीं।
तो इन तीन दिनों के लिए कह रहा हूं फिलहाल अभी तो, फिर तीन दिनों में कुछ अनुभव हो, तो वह तो अपने आप पूरे जीवन की, अपने आप पूरे जीवन की विधि बन जाती है। अभी तो तीन दिन की ही कुल बात है। इसलिए बहुत चिंता में न पड़ें कि अगर हम बहने लगे तो फिर जिंदगी का क्या होगा और अगर हमने कुछ भी होने की फिकर छोड़ दी तो फिर जिंदगी का क्या होगा, इस चिंता में न पड़ें। मैं केवल तीन दिन की ही बात कर रहा हूं, उसके आगे की कोई बात नहीं कर रहा हूं। तीन दिन कुछ प्रयोग करके देखें, उसमें से कुछ अगर सार्थक होगा, वह अपने आप बच जाएगा, आपको बचाने के लिए नहीं कहूंगा उसे। अगर कुछ होगा, तो वह अपने आप आपको पकड़ लेगा; आप उसे पकड़ें, यह निवेदन नहीं करूंगा। तो अभी तो तीन दिन, इस छोटी सी तीन दिन की घड़ियों के लिए सारी बात कर रहा हूं। तो तीन दिन थोड़ी बहने की कोशिश करें।
ये जो आमतौर से धर्म में उत्सुक लोग होते हैं, वे बहुत ज्यादा सीरियसनेस पकड़ लेते हैं, बहुत गंभीर; वे समझते हैं कि वे बहुत भारी गंभीर काम करने जा रहे हैं।
नहीं, धर्म के सत्य को जानने में केवल वे ही लोग सफल हो सकते हैं, जो बच्चों जैसे गैर-गंभीर हों, नॉन-सीरियस हों, जैसे बच्चे। गंभीर चित्त तनाव से भर जाता है। तो मैं आपसे निवेदन करूंगा, यहां गंभीरता को धारण नहीं कर

लेंगे। ज्यादा उचित होगा, हंसेंगे, प्रसन्न होंगे। गंभीर और उदास होकर नहीं बैठ जाएंगे। जो कौम भी परमात्मा के साथ गंभीरता और उदासी को जोड़ लेती है, उस कौम को परमात्मा तो नहीं मिलता, उस कौम के जीवन का सारा आनंद भी नष्ट हो जाता है।
तो प्रसन्न रहेंगे, हंसेंगे, ऐसे ही समझेंगे जैसे घूमने चले आए हैं। यहां कोई बहुत बड़ी साधना, कोई बहुत बड़ी परमात्मा की खोज, कोई बड़ा योग साधने आए हैं, तो बहुत गंभीर होकर--नहीं, उस तरह से चीजें नहीं पकड़ लेंगे। उस तरह से चित्त क्षुद्र होता है, उदास होता है। उस तरह के चित्त की जो भी सरलता है, वह सब नष्ट हो जाती है। ये साधु और संन्यासी सरल नहीं रह जाते, जिंदगी को इतनी गंभीरता से पकड़ते हैं। ठीक-ठीक व्यक्ति वही सरल हो सकता है, जो जिंदगी को एक खेल की भांति पकड़ता हो, एक गंभीर घटना की भांति नहीं--एक नाटक की भांति, एक खेल की भांति।
तीन फकीर हुए चीन में। अदभुत फकीर थे। उनके बाबत, एक तो उन तीनों का कोई नाम पता नहीं है। उन्होंने कभी बताया भी नहीं। थ्री लॉफिंग सेंट्स ही उनको कहा जाता था--तीन हंसते हुए फकीर। वे जिस गांव में जाते, उनके पहले ही उस गांव में खबर पहुंच जाती कि वे तीनों पागल आ रहे हैं। वे न तो भाषण करते थे, क्योंकि भाषण कैसे भी हो, कुछ न कुछ गंभीरता ले ही आता है। न वे कुछ समझाते थे। बस चौराहों पर खड़े होकर हंसना शुरू कर देते थे। एक हंसता था और दूसरा हंसता था और तीसरा और फिर वे तीनों हंसते थे और फिर भीड़ संक्रामक हो जाती, आस-पास लोग सुनते और वे भी हंसते और वह सारा गांव हंसने लगता। जिस गांव में वे दो-चार दिन टिक जाते, वह सारा गांव हंसने लगता। जिस गांव से वे गुजर जाते, वह गांव कहता कि वर्षों का भार, वे तीन आदमी तीन दिन रुक गए गांव में आकर, वर्षों का भार चला गया है।
तो मैं इधर कहूंगा कि इस शिविर को कोई गंभीर उपक्रम नहीं समझ लेना आप। गंभीरता रुग्ण चित्त का लक्षण है। सरलता से हंसते हुए और एक नाटक की भांति जीवन को लेने में जो समर्थ हो जाता है, उसे जीवन के बहुत से रहस्य खुल जाते हैं।
तो यह निवेदन करूंगा कि तीन दिन ऐसी सरलता से जीएंगे जैसे हम यहां प्रकृति के सौंदर्य को देखने इकट्ठे हुए हों। कुछ मित्र इकट्ठे हुए हों, कुछ गपशप करेंगे, कुछ हंसेंगे। मौज से तीन दिन बहें, इस भांति अपने को ढीला छोड़ देंगे। आक्रामक, एग्रेसिव माइंड नहीं होना चाहिए। और ये साधक जितने होते हैं, तथाकथित, वे सब एग्रेसिव होते हैं, आक्रामक होते हैं। एकदम से आक्रमण करते हैं चीजों को पाने के लिए। जब कि सच्चाई यह है कि सत्य जैसी चीज आक्रमण करके नहीं पाई जा सकती।
एक महिला मेरे पास आती थीं। वे संस्कृत की बहुत बड़ी पंडित हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे ईश्वर को पाना है। मैंने कहा कि कुछ ध्यान करें, तो शायद कुछ इस दिशा में गति हो। उन्होंने एक दिन ध्यान किया, लौटते में मुझसे बोलींः लेकिन अभी मुझे कुछ अनुभव नहीं हुआ। मैंने कहाः कल और। ईश्वर को एकाध मौका और दें। आप तो जल्दी में हैं और ईश्वर तो बड़ा सुस्त है, वह कोई जल्दी में मालूम नहीं होता, हजारों साल ऐसे ही गुजरते चले जाते हैं। उधर कोई जल्दी नहीं है। लाखों साल, करोड़ों साल ऐसे गुजर गए हैं, जैसे कोई वहां जल्दी नहीं मालूम होती। तो आप तो जल्दी में हैं और वह कोई जल्दी में नहीं है। एक मौका और दें। कल और आएं। वे कल आईं। बड़ी गंभीर थीं, भारी गंभीर थीं, गीता उन्हें कंठस्थ थी, बातें करतीं तो उपनिषद आते, गीता आती, वेद आते, बहुत गंभीर थीं। फिर आईं, फिर लौट कर मुझसे बोलींः लेकिन क्षमा करिए, अभी तक मुझे कोई ईश्वर का अनुभव नहीं हो पा रहा है। मैंने उनको कहाः होगा भी नहीं कभी। और मैंने उनको एक छोटी सी कहानी कही थी, वह मैं आपको भी कहूं।
उनको मैंने कहा थाः एक नदी पर एक बूढ़ा संन्यासी अपने एक युवक संन्यासी के साथ नाव से उतरा। नाव से उतर कर उसने उस मांझी से पूछा, नाव वाले से पूछा कि यह जो पास का गांव है, क्या मैं सूरज डूबने के पहले वहां पहुंच जाऊंगा? सूरज डूबने को था और उस गांव का नियम था, सूरज डूबते ही उस गांव के दरवाजे बंद हो जाते थे, किले के, फिर कोई प्रवेश नहीं कर सकता था।

तो फिर रात भर मुझे बाहर रुकना पड़ेगा, क्या मैं पहुंच जाऊंगा सूरज डूबने के पहले?
उस मांझी ने कहा कि जरूर पहुंच जाएंगे, लेकिन एक बात ख्याल रखना, अगर धीरे-धीरे गए तो पहुंच जाएंगे और अगर जल्दी गए तो मुश्किल है।
उस संन्यासी ने कहाः यह पागल मालूम होता है! क्योंकि जल्दी जाऊंगा तो पहुंचूंगा, समझ की बात होती है। यह कहता है कि अगर धीरे गए। इसकी बातों में मत पड़ो। अपने युवा साथी को कहा कि भागो! सूरज डूबने को है और अगर रात रुक गए, तो रात जंगल, जंगली जानवर और बाहर दीवाल के पड़े रहना पड़ेगा।
वे दोनों भागे। लेकिन थोड़ी ही दूर जाकर, सूरज नीचे उतरने लगा, अंधेरा जंगल में घिरने लगा। वे और तेजी से भागे। और वह बूढ़ा संन्यासी एक पत्थर से चोट खाकर गिर पड़ा। उसके पैर लहूलुहान हो गए। पीछे से वह मांझी भी अपनी नाव बांध कर, अपनी पतवार वगैरह लेकर आता था। उसने कहा कि देखते हो, मैंने कहा था, धीरे गए तो पहुंच जाओगे। जल्दी चलने वाला कभी पहुंचता ही नहीं।
और तब उस संन्यासी को दिखाई पड़ा कि ठीक कहा था। वह आदमी पागल नहीं है; बड़े अनुभव से उसने यह बात कही थी।
मैं भी आपसे कहता हूंः परमात्मा के द्वार केवल उसी के लिए खुलते हैं
जो इतने धीरे जाता है, इतने धीरे कि उसके धीरज का कोई अंत नहीं। और जो जल्दी करता है, उसके लिए तो द्वार बंद हो जाते हैं। द्वार इसलिए बंद हो जाते हैं कि जल्दी करने वाला मन अशांत मन है, धीरज से और अनंत धैर्य से जाने वाला मन शांत मन है। द्वार इसलिए बंद नहीं हो जाते कि परमात्मा बंद कर देता है उनको; हम बंद कर लेते हैं। वह जो अधैर्य है, वह अशांति है। वह जो गंभीरता है, वह अशांति है। वह जिंदगी पर जो आक्रमण है, वह अशांति है।
कोई आक्रमण नहीं। एग्रेसिव नहीं, रिसेप्टिव। आक्रामक नहीं, ग्रहणशील। जैसे सुबह हम अपना दरवाजा खोलते हैं, हम सूरज पर हमला नहीं करते और रस्सी बांध कर उसको घर में नहीं लाते, सिर्फ द्वार खोल कर बैठ जाते हैं। फिर सूरज ऊगता है, उसकी रोशनी घर में भर जाती है। ऐसे ही अपने चित्त के द्वार को खुला छोड़ दें और फिर प्रतीक्षा करें। सूरज उठेगा और घर रोशनी से भर जाएगा।
आक्रमण नहीं किया जा सकता, केवल मन के द्वार खोले जा सकते हैं, ग्रहणशील हुआ जा सकता है। और ग्रहणशील होने के लिए तीन बातें आज की रात मैं आपसे कहता हूं।
पहली बातः प्रतिक्षण में जीने की कोशिश करें सहजता से।
दूसरी बातः अति गंभीरता से जीवन को न लें। बड़ी सरलता से, जैसे खेल को लेते हों, वैसा ही जीवन को लें।
और तीसरी बातः कोई अधैर्य, कोई जल्दी न करें। जितनी जल्दी करेंगे, उतनी देर हो जाती है। और जो जितने धैर्य से खड़ा हो जाता है, उतनी ही जल्दी हो जाती है।
एक और कहानी और मैं चर्चा को पूरा करूं, फिर तो तीन दिन हम बात करेंगे।
उस कहानी को अपने साथ लेकर सो जाएं। बिल्कुल झूठी कहानी है, लेकिन सत्य उसमें बहुत है।
एक संन्यासी वर्षों से, जन्मों से प्रार्थना-पूजा में लगा था। ऊब गया
और घबड़ा गया और बेचैन हो गया। क्योंकि पूरे वक्त जब वह प्रार्थना कर रहा था, तब दृष्टि तो प्राप्ति पर लगी थी और जिस दिन उसकी प्रार्थना असफल हो गई, उसी दिन दुख और मनोचिंता व्याप्त होती चली गई। एक दिन उसने देखा कि नारद वहां से निकलते हैं और उस बूढ़े संन्यासी ने कहा कि सुनते हैं, मैंने सुना है कि निरंतर भगवान की तरफ आप जाते हैं, कभी उनसे पूछें कि मेरी मुक्ति को और कितनी देर है? मेरे पीछे जिन्होंने शुरू किया था, वे आगे निकल गए और मैं वहीं का वहीं पड़ा हूं, यह कैसा अन्याय है? और जन्म-जन्म हो गए उनकी प्रार्थना करते, अब तक फल नहीं मिला! आखिर कब मुझ पर कृपा होगी? नारद ने कहाः जरूर पूछ लूंगा।
बगल में ही उसी दिन, उसी दरख्त के पीछे--बरगद का बड़ा दरख्त था--एक युवा फकीर अपना एकतारा लेकर नाचता था। नारद ने मजाक में उससे पूछा कि मित्र, तुम्हें भी तो काफी देर हो गई, तुम भी तो सुबह से साधु हुए हो, अब सांझ होने

को आ रही है, तुम्हें भी पूछना है परमात्मा से तो तुम्हारे लिए भी पूछ लूंगा?
वह खूब हंसने लगा, और उसने कहाः कृपा करना, मेरा नाम वहां मत उठाना, इस योग्य मेरा नाम नहीं है। और कृपा करना, कुछ पूछना मत। क्योंकि जो पूछता है, वह सौदा करता है। और जो यह कहता है--कब तक मिलेगा? उसे करने में कोई आनंद नहीं है, मिलने में आनंद है। मैं तो जो गीत गा रहा हूं, मुझे सब मिला जा रहा है उसमें ही। और मैं जो नाच रहा हूं, मैंने उसमें पा लिया। इसलिए कुछ पूछना मत, मेरा नाम मत उठाना, मेरी बात मत उठाना।
लेकिन नारद कुछ दिनों बाद लौटे, और उन्होंने उस बूढ़े फकीर को कहा कि मैंने पूछा था, उन्होंने कहा कि तीन जन्म और लग जाएंगे।
उस फकीर ने अपनी माला नीचे पटक दी और भगवान की जो मूर्ति रखी थी, एक लात मारी उसमें और कहाः हद हो गई अन्याय की! इसीलिए तो नास्तिक ठीक कहते हैं कि ऐसा भगवान, वह कुछ शक की ही बात है। मैं नहीं मानता-करता ये सब बातें, बहुत हद हो गई! इतने दिन हो गए, अभी तीन जन्म और लगेंगे!
और नारद ने उस फकीर से कहा जो नाच रहा था उसी दरख्त के पीछे, कि मित्र,
अब तुमको बताने में मुझे और भी डर लगता है, क्योंकि जिसने तीन जन्म की बात ही सुन कर लात मार दी और माला फेंक दी, तुम पता नहीं क्या करोगे! मैंने तुम्हारे लिए पूछ लिया था, यद्यपि तुमने तो मना किया था, लेकिन उत्सुकतावश मैं नहीं रुक सका। मैंने पूछा, तो परमात्मा ने कहा कि वह युवक जिस वृक्ष के नीचे नाचता है, उसमें जितने पत्ते हैं, उतने ही जन्म लग जाएंगे।
वह युवक और तेजी से नाचने लगा, उसके एकतारे पर और भी गीत मधुर हो उठा
और उसकी आंखें ज्योति से चमक उठीं और उसने भगवान को धन्यवाद दिया कि तेरा धन्यवाद! जमीन पर कितने वृक्ष हैं! और उन वृक्षों में कितने पत्ते हैं! तेरी कृपा अनंत है कि एक ही वृक्ष के पत्तों के बराबर जन्मों में मेरी मुक्ति हो जाएगी। मैं कहां इस योग्य! लेकिन जरूर तेरी कृपा होगी बड़ी। इसीलिए मुझ पर, जो कभी भी पात्र नहीं था, योग्य नहीं था, तूने इतनी दया की है।
और कथा यह है कि वह यह कहते ही उसी क्षण मुक्त हो गया।
हो ही जाएगा। ऐसा चित्त जो इतनी सरलता से, इतनी कृतज्ञता से, इतनी धन्यता से, इतनी अपनी अपात्रता से और परमात्मा की इतनी अनुकंपा के बोध से भरा हो और जिसमें इतना धैर्य हो कि वह कह सके कि जमीन पर कितने वृक्ष और कितने पत्ते! और इस छोटे से वृक्ष में पत्ते ही कितने हैं, इतने ही जन्मों में मैं मुक्त हो जाऊंगा। तो यह तो बड़ी जल्दी हो गई, यह तो बड़ी शीघ्रता हो गई। जिसकी इतनी पेशेंस है, इतना धैर्य है, वह तो उसी क्षण, उसी क्षण मुक्त हो जाएगा। क्योंकि ऐसे चित्त को रोकने का कोई भी कारण नहीं रह गया, ऐसे चित्त के द्वार बंद होने की कोई वजह नहीं रह गई।
तो यह कहूंगा अंत मेंः अधैर्य से नहीं कुछ होता है इस दिशा में। अनंत धैर्य और प्रतीक्षा में! और वह केवल उनमें ही हो सकती है जो जीवन को बड़ी सरलता से खेल की तरह लेंगे। गंभीरता से नहीं, हंसते हुए, मौन में, शांति में, प्रेम में और धैर्य में जो जीवन को लेंगे, जीवन उनके प्रति अपने सब रहस्य अनायास खोल देता है।
ये तीन छोटी सी बातें कहीं, इन तीन पर थोड़ा ख्याल करेंगे, विचार करेंगे और फिर आने वाले तीन दिनों में इस भूमिका को लेकर, मन की इस भूमिका को लेकर सुनेंगे, तो शायद कोई बात आपके काम की हो सके और शायद कोई बात आपके मार्ग पर प्रकाश बन सके। लेकिन निर्भर करता है आप पर, मुझ पर नहीं। वह आपकी चित्त की भूमिका और तैयारी, उसकी दृष्टि और उसकी विराटता और उसकी सरलता पर सब कुछ निर्भर करता है।
तो पहले दिन तो परमात्मा से यही प्रार्थना करूंगा कि वह आपके चित्त
को ऐसी भूमिका दे। क्योंकि बीज कुछ भी नहीं कर सकते हैं अगर भूमि तैयार न हो। और अगर भूमि तैयार हो, तो बीज अंकुरित हो सकते हैं और उनमें कुछ आ सकता है, उनमें कुछ पैदा हो सकता है और कोई फूल लग सकते हैं। यह प्रार्थना करूंगा इस पहले दिन की पहली सभा में कि परमात्मा आपके हृदय को ऐसी सरलता,

शांति और मौन दे कि वह भूमि बन सके और उसमें कोई भी बीज जाए तो अंकुरित हो सके और पल्लवित हो सके।

मेरी इन बातों को इतने थके हुए, इतनी यात्रा के बाद, इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

साक्षी की साधना
चौथा प्रवचन

श्रद्धा-अश्रद्धा से मुक्ति

मनुष्य के जीवन में आनंद का कोई अनुभव नहीं होता, उस संबंध में थोड़ी
सी बात मैंने आपसे कही थी। आज सुबह, अंधेपन का कौन सा मौलिक आधार है, उस पर हम बात करेंगे।
कई सौ वर्ष पहले, यूनान की सड़कों पर एक आदमी देखा गया था। भरी दोपहरी में सूरज के प्रकाश में भी वह हाथ में एक कंदील लिए हुए था। लोगों ने उससे पूछा कि यह क्या पागलपन है, इस कंदील को लेकर इस भरी दोपहरी में किसे खोज रहे हो?
उस आदमी ने कहाः एक ऐसे आदमी की खोज करता हूं जिसके पास आंखें हों।
वह आदमी था उस समय का एक बहुत अदभुत फकीर डायोजनीज। डायोजनीज को मरे हुए बहुत वर्ष हो गए और डायोजनीज जीवन भर वह लालटेन लिए हुए खोजता रहा उस आदमी को जिसके पास आंखें हों। लेकिन उसे वह आदमी नहीं मिला।
पीछे अमरीका में एक अफवाह उड़ी कि डायोजनीज फिर लौट आया है और अमरीका में अब फिर लालटेन लिए हुए खोज रहा है। किसी ने उससे पूछा कि क्या हजार, डेढ़ हजार साल हो गए तुम्हें खोजते, अब तक वह आदमी नहीं मिला जिसके पास आंखें हों?
डायोजनीज ने कहाः वह आदमी तो नहीं मिला, एक ही संतोष मुझे है कि मेरी लालटेन अब भी मेरे पास है और कोई उसे चुरा नहीं लेता है! और अब तो मैंने आशा भी छोड़ दी है कि वह आदमी मिलेगा!
लेकिन हम सबके पास आंखें हैं। और कोई यह कहे कि हम आंख वाले आदमी को खोजते हैं और वह नहीं मिलता, तो हमें हैरानी होगी। लेकिन जो भी जानते हैं, वे कहेंगे कि हमारे पास आंखें केवल वस्तुओं को और पदार्थ को देख पाती हैं, उसे नहीं जो परमात्मा है। हमारी आंखें अत्यंत पार्थिव को देख पाती हैं, उसे नहीं जो अपार्थिव है। और हमारी आंखें दूसरों को देख पाती हैं, स्वयं को नहीं।
ऐसी आंखों से जीवन का काम तो चल जाता है, लेकिन जीवन का अर्थ उपलब्ध नहीं होता है। ऐसी आंखों से हम टटोल-टटोल कर किसी भांति गिरते-गिरते मृत्यु के दरवाजे तक तो पहुंच जाते हैं, लेकिन जीवन के द्वार तक नहीं पहुंच पाते हैं। इन आंखों के आधार पर चलने वाला और कहीं नहीं पहुंचता, सिवाय मृत्यु के। वह कहीं भी दौड़े, कुछ भी कोशिश करे, कैसे भी प्रयास करे, लेकिन अंत में पाया जाता है कि वह मौत के दरवाजे पर पहुंच गया। ये आंखें, जीवन के, परम जीवन के द्वार तक नहीं ले जाती मालूम होती हैं। जन्म के बाद हम रोज-रोज मौत की तरफ सरकते जाते हैं। और फिर हम चाहे कोई भी उपाय करें और कोई भी सुरक्षा और सिक्योरिटी की व्यवस्था करें, मौत से बचना नहीं हो पाता।
हमारी सारी व्यवस्था शायद उसी से बचने के लिए है। धन इकट्ठा करते हैं,
यश इकट्ठा करते हैं, शक्ति इकट्ठी करते हैं कि शायद शक्ति से, पद से और धन से हम एक दीवाल बना लेंगे और अपने को मौत से बचा लेंगे। लेकिन हमारा कोई भी उपाय सार्थक नहीं होता, वरन हम जो उपाय मौत से बचने के करते हैं, वे ही उपाय हमें और भी गति से मौत की तरफ ले जाते हैं। और यह कोई एक आदमी की कथा नहीं है, सभी की कथा है--जो हुए उनकी, जो हैं उनकी और जो होंगे उनकी।
लेकिन थोड़े से लोग इस कथा से भिन्न भी हैं, कुछ लोग अपवाद भी सिद्ध हुए हैं।
क्राइस्ट को जिस रात पकड़ा गया और सुबह उनको सूली दी जाने को थी, उनके
एक मित्र ने, ल्यूक ने उनसे पूछा कि क्या आप घबड़ाए हुए नहीं हैं? कल मौत आ जाएगी, क्या आपके चित्त में परेशानी और बेचैनी नहीं है?
क्राइस्ट ने कहाः जिस दिन से भीतर देखा, उस दिन से मौत मिट गई। अब मुझे मारने वाले इस भ्रम में होंगे कि उन्होंने मुझे मारा, और मैं नहीं मरूंगा।

मंसूर नाम के एक फकीर को सूली पर लटकाया गया और उसके हाथों में कीलियां ठोंकी गईं। और जब लोगों ने उससे कहा कि तुम्हें अंतिम कोई बात कहनी है?
तो मंसूर ने कहाः यही कि तुम जिस भ्रम में हो, परमात्मा करे, वह भ्रम तुम्हारा टूटे।
उन लोगों ने कहाः कौन सा भ्रम?
मंसूर ने कहाः यही कि तुम मरते हो या मार सकते हो। जो है प्राणों के प्राण में, वह अमृत है।
लेकिन हम तो ऐसे अमृत को जानते नहीं। हम तो जानते हैं रोज चारों तरफ घटती हुई मृत्यु को और खुद भी निरंतर मृत्यु की तरफ सरकते हैं, इसे भी जानते हैं। एक श्वास हम लेते हैं और एक आदमी जमीन पर कहीं मर जाता है। एक श्वास भीतर जाती है और एक आदमी मर जाता है, और एक श्वास बाहर निकलती है और एक आदमी मर जाता है। प्रतिक्षण चारों तरफ मौत घटित हो रही है और हम उसके बीच खड़े हैं, और हम कुछ भी करें और कहीं भी भागें।
एक बादशाह हुआ, उसने रात एक स्वप्न देखा। स्वप्न में उसने देखा कि कोई काली छाया उसके कंधे पर हाथ रखे है और उससे कह रही है कि कल ठीक समय और ठीक स्थान पर मुझे मिल जाना, मैं मृत्यु हूं और कल तुम्हें लेने आ रही हूं। कल सूरज डूबने के पहले ठीक जगह उपस्थित हो जाना।
उसकी घबड़ाहट में नींद टूट गई। उसने अपने राज्य के बड़े ज्योतिषियों को बुलाया और पूछा कि मैंने ऐसा स्वप्न देखा! और स्वप्न विश्लेषकों को बुलवाया, उस समय के जो फ्रायड होंगे, और होंगे, उनको बुलवाया और उनसे पूछा कि इस स्वप्न का क्या अर्थ है? और उन ज्योतिषियों से पूछा कि इस स्वप्न का क्या अर्थ है? और मैं क्या उपाय करूं? क्योंकि मुझे एक खबर मिली स्वप्न में कि आज संध्या होने के पूर्व मौत मुझे पकड़ ले जाएगी।
उन सारे लोगों ने बहुत सोचा और उन्होंने कहा कि सोचने में समय खोना गलती होगी, आपके पास जो तेज से तेज घोड़ा हो, उसे लेकर आप भागने की कोशिश करें। जिस राजधानी में वह था, दमिश्क में, उसके मित्रों ने और उसके ज्ञानियों ने सलाह दी कि तेज से तेज घोड़ा लें और भागें और सूरज डूबने के पहले जितनी दूर निकल सकें निकल जाएं। और इसके सिवाय अब हम कुछ भी सोचने में समय गंवाना ठीक नहीं समझते। हम सोचते रहें और विश्लेषण करते रहें और व्याख्या और शास्त्रों में खोजते रहें और सांझ हो जाए और मौत आ जाए, फिर कौन जिम्मेवार होगा?
उस राजा ने फिर एक क्षण भी न खोया, उसने अपने अस्तबल से एक तेज से तेज घोड़ा बुलाया, उस पर वह बैठा और वह भागा। अपने मित्रों और अपनी पत्नी और अपने बच्चों को विदा के दो शब्द भी कहने की उसे फुर्सत न थी। रोते हुए लोगों ने विदा दी। लेकिन फिर भी उसे एक ख्याल था कि बहुत तेज घोड़ा उसके पास है और सांझ होने के पहले वह सैकड़ों मील दूर निकल जाएगा।
सच में ही वह सैकड़ों मील दूर निकल गया। उस दिन उसने न खाना लिया, न पानी पीया, न वह एक क्षण को विश्राम के लिए रुका, वह घोड़े को भगाता ही रहा, भगाता ही रहा। आखिर में सूरज डूबने के पहले वह सैकड़ों मील दूर एक बगीचे में जाकर झाड़ के नीचे रुका। वह घोड़े को बांध ही रहा था कि मौत पीछे आकर खड़ी हो गई और उसने कहाः मित्र, हम हैरानी में थे, इतनी दूर तुम्हारी मौत होने को थी, तुम पता नहीं आ भी पाओगे या नहीं आ पाओगे! ठीक जगह तुम आ पहुंचे और ठीक समय पर, घोड़ा तुम्हारा लाजवाब है।
जिंदगी भर हम भागते हैं, भागते हैं और आखिर में वहां पहुंच जाते हैं जिससे हम भागते थे और जिससे हम बचते थे। और जिसके लिए हमने घोड़े दौड़ाए--यश के, और धन के, और शक्ति के, और पद के--उसी जगह हम पहुंच जाते हैं। और तब मौत हमें धन्यवाद देगी कि तुम्हारी दौड़ बहुत अच्छी थी, तुम्हारे पास घोड़े बहुत तेज थे और तुम ठीक जगह और ठीक समय पर आ पहुंचे हो।
यह जो जिंदगी है, जो अंततः हमें मृत्यु के दरवाजे पर ले जाती है, जरूर कहीं गलत और भूल भरी है। अगर जीवन ठीक हो, तो परम जीवन के द्वार पर पहुंच जाना चाहिए। लेकिन बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं, जो वहां पहुंचते हों। और नहीं पहुंचते तो एक ही कारण हैः हम किसी भांति आंतरिक जीवन के प्रति,

वास्तविक जीवन के प्रति अंधे हैं। हमें पदार्थ ही दिखाई पड़ता है, परमात्मा नहीं। और जब तक परमात्मा दिखाई न पड़े, पदार्थ के ऊपर चेतना के जब तक दर्शन न हों, आकार से भिन्न निराकार अनुभूतियों का द्वार न खुले, तब तक जानना चाहिए--आंखें बंद हैं। जो आंखें आकार ही देखती हैं, वे आंखें देखती ही नहीं; और जो आंखें केवल ठोस वस्तुओं को ही देख पाती हैं, वे आंखें देख ही नहीं पाती हैं। इस सारे आकार के साथ कुछ निराकार व्याप्त है, और इस सारी देह के साथ कुछ अदेही भी, और इस सारे पदार्थ के भीतर कोई और भी मौजूद है। उसे देखने वाली आंखों के लिए जरूरी है कि वे अंधी न हों।
मैंने कहा रात, श्रद्धा और विश्वास अंधा करते हैं। बात थोड़ी उलटी लगेगी, क्योंकि हजारों वर्षों से यही सिखाया गया है कि जो श्रद्धा नहीं करता और विश्वास नहीं करता, वह तो परमात्मा को जान ही नहीं सकेगा। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जो श्रद्धा करता है और विश्वास, उसके लिए परमात्मा को जानने का कोई भी उपाय नहीं है। किसी कारण से यह मैं कहना चाहता हूं। इस कारण से यह कहना चाहता हूं, क्योंकि श्रद्धा करने वाला मन, विश्वास करने वाला मन, अंधा हो जाता है। श्रद्धा का अर्थ हैः जो हम नहीं जानते, उसे मान लें; जो हमने नहीं देखा, उसे स्वीकार कर लें; जो हमने नहीं सुना, उस पर आस्था कर लें; जो हमारा अनुभव नहीं है, वह हमारी मान्यता बन जाए, श्रद्धा का यही अर्थ है। मैं कहूं कि परमात्मा है और आप विश्वास कर लें, यह श्रद्धा होगी। हो सकता है मेरे लिए वह ज्ञान हो; लेकिन मेरा ज्ञान आपका ज्ञान बन जाए, तो श्रद्धा है आपके लिए। हो सकता है मैंने जाना हो, मैं आपसे कुछ कहूं और उसे आप स्वीकार कर लें, वह आपका जाना हुआ नहीं है। आप अंधेपन में गिर रहे हैं, आप अंधे हो रहे हैं, आप अपने भीतर की अंधी शक्तियों को बल दे रहे हैं। श्रद्धा अंधा करती है। और जो भी अंधा करता है, वह परमात्मा तक नहीं ले जा सकता। उसके लिए तो बहुत खुली हुई, बहुत सतेज आंखें चाहिए। उसके लिए तो बहुत, बहुत उन्मुक्त प्रकाश से, आलोक से भरी हुई आंखें चाहिए। उसके लिए श्रद्धा का अंधकार और अंधापन, नहीं उसका मार्ग है। लेकिन सिखाया हमें यह गया है कि हम श्रद्धा करें, और हम श्रद्धा करते रहे हैं। सभी कौमें जमीन पर, सभी तरह के लोग पूरी जमीन पर श्रद्धाएं करते रहे हैं। पूरी जमीन पर और किसी बात पर हम शायद ही सहमत हों, लेकिन एक बात में हम सब सहमत हैं, अंधश्रद्धा की दिशा में। मुश्किल से कभी कोई व्यक्ति पैदा होता है जो इनकार करता है श्रद्धा से। जो इनकार करता है श्रद्धा से, उसकी खोज शुरू होती है, उसकी इंक्वायरी शुरू होती है। जो श्रद्धा के घेरे में आबद्ध हो जाता है, उसकी खोज बंद हो जाती है। खोज तो हम तभी करते हैं, जब हम किसी दूसरे को मानने के लिए राजी नहीं होते। तभी हमारे प्राण अपनी खोज पर निकलते हैं, तभी हमारे प्राणों की शक्ति जागती है और हम खोज के लिए आगे बढ़ते हैं, हमारी खोज की यात्रा शुरू होती है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अश्रद्धा करें। अश्रद्धा भी श्रद्धा का ही
एक रूप है। मैं यह कह रहा हूं कि अंधे न बनें, श्रद्धा में या अश्रद्धा में। एक आदमी मानता है, ईश्वर है; हम कहते हैं, यह श्रद्धालु है। एक आदमी मानता है, ईश्वर नहीं है; हम कहते हैं, यह अश्रद्धालु है। मेरे लिए दोनों अंधे हैं। क्योंकि जो कहता है, ईश्वर है, उसने भी नहीं जाना; और जो कहता है, ईश्वर नहीं है, उसने भी नहीं जाना। वे दोनों बिना जाने कुछ बात को स्वीकार कर रहे हैं। जो बिना जाने स्वीकार करता है, चाहे आस्तिक हो, चाहे नास्तिक, वह श्रद्धालु है, और श्रद्धालु अंधा हो जाता है।
आस्तिक भी अंधे हैं और नास्तिक भी। आपका आस्तिक या नास्तिक होना इस बात पर निर्भर है कि आप किस प्रोपेगेंडा और किस प्रचार के घेरे में पैदा हुए हैं। अगर आप हिंदू घर में पैदा हुए हैं, तो आपकी एक तरह की श्रद्धाएं बन जाएंगी। अगर आप मुसलमान घर में पैदा हुए हैं, तो दूसरी तरह की। अगर आप सोवियत रूस में पैदा हुए हैं, तो नास्तिक की, तीसरी तरह की। ये सारी की सारी श्रद्धाएं आस-पास के वातावरण, प्रचार, सिद्धांतों की हवाओं में पैदा होती हैं, ये आपका ज्ञान नहीं हैं। और जो व्यक्ति इनको पकड़ लेता है, उसे फिर ज्ञान के खोज की जरूरत ही समाप्त हो जाती है। फिर वह खोज ही नहीं करता।

खोज तो तब शुरू होती है जब एक व्यक्ति बाहर से आए हुए किन्हीं भी सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वह अस्वीकार करता है। इस थोड़े से बारीक भेद को समझ लेना जरूरी है। अस्वीकार भी नहीं करता, स्वीकार भी नहीं करता, वह यह कहता है कि जो भी बाहर है, जो भी दूसरों का कहा हुआ है, वह मेरा जाना हुआ नहीं है। इसलिए मैं कैसे कहूं कि वह सच है? या मैं कैसे कहूं कि वह झूठ है? वह अपने को मुक्त रखता है। वह कोई आग्रह में अपने को आबद्ध नहीं करता। वह किसी जंजीर को पकड़ता नहीं। वह यह कहता है कि मैं नहीं जानता हूं, मुझे पता नहीं कि ईश्वर है या नहीं है। मुझे पता नहीं कि हिंदू ठीक कहते हैं कि मुसलमान, कि ईसाई, कि जैन। मुझे पता नहीं है। मैं निपट अज्ञानी हूं, और इस अज्ञान में मैं कोई भी आग्रह करूंगा, तो वह आग्रह खतरनाक होगा।
अज्ञानियों के आग्रह बहुत खतरनाक सिद्ध हुए हैं। सारी दुनिया में धर्म लड़ते हैं अज्ञानियों के आग्रह के कारण, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है। जिन बातों का उन्हें पता नहीं है, उन बातों के लिए मस्जिद और मंदिरों को जलाने को तैयार हैं। जिन बातों का उन्हें पता नहीं है, उनके लिए वे शास्त्रों को नष्ट करने को या नये शास्त्र निर्मित करने को तैयार हैं। जिन बातों का उन्हें कोई पता नहीं है, उनके लिए वे लाखों लोगों की हत्या करने को या मर जाने को तैयार हैं।
अज्ञान में पकड़ी गई श्रद्धाएं बहुत स्युसाइडल सिद्ध हुई हैं, बहुत आत्मघाती सिद्ध हुई हैं। सारी दुनिया में धार्मिक लोग लड़ते रहे हैं। कहीं धार्मिक व्यक्ति भी लड़ सकता है? धार्मिक लोग हत्याएं करते रहे हैं। धार्मिक व्यक्ति भी हत्याएं कर सकता है? धार्मिक लोग मंदिरों की मूर्तियां तोड़ते रहे हैं, मस्जिदों को जलाते रहे हैं। धार्मिक व्यक्ति भी यह कर सकता है? और अगर धार्मिक यह करेगा, तो फिर अधार्मिक के लिए क्या शेष रह जाता है? फिर अधार्मिक क्या करेगा?
नहीं, यह धार्मिक व्यक्ति ने नहीं किया है। यह किया है अज्ञान में पकड़ी हुई श्रद्धा वाले लोगों ने। अज्ञान और श्रद्धा, दोनों मिल कर बहुत खतरनाक चीज बन जाती है।
लेकिन मैं आपको स्मरण दिला दूं कि अज्ञान के ही कारण हम श्रद्धा कर लेते हैं। हम नहीं जानते, इस सत्य को स्वीकार करने का साहस बहुत कम लोगों में होता है। मैं फिर से दोहराऊंः हम नहीं जानते हैं, इस सत्य को स्वीकार करने का साहस बहुत कम लोगों में होता है। और जिस व्यक्ति में यह साहस ही नहीं है, वह समझ ले कि सत्य की खोज उसका जीवन नहीं बन सकती। यह तो प्राथमिक साहस है, यह तो पहला चरण है--कि मैं इस बात को जानूं कि मैं नहीं जानता हूं। और जो अपने अज्ञान को स्वीकार कर लेता है, वह सभी तरह की श्रद्धाओं से मुक्त हो जाता है। जो अपने अज्ञान को स्वीकार करने से बचना चाहता है और जो यह दिखाना चाहता है कि नहीं, मैं जानता हूं; इस थोथे अहंकार की पूर्ति करना चाहता है; वह किसी न किसी तरह की श्रद्धा को पकड़ लेता है और कहने लगता है कि ईश्वर है या ईश्वर नहीं है; आत्मा है या आत्मा नहीं है; पुनर्जन्म है या पुनर्जन्म नहीं है; और इस तरह की बहुत सी बकवासें हैं, उनमें से वह किसी को पकड़ लेता है और उसको दोहराने लगता है। और चूंकि वह खुद जानता नहीं है, बहुत कमजोर है, इसलिए अगर आप उसकी बात न मानें तो वह तलवार लेकर खड़ा हो जाता है। क्योंकि उसके पास मनाने का और कोई उपाय भी नहीं है, वह खुद तो जानता नहीं है। तो मनाने का एक ही उपाय है कि वह तलवार उठा ले। मनाने का एक ही उपाय है कि वह भीड़ खड़ी कर ले। मनाने का एक ही उपाय है कि वह अपनी संख्या बढ़ाता जाए। इसलिए तो हिंदू फिकर करता है, संख्या कम न हो जाए; मुसलमान फिकर करता है, संख्या बढ़ जाए; ईसाई फिकर करता है, और लोगों को पी जाओ; और सारे धर्म फिकर करते हैं, हमारी संख्या बढ़े और कम न हो जाए। क्योंकि संख्या बल है, तलवार का बल, शक्ति का बल, भीड़ का बल। उस बल के आधार पर ही हम अपने अज्ञान में पकड़ी गई श्रद्धाओं के लिए समर्थन दे सकते हैं। और हमारे पास कोई भी समर्थन नहीं है।
ज्ञान का जहां समर्थन है, वहां शक्ति का और हिंसा का कोई समर्थन कभी नहीं पकड़ा जाता है। जहां अज्ञान है, वहां समर्थन में यही बात होती है।

कमजोर क्रोधी हो जाता है, कमजोर लड़ने को तैयार हो जाता है। दुनिया के धार्मिक लोग लड़ते रहे हैं, यह इस बात की सूचना है कि अज्ञानी और कमजोर लोगों ने दूसरों के ज्ञान को जबरदस्ती अपना ज्ञान बना लिया है। और तब कितने खतरे हुए हैं, उनका कोई हिसाब नहीं है। कितने लाखों लोग काटे गए हैं, उसका कोई हिसाब नहीं है। कितने लाखों लोग जलाए गए हैं, उसका कोई हिसाब नहीं है। और जिन्होंने ये जलाए हैं, उनके बुनियाद में है अज्ञानपूर्ण श्रद्धा।
पहली बात जानने की जरूरी है कि किसी भी तरह की श्रद्धा, जो मैं अपने अज्ञान में पकडूंगा, मेरे लिए परतंत्रता बन जाएगी। मैं फिर उस श्रद्धा के ऊपर नहीं उठ सकूंगा। उस श्रद्धा के ऊपर उठने में मेरे प्राण कंपने लगेंगे, मुझे भय मालूम होने लगेगा, मुझे डर लगने लगेगा। क्यों? डर लगेगा इस बात का... और वह तो टूटना बिल्कुल स्वाभाविक है। जो व्यक्ति खोजने के लिए चला है, वह अगर किसी भी श्रद्धा को पकड़ेगा, उसकी श्रद्धा टूटनी स्वाभाविक है, खोज के पहले ही टूट जानी स्वाभाविक है। नहीं तो खोज कैसे शुरू होगी?
खोज तो तभी शुरू हो सकती है जब मैं निष्पक्ष हूं; जब मेरा माइंड, मेरा
मन अनप्रिज्युडिस्ड है, बिना किसी पक्षपात के। लेकिन हम सब तो पक्षपात से भरे हैं। और फिर हम कहते हैं, हम सत्य को खोजना चाहते हैं और जीवन को जानना चाहते हैं। लेकिन अपने पक्षपात को छोड़ने को हम राजी नहीं हैं। और हमारे पक्षपात बहुत गहरे हमारे प्राणों को जकड़े हुए हैं। पक्षपात मनुष्य के चित्त की सबसे बड़ी परतंत्रता है। और पक्षपात खड़े होते हैं--श्रद्धाओं से, विश्वासों से, बिलीफ से।
इसके पहले कि कोई आदमी सच में खोजने निकले कि क्या है, उसे सब पक्षपातों से मुक्त हो जाना होगा, उसे सारे विश्वासों से मुक्त हो जाना होगा, उसे सारी श्रद्धाओं से मुक्त हो जाना होगा। उसे ये सारी जंजीरें तोड़ देनी होंगी। ये जंजीरें कोई दूसरा हमारे ऊपर नहीं लादता है, हम खुद बांधते हैं। इसलिए तोड़ने के लिए भी हम हमेशा स्वतंत्र हैं। कोई दूसरा हम पर बांधता नहीं, यह खुद हम स्वीकार करते हैं। हम खुद इनको अंगीकार करते हैं। सुरक्षा के लिए हम इनको अंगीकार कर लेते हैं। अज्ञान में असुरक्षा है, इग्नोरेंस में इनसिक्योरिटी है। अज्ञान में कुछ रास्ता नहीं मिलता, कोई किनारा नहीं मिलता, तो हम किसी ज्ञान के किनारे को पकड़ लेते हैं, ताकि एक सहारा मिल जाए, सुरक्षा मिल जाए, मुझे भी लगे कि मैं भी जानता हूं।
लेकिन अज्ञान में पकड़ा गया कोई भी ज्ञान, ज्ञान कैसे हो सकता है? पकड़ने वाला जब अज्ञान में है, तो वह जो भी पकड़ेगा, वही अज्ञान हो जाएगा। अज्ञान की स्थिति में कोई ज्ञान, ज्ञान नहीं बन सकता। अज्ञानी गीता को पकड़ेगा, गीता खतरनाक हो जाएगी। अज्ञानी महावीर को पकड़ेगा, महावीर खतरनाक हो जाएंगे। अज्ञानी मोहम्मद को पकड़ेगा, मोहम्मद खतरनाक हो जाएंगे। वह अज्ञानी का जो जहर है, वह जो भी पकड़ेगा, वही जहर वहां व्याप्त हो जाएगा। अज्ञानी ने जो भी पकड़ा है, वह खतरनाक हो गया है। पहली बात जानने की हैः अज्ञानी को अपने भीतर अज्ञान को नष्ट करना है, ज्ञान को पकड़ना नहीं। अज्ञान नष्ट हो जाए, तो ज्ञान का जन्म उसके भीतर होगा। और अगर वह ज्ञान को पकड़ ले, अज्ञान भीतर होगा, ऊपर ज्ञान की बातें होंगी।
पंडित में और क्या होता है? भीतर अज्ञान होता है, ऊपर ज्ञान की बातें होती हैं। भीतर घना अंधकार होता है, ऊपर शास्त्र होते हैं। भीतर निपट अंधकार होता है, ऊपर मंत्र और शब्द और शास्त्रों का जाल होता है। उस जाल के भीतर जाने पर निपट अज्ञानी आदमी खड़ा हुआ है।
एक पंडित से तो एक सीधा-सादा अज्ञानी भी बेहतर है, इसलिए कि उसे अपने अज्ञान का बोध होता है। जिसे अपने अज्ञान का बोध होता है, उसे पीड़ा होती है, दुख होता है। उसे लगता है कि इस अज्ञान को मैं कैसे मिटाऊं? लेकिन जिसको अज्ञान का बोध ही मिट जाए और थोथे ज्ञान को पकड़ कर वह बैठ जाए और सोचे कि मैंने जान लिया, वह तो डूब गया। अज्ञान भीतर रहेगा, थोथा ज्ञान बाहर होगा। आज तक शायद ही कभी कोई पंडित ने सत्य जाना हो। वह जान नहीं सकता। शब्द उस पर इतने भारी होते हैं, दूसरों के सिद्धांत उसके प्राणों पर पत्थर की तरह सवार होते हैं। वह बातें जानता है, सिद्धांत जानता है, तर्क

जानता है, उनके लिए आर्ग्यू कर सकता है, लड़ सकता है, विवाद कर सकता है, पच्चीस तरह की बातें और व्याख्याएं कर सकता है, लेकिन जान नहीं सकता। जानने की पहली शर्त तो यह है कि वह दूसरे के ज्ञान को स्वीकार-अस्वीकार न करे। कैसी होगी वह स्थिति जब हम दूसरों के ज्ञान को स्वीकार और अस्वीकार नहीं करेंगे? बड़ी सरल होगी, बड़ी ह्युमिलिटी की होगी, बड़ी विनम्रता की होगी; क्योंकि हम जानेंगे कि हम नहीं जानते हैं।

सॉक्रेटीज से किसी ने कहा कि लोग कहते हैं कि तुम सबसे बड़े ज्ञानी हो। सॉक्रेटीज ने कहाः उनसे कहना कि वे भ्रम में हैं। क्योंकि जैसे-जैसे मैं जानने लगा, वैसे-वैसे मुझे पता चला कि मैं तो बड़ा अज्ञानी हूं। जैसे- जैसे मैं जानता गया, वैसे-वैसे मेरा अज्ञान स्पष्ट होता गया। और अब तो मैं एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
यह जो स्थिति है चित्त की, अगर पैदा हो जाए, तो एक क्रांति घटित हो जाती है।
क्या हमारे मन की इतनी तैयारी है कि हम अज्ञानी होने को राजी हो जाएं? अज्ञानी हम हैं, होना नहीं है, सिर्फ इस तथ्य को स्वीकार करना जरूरी है कि हम अज्ञानी हैं। क्या सच में आपको पता है कि ईश्वर है? क्या सच में आपको पता है कि आपके शरीर के भीतर कोई आत्मा है? कभी कोई झलक आपको आत्मा की मिली है? कभी कोई स्पर्श हुआ है? कभी ईश्वर से कोई मुठभेड़ हुई है? कोई मुलाकात हुई है? कोई एनकाउंटर हुआ है? कभी पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ देखा और जाना है? मृत्यु के घेरे के बाहर अमृत की कोई भी झलक कभी मिली है?
नहीं, सुनी हैं बातें, शास्त्रों में पढ़ी हैं, गुरुओं के मुंह से सुनी हैं और उनको हम पकड़े बैठे हैं। और उनको हम पकड़े रहे, तो हम उन्हें पकड़े- पकड़े समाप्त हो जाएंगे। समाप्त हो जाएंगे बिना उसको जाने जो जाना जा सकता था और निरंतर निकट था।
इसके पहले कि जीवन समाप्त हो जाए, यह चित्त की परतंत्र स्थिति समाप्त होनी चाहिए। इस तथ्य को बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाना चाहिए हमारे मन के समक्ष कि मेरे जानने का कुछ भी आधार नहीं है।
क्या होगा उससे? क्यों मैं इतना जोर दे रहा हूं इस बात पर कि अज्ञान स्पष्ट हो जाना चाहिए?
इसलिए जोर दे रहा हूं कि जैसे ही अज्ञान स्पष्ट हुआ, आपके जीवन में एक क्रांति की संभावना शुरू हो गई। जैसे हम यहां बैठे हैं और चारों तरफ आग लग जाए, तो जिसको यह दिखाई पड़े कि चारों तरफ आग लगी है, वह फिर यहां आराम से और शांति से बैठा नहीं रहेगा। लेकिन जिसे दिखाई पड़े कि नहीं, कोई आग वगैरह नहीं लगी है, वह यहां आराम से बैठा रहेगा और शांति से बैठा रहेगा।
यह तथ्य दिखाई पड़ जाए कि मेरे भीतर गहन अंधकार और अज्ञान है, तो वह अज्ञान और वह अंधकार आपको फिर शांति से बैठने नहीं देगा। उसकी पीड़ा उससे मुक्त होने के लिए द्वार बनेगी, मार्ग बनेगी। बीमारी का पता चल जाए, तो हमारे भीतर स्वास्थ्य की सहज आकांक्षा है। लेकिन बीमारी का पता न चले, तो स्वास्थ्य की सहज आकांक्षा सक्रिय नहीं हो पाती। अज्ञान का पता चल जाए, तो हमारे भीतर ज्ञान की गहन अभीप्सा है। लेकिन अज्ञान का पता न चले, तो ज्ञान की खोज प्रारंभ भी नहीं हो पाती। अज्ञान का बोध मनुष्य को ज्ञान की प्यास से भर देता है। अज्ञान का बोध ही ज्ञान की प्यास से भरता है। लेकिन जो लोग झूठे ज्ञान को पकड़ लेते हैं, उनके भीतर ज्ञान की प्यास मंदी होती जाती है, धीमी होती जाती है। धीरे-धीरे-धीरे बुझ ही जाती है।
ज्ञान की प्यास जगे, उसके लिए अज्ञान का तीव्रतम बोध आवश्यक है। और मजा यह है कि अज्ञान मौजूद है, उसको कहीं से लाना नहीं है, केवल बोध मौजूद नहीं है। अज्ञान मौजूद है, बोध मौजूद नहीं है। अज्ञान से अगर हमारा बोध संयुक्त हो जाए... वह तभी होगा, जब हम इस झूठे ज्ञान के जाले और ताने-बाने को तोड़ दें। इसे तोड़ने में कोई वर्षों के अयास करने की जरूरत नहीं है कि हम ज्ञान को तोड़ने जाएं।

एक फकीर उठा और सुबह उठते ही उसने अपने एक शिष्य को पास बुलाया और उसने कहा कि रात मैंने एक सपना देखा। क्या तुम मेरे सपने की व्याख्या कर सकोगे?
उस युवक ने यह भी न पूछा कि वह सपना कैसा है? उसने कहाः आप रुकें, मैं पानी ले आता हूं, हाथ-मुंह धो डालें।
वह युवक पानी लेने चला गया। वह पानी लेकर आया। वह फकीर अपना हाथ-मुंह धोता था, तभी दूसरा शिष्य भी करीब से निकला। उसने उसे भी बुलाया और उसने कहा कि सुनो, रात मैंने एक सपना देखा, क्या तुम उसकी व्याख्या कर सकोगे? उसने कहाः अगर आप हाथ-मुंह धो चुके हों, तो मैं चाय ले आऊं।
उस फकीर ने कहा कि तुम दोनों अदभुत हो, तुमने दोनों ने मेरे सपने की व्याख्या कर दी। अगर तुमने आज मेरे सपने की व्याख्या की होती, मैं तुम्हें आश्रम से निकाल कर बाहर कर देता। क्योंकि सपनों की जो व्याख्या करता है, वह नासमझ है। सपना आया और एक आदमी पानी ले आया हाथ-मुंह धोने के लिए, यह समझ वाली बात है--कि आप जाग जाएं ठीक से, ताकि फिर न आ जाए सपना। और दूसरा आदमी चाय ले आया--कि अब आप चाय पी लें, ताकि वापस लौटने की कोई गुंजाइश न रह जाए। सपने की व्याख्या और तोड़ने की कोशिश और मिटाने की कोशिश इस बात का सबूत है कि सपने को हमने स्वीकार कर लिया है। ऐसे ही श्रद्धाओं को तोड़ने का सवाल नहीं है, सपने की भांति हैं, आप उनको पकड़े हैं, इसलिए वे हैं। आपको यह स्पष्ट हो जाए कि कोई श्रद्धा ज्ञान नहीं बन सकती, वे विलीन हो जाएंगी हवा में उसी तरह, जिस तरह सपने जागने पर विलीन हो जाते हैं। सिर्फ यह तथ्य स्मरण में आ जाए कि मैं अज्ञानी हूं और मेरा कोई भी ज्ञान अपना नहीं है, यह मैंने दूसरों से स्वीकार कर लिया और पकड़ लिया।
लेकिन सिखाया तो हमें यह जाता है कि रोज सुबह गीता पढ़ना और रोज-रोज पढ़ना और जीवन भर पढ़ना। और सिखाया तो हमें यह जाता है कि कुरान जब तुम्हें पूरी याद हो जाए, तो तुम ज्ञानी हो जाओगे। और सिखाया तो हमें यह जाता है कि जो बाइबिल को पूरी दोहरा दे वह ज्ञानी हो जाता है।
लेकिन चाहे वे उसे कितने ही कंठस्थ हो जाएं, चाहे नींद में भी वह उनको बकने लगे, बोलने लगे, तो भी ये शब्द हैं और मात्र स्मृति है, लेकिन ज्ञान नहीं है। स्मृति और ज्ञान, मेमोरी और नालेज में बुनियादी फर्क है। स्मृति तो एक यांत्रिक व्यवस्था है। ज्ञान यांत्रिक व्यवस्था नहीं है। स्मृति बाहर से आती है। जो भी हमें स्मरण है, वह बाहर से आता है। और जो भी हम जानते हैं, वह भीतर से आता है।...
अजीब मुश्किल में फंस गई है सारी दुनिया। प्रति सप्ताह पांच हजार किताबें नई छप जाती हैं सारी दुनिया में। एक वक्त ऐसा आएगा, आदमी को रहने की जगह न बचेगी, किताबें इतनी हो जाएंगी; कि आदमी को दफनाना हो, तो किताबों में दफनाना पड़ेगा; मकान बनाना हो, तो किताबों का बनाना पड़ेगा। क्या करिएगा? या फिर आदमी को कुछ और तरकीबें सिखानी पड़ेंगी कि आप अपनी पैदाइश कम करो, क्योंकि किताबों को रखने के लिए जगह नहीं है। अगर पांच हजार ग्रंथ प्रति सप्ताह तैयार होंगे, तो यह तो होना स्वाभाविक है, आज नहीं कल यह स्थिति आ जाएगी।
किताबें बढ़ती जाती हैं और आदमी का ज्ञान क्षीण होता जाता है। किताबें
और सारी शिक्षा स्मृति पर बल देती है, ज्ञान पर नहीं। विश्वविद्यालय से स्मृति का प्रशिक्षण लेकर हम बाहर निकल आते हैं। कुछ बातें हम स्मरण कर लेते हैं और उन्हीं को जीवन भर दोहराते रहते हैं।
ज्ञान बड़ी और बात है। बड़ी गहरी बात तो यह है कि जो व्यक्ति जितनी ज्यादा स्मृति को पकड़ेगा, उतना ही अज्ञानी रह जाएगा।
वही व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है, जो पहले तो यह जान ले कि स्मृति ज्ञान नहीं है। स्मृति केवल इनफॉर्मेशन है, सूचना है, ज्ञान नहीं है। गीता को पढ़ लेना सूचनात्मक है, ज्ञान नहीं है। कुरान को याद कर लेना सूचना है, ज्ञान नहीं है। सूचनाएं ज्ञान नहीं हैं।
एक आदमी प्रेम के संबंध में कई किताबें पढ़ ले, तो भी प्रेम को नहीं जान सकेगा। और एक आदमी तैरने के संबंध में शास्त्र पढ़ ले और व्याख्यान दे और किताबें लिखे, तो भी तैर नहीं सकेगा। और यह भी हो सकता है कि एक आदमी कोई

बात न बता सके कि तैरना क्या है--न बता सके, न व्याख्यान दे सके--फिर भी तैरना जानता हो। तैरना जानना एक बात है, तैरने के संबंध में जानना बिल्कुल दूसरी बात है।
बहुत पुरानी भारतीय कथा है। एक व्यक्ति सवार हुआ है नाव में और नदी पार कर रहा है और अपने साथ बड़े शास्त्र लिए हुए है। बीच मझधार में उसने उस नाविक से पूछाः तुमने कभी शास्त्र पढ़े हैं?
उसने कहाः कौन से शास्त्र?
उसने कहाः क्या तुमने धर्मशास्त्र नहीं पढ़े?
नाविक ने कहाः मौका नहीं आया।
तो उस पंडित ने कहाः तुम्हारा चार आना जीवन बेकार गया।
थोड़ी सी दूर और आगे बढ़े और उसने पूछा कि न पढ़ा हो धर्मशास्त्र, चलो ठीक है, साहित्य पढ़ा? काव्य पढ़ा?
नाविक ने कहा कि नहीं, मैंने तो नहीं पढ़ा।
उस पंडित ने कहाः और चार आना गया।
और थोड़ी ही देर में तूफान आया और नाव डूबने लगी, और फुहारें पड़ने लगीं
और पानी भीतर आने लगा। उस नाविक ने पूछाः पंडितजी, तैरना जानते हो?
उस पंडित ने कहा कि नहीं, कभी मौका नहीं आया।
उसने कहाः आपका सोलह आना जीवन गया। अब कोई उपाय नहीं है। मेरा तो आठ आना ही गया, आपका सोलह आना गया।
और उस दिन सोलह आना जीवन गया पंडितजी का और नाविक तैर कर निकल गया और पंडित वहीं डूब गया।
जिंदगी में भी यही होता है। जिंदगी के सागर में भी रोज ही, ये जो स्मृति के बल पर बैठे हुए लोग हैं, जिंदगी के सागर में डूबते हैं। जिंदगी स्मृति को नहीं जानती, जिंदगी ज्ञान को जानती है। जिंदगी ज्ञान को मानती है, स्मृति को नहीं। लेकिन हम स्मृति को ज्ञान समझे हुए हैं और भरे हुए हैं, और न मालूम क्या-क्या भरे हुए हैं।
यह तथ्य स्पष्ट रूप से ख्याल में आ जाए कि स्मृति ज्ञान नहीं है, तो आपका अज्ञान स्पष्ट हो जाएगा। यह बात स्पष्ट हो जाए कि कोई श्रद्धा मेरा ज्ञान नहीं बन सकती, तो श्रद्धा को तोड़ने के लिए कोई तलवारें नहीं उठानी पड़ेंगी। टूट गई, बात हो गई। जीवन बहुत अदभुत है, कुछ बातें जानते ही से नष्ट हो जाती हैं। जैसे दीया जला कर अंधेरे को खोज-खोज कर भगाना नहीं पड़ता--कि दीया जलाया और खोज रहे हैं कि अंधेरा कहां है? दीया जला कि अंधेरा गया। अंधेरा था ही नहीं, दीये की गैर-मौजूदगी थी, अनुपस्थिति थी। अंधेरे की कोई उपस्थिति नहीं होती।
ऐसे ही श्रद्धाओं, विश्वासों की कोई उपस्थिति नहीं होती। केवल इस बोध
की अनुपस्थिति का नाम है, इस बोध का कि मैं अज्ञान में हूं और किसी दूसरे का ज्ञान मेरा ज्ञान नहीं हो सकता। महावीर आपको मिल जाएं या बुद्ध या क्राइस्ट, वे आपको ज्ञान नहीं दे सकते। ज्ञान को तो खुद के ही प्राणों की निरंतर खोज और अनुसंधान से उपलब्ध करना होता है। उसे न तो चुराया जा सकता है, न किसी से मुफ्त पाया जा सकता है, न भेंट में पाया जा सकता है। कोई रास्ता नहीं है उसे और तरह से पाने का। उसे तो खुद ही जीना पड़ता है और खोजना पड़ता है।
अज्ञान हमारा है, तो हमारा ज्ञान ही उसे मिटा सकेगा। अज्ञान हमारा है, ज्ञान दूसरे का है, इन दोनों का कहीं मिलना ही नहीं होगा। ये एक-दूसरे को काट ही नहीं पाएंगे, इनका कोई संबंध ही नहीं है। अज्ञान बचा रहेगा और ज्ञान स्मृति में इकट्ठा होता चला जाएगा। प्राण अज्ञान में रहेंगे, बुद्धि ज्ञान से भर जाएगी। दूसरे का ज्ञान स्मृति से ज्यादा गहरा नहीं जाता। खुद का ज्ञान ही आत्मा की केंद्रीय चेतना को जगाता और प्रकट करता है। इसीलिए तो यह देखा जाता है कि हम ऊपर से जो भी थोप लें, वह हममें बहुत गहरा नहीं होता, स्किन डीप भी नहीं होता, चमड़ी के बराबर भी गहरा नहीं होता, जरा सी खरोंच उसे मिटा देती है।
एक व्यक्ति थे और वे बहुत क्रोधी थे और बहुत-बहुत अशांत। तो उनके मित्रों ने उन्हें सलाह दी, उनके क्रोध ने उन्हें बहुत कष्ट दिया, बहुत

पीड़ा दी। आखिर वे परेशान हो गए। उन्होंने किताबें पढ़ीं और गुरुओं से पूछा। उन्होंने कहा कि जब तक संसार में रहोगे तब तक तो अशांति रहेगी ही। संसार छोड़ो, तो शांत हो सकते हो। वे पक्के क्रोधी थे, उनको यह भी चोट लग गई; पक्के जिद्दी थे, बड़े हठी थे, उनको यह भी चोट लग गई। तो उन्होंने एक दिन गुस्से में आकर संसार भी छोड़ दिया, साधु हो गए। जिस व्यक्ति से उन्होंने दीक्षा ली, उसने उन्हें शांतिनाथ का नाम दे दिया, क्योंकि वे बड़े अशांत और क्रोधी थे और शांति की साधना के लिए साधु हुए थे।
वे एक बड़े नगर में गए और उनके पुराने बचपन के एक मित्र उनसे मिलने गए।
वे शांतिनाथ तो मित्रों को भूल चुके थे, क्योंकि संसार छोड़ चुके थे। लेकिन मित्र अभी संसार में थे और शांतिनाथ को याद रखते थे। उन मित्र ने उनसे पूछाः महानुभाव, आपका नाम?
उन्होंने कहाः शांतिनाथ!
कोई दो मिनट कुछ बात चली होगी, फिर उस मित्र ने पूछाः क्षमा करिए, आपका नाम?
उन्होंने कहाः शांतिनाथ!
फिर कोई दो मिनट बात चली होगी, उस मित्र ने पूछाः क्षमा करिए, आपका नाम?
उन्होंने अपना डंडा उठा लिया और उन्होंने कहाः कहा नहीं तुझसे कि शांतिनाथ!
उन्होंने कहाः मैं समझ गया कि आप बिल्कुल शांति को उपलब्ध हो चुके हैं। मैं जाता हूं। मैं पुराना मित्र हूं और देखने आया था कि शांति कितनी गहरी गई। वह स्किन डीप भी नहीं है, वह चमड़ी से ज्यादा गहरी भी नहीं है।
जो दीक्षाएं दूसरों से ली जाएं, जो संन्यास दूसरों से लिया जाए, उसका कोई भी मूल्य नहीं है। जो ज्ञान दूसरों से मिले, वह गहरा नहीं जाता। जो शांति दूसरों से मिल जाए, वह इससे ज्यादा गहरी नहीं हो सकती। प्राण तो आपके ही होंगे, चाहे वस्त्र बदल लें और घर छोड़ दें, फर्क नहीं पड़ेगा। भागें दुनिया के कोने-कोने में, अपने आप से भागना असंभव है, आप अपने साथ होंगे। और सबको छोड़ कर भाग जाएंगे, आप अपने साथ होंगे।
इसलिए एक बात आज की सुबह मैं आपसे कहना चाहता हूं, वह यह कि जो आपका है वही बस आपका है, और जो आपका है वही आपमें क्रांति और परिवर्तन ला सकता है। जो ज्ञान कहीं और से आता हो, जो नैतिकता, जो चरित्र बाहर से आता हो, वह गहरा नहीं होता, उसे जरा ही खरोंच दें, असली आदमी बाहर आ जाएगा, नकली आदमी फट जाएगा। वह हमेशा असली आदमी भीतर मौजूद है। दुनिया में सबको धोखा दिया जा सकता है, खुद को नहीं।
लेकिन हम खुद को भी धोखा देते हैं। और कम से कम सत्य की खोज में तो हम निरंतर धोखा देते हैं। और हम बड़े होशियार हैं, धोखा ही नहीं देते, धोखा देने में सफल हो जाते हैं। मैं फिर से दोहराता हूंः हम बहुत होशियार हैं, धोखा ही नहीं देते, धोखा देने में सफल हो जाते हैं। धन्य हैं वे लोग जो यह धोखा देने में असफल रह जाते हैं। क्योंकि तब उन्हें यह ख्याल आता है कि धोखा देना व्यर्थ है। दूसरों का ज्ञान लिए बैठे हैं और ज्ञानी बन गए, इससे बड़ा धोखा हो सकता है? गीता और रामायण दोहराते हैं और ज्ञानी बन गए, इससे बड़ा धोखा हो सकता है? ज्ञान के मामले में अदभुत धोखे हमने दिए हैं।
मेरे एक मित्र मुझसे कह रहे थे कि वे दूसरे महायुद्ध में थे। एक जहाज
पर थे। एक आदमी सामने बैठा हुआ दिन-रात अकेला ही ताश का खेल खेलता रहता था-- दोनों तरफ से; दूसरी पार्टी की तरफ से भी चलता था, अपनी तरफ से भी। अकेले ही खेलता रहता था। अब वह अकेला था, कोई उपाय न था। ये भी उसके साथ, उसी केबिन में यात्री थे, तो दिन-रात देखते रहते थे। इन्होंने देखा कि वह आदमी चालों में धोखे करता है। अकेले ही खेल रहा है, कोई दूसरा है नहीं, दूसरी तरफ से भी खुद चलता है, अपनी तरफ से भी, लेकिन चाल में धोखा करता है। वह दूसरे आदमी को धोखा देता है, जो मौजूद ही नहीं है। जब उन्होंने बार-बार देखा कि यह धोखा करता है, तो बहुत हैरानी हुई। एक तो अकेला ताश खेलता था, यही पागलपन था। फिर वह जो मौजूद नहीं है उसको धोखा देता था। वह तो है नहीं, तो धोखा तो अपने को ही देता था, और तो वहां कोई था नहीं। जब उनकी बरदाश्त के बाहर हो गया

देखते-देखते, तो उन्होंने कहा कि ठहरिए! आप तो हद्द किए दे रहे हैं, धोखा दिए दे रहे हैं।
उसने कहाः मुझे सब मालूम है। क्या मुझे मालूम नहीं कि मैं धोखा दे रहा हूं? लेकिन मैं इतना होशियार आदमी हूं कि पकड़ नहीं पाता, पकड़ा नहीं जाता हूं, इतना होशियार आदमी हूं। क्या मुझे पता नहीं कि मैं धोखा दे रहा हूं? मुझे पता है। लेकिन इतना होशियार हूं कि आज तक पकड़ा नहीं गया।
पकड़ा कैसे जाएगा? दूसरों को आप धोखा देंगे, तो पकड़े भी जा सकते हैं। अदालतें हैं, पुलिस है, और जमाने भर का जाल है, कानून है, दूसरे लोग हैं, वे भी आंखें गड़ाए हुए हैं। अपने को धोखा देंगे, कोई नहीं पड़ेगा। कोई पकड़ने का कारण नहीं है। इसीलिए तो दुनिया में सब तरह के धोखे पकड़ जाते हैं, लेकिन आत्मज्ञान का धोखा पकड़ में नहीं आता। यह सबसे गहरा डिसेप्शन है, यह पकड़ में नहीं आता, क्योंकि इसके खिलाफ कोई भी नहीं है। आप बने रहो आत्मज्ञानी, आप जानते रहो परमात्मा को, न पुलिस पकड़ती है, न अदालत में मुकदमा चलता है। और कुछ मूढ़ आपको मिल जाएंगे जो आपके इस धोखे में सहयोगी हो जाएंगे। इस जमीन पर ऐसे मूढ़ खोजना कठिन नहीं, जिनके शिष्य न मिल जाएं। शिष्य हमेशा उपलब्ध हो जाएंगे, क्योंकि बड़े मूर्ख हमेशा मौजूद हैं। वे आपको सहयोगी हो जाएंगे आपके ज्ञान में और ताली बजाएंगे और सिर हिलाएंगे। आप खुद अपने को धोखा देंगे और उनसे धोखा खाएंगे।
लेकिन जो आदमी जानता है, थोड़ी भी जिसकी ईमानदारी की खोज है जीवन के प्रति, वह एक बात जरूर समझ लेगा कि अपने को धोखा देने से कोई भी अर्थ नहीं है। सिर्फ जीवन नष्ट होता है और व्यय होता है।
दूसरे के ज्ञान को अपना ज्ञान मानना बहुत सूक्ष्म धोखा है। लेकिन हम
सब माने हुए हैं। न केवल माने हुए हैं, बल्कि लड़ सकते हैं उस ज्ञान पर। लोग विवाद में आ जाते हैं और लड़ते हैं--मेरा विचार! तलवारें निकल आती हैं विचार पर। और बड़े मजे की बात है, आपका कोई भी विचार नहीं है, सब विचार पराए हैं और दूसरों के हैं। मेरा विचार बिल्कुल झूठी बात है। कौन सा विचार आपका है? एकाध विचार है, जो आप कह सकें कि मेरा है? अगर खोज करेंगे, तो ऐसा एक भी विचार नहीं पाएंगे। और जब ऐसे पराए विचारों का हम पर बोझ हो, तो स्वयं का अनुभव पैदा नहीं हो सकता।
इसलिए पहली जो स्वतंत्रता चाहिए सत्य की खोज के लिए, वह है श्रद्धा से स्वतंत्रता, अश्रद्धा से स्वतंत्रता। उन्मुक्त, अपने अज्ञान को स्वीकार करता हुआ चित्त पहली स्वतंत्रता है, वह फर्स्ट फ्रीडम है, इसके बिना कोई रास्ता आगे बन नहीं सकता।
तो आज की सुबह तो मैं यही प्रार्थना करूंगा कि श्रद्धा से स्वतंत्र
हो जाइए, अश्रद्धा से स्वतंत्र हो जाइए, विश्वास से स्वतंत्र हो जाइए। मान्यता, परंपरा, संप्रदाय से मुक्त और स्वतंत्र हो जाइए। चित्त से इन जालों को तोड़ दीजिए। और आपके जानते और समझते ही ये जाल टूट जाते हैं, इनके लिए जाकर कमरे पर लड़ने की जरूरत नहीं है, अंडरस्टैंडिंग, इस बात की समझ, जाल टूट गया।
चित्त अगर इस भांति श्रद्धा, अश्रद्धा से, बिलीफ से, डिसबिलीफ से मुक्त हो जाए, बहुत निर्मल हो जाता है, बहुत सरल हो जाता है, बहुत सहज हो जाता है। खोज की तैयारी हो जाती है, पहला चरण पूरा हो जाता है।
यह तो पहली बात है जो आज की सुबह मैंने आपसे कही। हां, कल मैं विवेक के जागरण की बात सुबह आपसे करूंगा। श्रद्धा से मुक्त हो जाएं तो फिर विवेक जग सकता है। श्रद्धा से चित्त मुक्त हो, विवेक जाग्रत हो। विवेक की बात कल करूंगा। विवेक जाग्रत हो, श्रद्धा से मुक्ति हो। और फिर तीसरी बात परसों करूंगा कि जब चित्त श्रद्धा से मुक्त हो जाता है और विवेक जाग्रत हो जाता है, तो एक और छोटी सी बात है, वह भी अगर उसके जीवन में हो जाए, जिसको हम समाधि कहते हैं, अत्यंत निर्विकार और निराकार चित्त की स्थिति कहते हैं, ऑब्जेक्टलेसनेस कहते हैं। श्रद्धा से मुक्त हो चित्त, विवेक जाग्रत हो और चित्त के समक्ष सभी ऑब्जेक्ट, सभी विषय, सभी विचार, सभी कल्पनाएं विलीन हो जाएं, चित्त के समक्ष फिर कुछ भी न रह जाए। श्रद्धा से मुक्ति हो, विवेक जाग्रत हो और चित्त के समक्ष कुछ भी न रह जाए। चित्त के समक्ष रह जाए अनंत

शून्य, सन्नाटा और शांति, साइलेंस। बस ये तीन बातें पूरी हो जाएं, तो मनुष्य वहां खड़ा हो जाता है जहां परमात्मा है। वहां उसकी आंखें खुल जाती हैं जहां सत्य है। वहां उसके प्राण आंदोलित होने लगते हैं, वहां उसके प्राणों में लहरें उठने लगती हैं, जहां व्यक्ति मिट जाता है और समस्त, वह जो टोटेलिटी है, वह जो सबकी सत्ता है, उससे मेल हो जाता है।
समाधि की बात अंतिम दिन करूंगा। आज मैंने श्रद्धा से मुक्त होने की बात कही। कल, विवेक को जाग्रत कैसे करें, उसकी बात करूंगा। और परसों, समाधि कैसे अवतरित हो, कैसे आ जाए हमारे जीवन में। इन तीन चरणों में चर्चा करूंगा। इस संबंध में जो भी प्रश्न होंगे, वे आप संध्या को पूछ लेंगे, ताकि इनके कुछ पहलू छूट गए होंगे, वे आपके प्रश्नों में आ जाएंगे और उनकी बात हो सकेगी।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। इसके पहले कि हम ध्यान के लिए बैठें, मैं दो थोड़ी सी बातें ध्यान के संबंध में कह दूं।
ध्यान बड़ी अत्यंत सरल सी बात है। और जो कोई भी कहता हो, ध्यान बहुत कठिन है, वह झूठ कहता होगा। ध्यान से ज्यादा सरल और कोई बात नहीं है। क्योंकि ध्यान हमारा स्वरूप है। जो हमारा स्वरूप होता है, वह एकदम सरल होता है। जैसे गुलाब के पौधे में गुलाब के फूल लग जाना एकदम सरल बात है। इसमें कोई कठिन बात नहीं है। सिर्फ हम पूरी परिस्थितियां जुटा दें, तो फूल लग जाएंगे। फूल लगने में कोई कठिनाई नहीं है। फूल तो बड़ी सहजता से निकल आते हैं। कली बन जाती है और पंखुड़ियां खिल जाती हैं। इतने स्पांटेनियस, इतनी सहजता से हो जाता है फूल का खिलना कि हमें पता भी नहीं चलता। न कोई बैंडबाजे बजते हैं, न कोई अखबार में खबर छपती है, न कोई रेडियो से, दिल्ली से एनाउंस होता है, कुछ भी नहीं, फूल लगते हैं, खिल जाते हैं। कहीं पता नहीं चलता, कहीं कोई आवाज भी नहीं होती, कोई शोरगुल नहीं मचता, कलियां लगती हैं और फूल खिल जाते हैं। जैसे गुलाब के फूल में गुलाब का फूल खिल जाना सहज सी बात है, वैसे ही मनुष्य के चित्त में ध्यान का फूल खिल जाना भी उतनी ही सहज बात है। ध्यान कोई जबरदस्ती लाई गई चीज नहीं है, बड़ी सहज बात है।
ध्यान तो बहुत सहज है, लेकिन हम बहुत उलटे-सीधे हैं। इसलिए गड़बड़ होती है, इसलिए देर होती है। ध्यान तो बहुत सरल है, हम बहुत कठिन हैं। ध्यान तो बहुत सरल है, हम बहुत जटिल हैं। हमारी जटिलता उपद्रव कर रही है, ध्यान के आने में कोई बाधा नहीं है। गुलाब के पौधे में तो अभी फूल आ जाएं, लेकिन हमने जड़ें ही काट डाली हैं। या हम पूरे पौधे को उखाड़ कर जमीन के बाहर रखे हुए हैं। या हमने पानी न देने की कसम खाली है, व्रत ले लिया है कि हम पानी नहीं देंगे। या हम खाद नहीं देते या खाद की जगह जहर देते हैं।
गुलाब के पौधे में तो फूल आ जाना बहुत सरल बात है, इसमें तो शक का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन उसकी अगर सारी परिस्थितियों को हम उलटा-सीधा कर दें और गुलाब के पौधे को कहें कि शीर्षासन करो, जड़ें ऊपर करो और सिर नीचा करो, तो फिर बहुत कठिन हो जाएगा, फिर फूल नहीं आएंगे। और हम सब शीर्षासन कर रहे हैं, जिंदगी सब उलटी किए हुए हैं, इसलिए ध्यान का फूल हममें नहीं खिल पाता।
एक बात स्मरण रख लें, हम कठिन होंगे, ध्यान कठिन नहीं है। तो काम बन सकता है, अपनी कठिनाई छोड़नी पड़ती है, कोई बड़ी बात नहीं है। अगर ध्यान कठिन होता, तो हमको कठिन बात सीखनी पड़ती। कठिन बात सीखनी कठिन होती है, कठिन बात छोड़नी कठिन नहीं होती। किसी चीज को मिटा देना कठिन नहीं होता, बनाना बहुत कठिन होता है। अगर ध्यान ही कठिन होता, तो हमें कठिनाई के लिए तैयारी करनी पड़ती है। लेकिन हम कठिन हैं, और हम कठिन इसलिए हैं कि हमारी गलत आदतें हैं...
पहली बातः ध्यान। दूसरी बातः ध्यान से मेरा अर्थ एकाग्रता नहीं है। जैसे आपने सुना होगा... एकाग्र चित्त तो तना हुआ चित्त है। जबरदस्ती मन को लगाएंगे तो मन खिंच जाएगा, तन जाएगा। तनाव के बाद एक तरह की उदासी, थकान आएगी। स्वाभाविक, जब भी कोई आप तना हुआ काम करेंगे, तो पीछे से खिंचाव आएगा। खिंचाव आने से चित्त अशांत होगा। इसलिए जो लोग भी कनसनटेशन या एकाग्रता करते हैं, वे बहुत तने हुए और खिंचे हुए लोग हो जाते हैं। वे सरल

लोग नहीं रह जाते, और कांप्लेक्स, और जटिल हो जाते हैं। देखा ही होगा आपने, कोई आदमी अगर माला फेरने लगे या राम-राम जपने लगे, तो ज्यादा क्रोधी हो जाता है। कोई आदमी मंदिर जाने लगे, भगवान की मूर्ति के पास बैठ कर एकाग्रता करने लगे, तो ज्यादा क्रोधी हो जाता है, ज्यादा वायलेंट हो जाता है, ज्यादा हिंसक, ज्यादा दंभी हो जाता है, अहंकार उसका और घना हो जाता है। स्वाभाविक है, यह होगा। ये सब कनसनटेशन के, एकाग्रता के परिणाम हैं। और अगर एकाग्रता बहुत बढ़ जाए, तो आदमी पागल भी हो सकता है। अगर चित्त को इतना खींचा जाए कि मस्तिष्क के स्नायु टूटने लगें तो आदमी पागल भी हो जाता है। हजारों पागलों...
यह कोई ईश्वर का उन्माद नहीं है। ईश्वर का उन्माद नहीं होता, ईश्वर की शांति होती है। ईश्वर का कोई पागलपन नहीं होता, ईश्वर की शांति होती है, आनंद होता है, प्रफुल्लता होती है, उन्माद नहीं होता। ये सब पागल हैं। कनसनटेशन से यह परिणाम पैदा हुआ है। और आप समझ लें, जिस कौम में बहुत ज्यादा कनसनटेशन का बल रहा हो, उस कौम का मस्तिष्क धीरे-धीरे डल हो जाता है। धीरे-धीरे उस कौम के मस्तिष्क की जो ऊर्जा और प्रतिभा चाहिए, वह क्षीण हो जाती है।
भारत जैसे मुल्कों की प्रतिभा के क्षीण होने का बुनियादी कारण यह है। यहां हमने मस्तिष्क को विश्रांति नहीं दी, खींचने की कोशिश की, तनाव देने की कोशिश की। तनाव के दुष्परिणाम हुए। भारत ने आज तक कुछ भी इनवेंट नहीं किया, कुछ खोजा नहीं, कुछ नया बनाया नहीं, कुछ क्रिएट नहीं किया। तीन हजार साल के इतने नपुंसक और बांझ दिन बीते हैं हमारे, जिसका कोई हिसाब नहीं है। इतना बैरन, कुछ हमने तीन हजार साल में सृजन नहीं किया, कोई नई खोज नहीं की, कोई नई दिशाएं नहीं खोजीं, कोई नया विज्ञान, कोई नई कला, कोई हमने जीवन के प्राणों में कोई छिपे हुए कोने नहीं खोजे, किसी अज्ञात का हमने उदघाटन नहीं किया। हम बैठे हुए दोहराते हैं शास्त्रों को, और दोहराए चले जाते हैं। और हम बड़ी एकाग्रता की बातें करते हैं।
एकाग्रता ध्यान नहीं है। ध्यान है चित्त की परम विश्रांति की अवस्था
और एकाग्रता है चित्त की तनाव की स्थिति। एकाग्रता होती है किसी चीज के विरोध में, ध्यान किसी चीज के विरोध में नहीं है।
अगर समझ लें, आपको मैं कहूं कि यहां बैठ कर एकाग्रता करिए, राम के नाम
पर एकाग्रता करिए या ओम पर एकाग्रता करिए या किसी और पर, कोई भी चीज काम दे सकती है। तो जब आप एकाग्रता करेंगे, तो शेष जो दुनिया है उससे आपका मन लड़ेगा। क्योंकि एक कुत्ता यहां से भौंकता हुआ निकल जाए, तो आप कहेंगे, इसने सब गड़बड़ कर दिया, एकाग्रता खंडित हो गई। तो कुत्ते के भौंकने से लड़िए कि यह आपको सुनाई न पड़े, आपका नाम तो वही चलता रहे, ओम-ओम आप कहते रहिए, यह भौंकना कुत्ते का सुनाई न पड़े। एक बच्चा रोने लगे, यह सुनाई न पड़े। तो आप लड़िए, चारों तरफ जो घटनाएं घट रही हैं, जो दुनिया खड़ी है उससे लड़िए और अपने चित्त को एक तरफ लगाइए। आप थक जाएंगे, परेशान हो जाएंगे। तब आप कहेंगे, यह अपने बस की बात नहीं।
नहीं, यह किसी के बस की बात नहीं, सिवाय पागलों को छोड़ कर। पागल यह कर सकते हैं। सिर्फ पागलों को छोड़ कर यह किसी के बस की बात नहीं है। और होनी भी नहीं चाहिए, क्योंकि अगर हो जाए, तो परिणाम घातक होंगे।
ध्यान का अर्थ किसी एक चीज पर सबके विरोध में चित्त को रोकना नहीं है। ध्यान का मेरा अर्थ हैः सब चीजें बही जाएं और चित्त शांत हो, चित्त अनुत्तेजित हो और चीजें बही जाएं। एक कुत्ता भौंके, तो आप कोई मुर्दा थोड़े ही हैं कि आपको सुनाई नहीं पड़ेगा। आप जीवित हैं, जो जितना ज्यादा जीवित है, उसे उतना स्पष्ट सुनाई पड़ेगा। जिसका चित्त जितना सेंसिटिव है, जितना संवेदनशील है, जितना रिसेप्टिव है, जितना ग्राहक है, उसे उतना तीव्रता से सुनाई पड़ेगा। जिसका चित्त जितना अनुत्तेजित, शांत है, उसे उतना स्पष्ट सुनाई पड़ेगा। एक सुई भी गिरेगी, तो उसे सुनाई पड़ेगा। शांति में तो छोटी सी ध्वनि भी सुनाई पड़ेगी। अशांति में नहीं सुनाई पड़ सकती है।
एक आदमी के घर में आग लग गई हो और वह सड़क से अपने घर की तरफ भागा जा रहा
हो और आप उससे कहें, जयरामजी! उसे सुनाई नहीं पड़ेगा। इसलिए नहीं कि वह कोई

परम स्थिति को उपलब्ध हो गए हैं, बल्कि इसलिए कि मस्तिष्क कनसनटेटेड है, एक चीज पर लगा है। उनके घर में आग लगी है, आप जयरामजी कर रहे हैं। या कल उनसे मिलिए कि कल हम आपको रास्ते में मिले थे, ख्याल है? वे कहेंगेः मुझे कुछ ख्याल नहीं, कौन दिखा, कौन नहीं दिखा, मुझे कुछ पता नहीं। चित्त एकाग्र था। लेकिन चित्त की एकाग्रता चित्त पर तनाव है, बोझ है, भार है। चित्त होना चाहिए शांत और अनुत्तेजित।
कैसे होगा?
मैं एक छोटे से रेस्ट हाउस में एक गांव में रुका था। एक मित्र भी मेरे साथ थे। वह रेस्ट हाउस अजीब था। सारे गांव के कुत्ते शायद वहीं विश्राम करते थे रात को। करते होंगे, अच्छी जगह थी, तो वहां वे भी ठहरते थे। तो रात को इतने जोर से शोरगुल करते, और जब एक करे--कुत्तों की आदत करीब-करीब वैसी ही होती है, जैसी नेताओं की होती है--दूसरा उसके विरोध में करे, तीसरा उसको जवाब दे, चौथा उसको जवाब दे। वहां करीब-करीब वही हालत थी जो चुनाव के वक्त हो जाती है। तो वे मेरे मित्र, सोना उनको मुश्किल हो गया। उन्होंने मुझसे कहाः यह तो बड़ी मुसीबत हो गई, यह तो यहां सोना असंभव है।
मैंने उनसे कहा कि कुत्तों को पता भी नहीं कि आप यहां ठहरे हुए हैं।
और आपसे उनकी कोई दुश्मनी नहीं। पिछले जन्म का कोई संबंध हो तो मुझे पता नहीं। तो उनको पता भी नहीं है, वे आपको डिस्टर्ब भी नहीं कर रहे हैं, परेशान भी नहीं कर रहे हैं, आप क्यों उनसे हैरान हो रहे हैं? आप सो जाइए। उन्होंने कहाः कैसे सो जाएं? ये भौंकते हैं तो सब नींद खराब हो जाती है।
मैंने उनसे कहाः उनके भौंकने से नींद खराब नहीं होती। उनके भौंकने के प्रति आप रेसिस्टेंस मन में लिए हुए हैं कि नहीं भौंकने चाहिए। आपके मन में विरोध है उनके भौंकने के प्रति, इसलिए नींद नष्ट हो जाती है। डिस्टर्बेंस उनके भौंकने से पैदा नहीं होता, आपके मन का यह आग्रह है कि उन्हें भौंकना नहीं चाहिए, उन्हें यहां नहीं होना चाहिए। यह आग्रह पीड़ा दे रहा है और नींद तोड़ रहा है। मैंने उनसे कहाः आग्रह छोड़ दीजिए, रेसिस्टेंस छोड़ दीजिए। अपने मन में सोचिए कि तुम कुत्ते हो, तुम्हारा भौंकने का वक्त है, मेरे सोने का वक्त है, मैं सोता हूं। उनको भौंकने दीजिए, उनकी आवाज को गूंजने दीजिए बराबर, जब तक आप जागे होंगे तब तक वह आवाज सुनाई पड़ेगी, लेकिन आपके भीतर विरोध मत रखिए उसके प्रति, आए गूंज जाने दीजिए। मैंने उनसे कहाः ठीक उलटा परिणाम होगा, यही आवाज सुलाने का काम करने लगेगी।
वे मान गए, समझदार थे, इतने समझदार कम लोग होते हैं, और सो गए, सो जाना स्वाभाविक था। सुबह उठे और मुझसे बोले कि मैं हैरान हूं, यह मेरे ख्याल में कभी नहीं आया कि मेरा जो प्रतिरोध था कुत्तों के प्रति वही बाधा दे रहा था। कुत्ते कैसे बाधा देंगे? हमारा जो प्रतिरोध है वह बाधा देता है। अप्रतिरोध का नाम ध्यान है। नॉन-रेसिस्टेंट माइंड, अप्रतिरोधी मन, जो रेसिस्ट नहीं करता, चीजों को आने-जाने देता है। इतनी बड़ी दुनिया है, चीजें आएंगी-जाएंगी। कोई आपका ठेका है कि आप शांत होकर बैठे हैं तो कुत्ते न भौंकें, मक्खियां न उड़ें, मच्छर न आएं, कोई बच्चा न रोए, कोई औरत बात न करे। यह कोई नियम तो है नहीं। यह किसी का कोई ठेका नहीं है। दरख्त हिलेंगे, हवाएं आएंगी, पत्ते गिरेंगे, उड़ेंगे, आवाजें होंगी, लेकिन इस पर आपका कोई जोर नहीं है। और ये जोर देने वाले बेचारे जंगलों में भागते हैं, पहाड़ों पर जाते हैं। फिर इस ख्याल से कि यहां गड़बड़ होती है तो वहां जाएं--हिमालय पर जाएं या तिब्बत जाएं या कहां जाएं। और वे कहीं भी चले जाएं, कुछ भी नहीं होगा, वह रेसिस्टेंट माइंड साथ होगा। एक पक्षी वहां चिल्ला देगा, वे कहेंगे, सब ध्यान गड़बड़ हो गया हमारा।
ऐसा ध्यान जो किसी की वजह से गड़बड़ हो जाता हो, वह ध्यान ही नहीं है, वह एकाग्रता है। एकाग्रता गड़बड़ होती है, क्योंकि एकाग्रता का मतलब है एक चीज को पकड़ कर रह जाना और बाकी सब चीज के लिए दरवाजा बंद कर देना, वे सब चीजें धक्के देने लगती हैं। बल्कि सच्चाई यह है कि जब आप एकाग्र होने की कोशिश

नहीं करते, तब वे चीजें उतना धक्का नहीं देतीं। स्वाभाविक, जब आप एकाग्र होने की कोशिश करते हैं, तो वे चीजें ज्यादा धक्का देने लगती हैं।
मन एक प्रवाह की भांति है, बहा जाए। चारों तरफ घटनाएं हो रही हैं, उनके प्रति बेहोश होने की, मूर्च्छित होने की, या उनके लिए दरवाजा बंद करने की कोई जरूरत नहीं है। शांत मन का किसी से कुछ विरोध नहीं है, बच्चों से विरोध नहीं है, कुत्तों से, बिल्लियों से, किसी से कोई विरोध नहीं है, उसका संसार से कोई विरोध नहीं है। और जिसका किसी से कोई विरोध नहीं है और हर चीज को जो इस तरह गुजर जाने देता है, जैसे...
बहुत निकट है वह, और किसी भी दिन द्वार खुल सकते हैं।
यहां हम छोटे से प्रयोग करेंगे इन तीन दिनों में अप्रतिरोध के। अभी
हम यहां बैठेंगे। बैठने का मतलब अकड़ कर और रीढ़ को बहुत सीधा करके और सिर को बहुत खींच कर बैठ जाना नहीं है, क्योंकि प्रतिरोध शुरू हो गया। बहुत सहजता से, जैसे छोटे-छोटे बच्चे बैठ जाते हैं, वैसे सहजता से बैठ जाना है। सिर झुके, झुक जाए; रीढ़ झुके, झुक जाए; कोई रीढ़, कोई सिर बाधा नहीं दे रहा है ध्यान में। ध्यान तो भीतर चित्त की स्थिति है, उसका इस सबसे कोई वास्ता नहीं है। इतने एट ई.ज, इतनी सरलता से बैठ जाना है, जैसे आप कोई काम नहीं कर रहे हैं, खाली वक्त गुजार रहे हैं, खाली वक्त गुजार रहे हैं।
आंख की पलक धीरे से फिर बंद कर लेनी है। बंद कर लेने का मतलब यह नहीं
कि आप कोशिश करके उसे दबा लें, वह रेसिस्टेंस शुरू हो गया। नहीं, पलक को गिर जाने देना है, जैसे झपकी आ गई हो और पलक गिर गया। पलक को बंद नहीं करना है, गिर जाने देना है, लेट गो, उसे धीरे से गिर जाने दें। उसमें भी यह न हो कि मैंने बंद किया, उसको भी गिर जाने दें। सारे शरीर को ढीला छोड़ दें, जैसे हम कुछ बड़ा काम नहीं कर रहे हैं, खाली बैठे हैं। खाली बैठे हैं, कोई काम नहीं कर रहे हैं, एक विश्राम कर रहे हैं। आदतें नहीं हैं हमारी विश्राम करने की। हम तो खाली भी बैठें तो कुछ न कुछ करते हैं, नहीं तो रेडियो खोल लेंगे, अखबार उठा लेंगे, कुछ न कुछ करेंगे। न करने का हमें पता ही नहीं है और न करना बहुत अदभुत है। न करने का कोई मुकाबला ही नहीं है। न करने की स्थिति का नाम ध्यान है। तो यहां हम न करने की स्थिति में दस-पंद्रह मिनट बैठेंगे। आंख को, पलक को ढीला छोड़ देंगे, सारे शरीर को ढीला छोड़ देंगे। फिर क्या करेंगे?
बात तो इतनी ही है, अगर इतना ही कर लें तो काम हुआ। कोई भी आवाज सुनाई
पड़ रही हो--कोई रुकी तो रहेगी नहीं--आएगी, गूंजेगी और चली जाएगी। आप विरोध न करें कि यह आवाज क्यों गूंजी? आप आवाज के प्रति सजग रहें, आवाज जब तेजी से गूंजे, तब जानें; धीमी होने लगेगी, धीमी होने लगेगी, तब जानते रहें; फिर वह विलीन हो जाएगी, तब जानते रहें। जैसे धुआं आया, भर गया, फिर कम होने लगा। ऐसी आवाजें होंगी, घटनाएं होंगी चारों तरफ, किसी से कोई विरोध नहीं है, वे आएंगी और चली जाएंगी। अगर आप शांति से मात्र साक्षी रहे, प्रतिरोधी नहीं, विरोधी नहीं, उनके मात्र साक्षी रहे--जो भी आई आई, जो भी गई गई--अगर इतनी शांति से उनका निरीक्षण किया, तो आप अभी दो क्षण के भीतर ही पाएंगे कि चित्त तो एकदम शांत हुआ जा रहा है। वह प्रतिरोध से अशांत है, स्मरण रखें, और कोई अशांति नहीं है। वह विरोध से अशांत है, लड़ रहा है इसलिए अशांत है, जब नहीं लड़ रहा, तो कोई अशांति नहीं है।
लाओत्से एक फकीर हुआ चीन में, उसने लिखा हैः धन्य हैं वे लोग जो लड़ते नहीं, क्योंकि उनको कोई हरा न सकेगा। धन्य हैं वे लोग जो लड़ते नहीं, क्योंकि उनको कोई हरा न सकेगा। जो लड़ता ही नहीं उसके हारने का सवाल ही नहीं है। जिसके हारने का सवाल नहीं उसके दुखी होने का कोई सवाल नहीं। लड़ें न, ध्यान लड़ाई नहीं है। आमतौर से लड़ाई है, मंदिरों में लोग बैठे हैं मालाएं लिए, लड़ रहे हैं। पहाड़ों पर लोग बैठे हैं आंख बंद किए हुए, आसन लगाए हुए, लड़ रहे हैं। लड़ाई है, कुछ भी नहीं है। ध्यान तो लड़ाई से बिल्कुल उलटी बात है। लड़ें न, बिना लड़े थोड़ी देर को... इसमें कोई फाइट नहीं करनी है। अगर आपके पैर में दर्द होने लगे, तो उससे लड़िए मत, कि अब उसको रोके हुए बैठें हैं कि हम तो ध्यान कर रहे हैं, पैर को बदलेंगे तो बगल वाला क्या कहेगा? नहीं, वह ध्यान ही नहीं है, आप पैर ही से अटके हुए हैं। पैर में दर्द

होता है, आप बिल्कुल बदल लीजिए। आपको जिंदगी है, जान है अभी, इसलिए पता चल रहा है, मर जाएंगे या इंजेक्शन दे दिया, तो पता नहीं चलेगा, या अफीम खाकर बैठ गए, तो पता नहीं चलेगा, या किसी चीज पर इतना कनसनटेशन किया कि चित्त और सब तरफ से हट गया और उसी एक चीज में अटक गया, तो पता नहीं चलेगा। या यह हो सकता है कि निरंतर अयास करिए, तो निरंतर पैर की आदत हो जाएगी, तो फिर पता नहीं चलेगा, लेकिन उससे कोई मतलब नहीं है। पैर में दर्द हो रहा है, चुपचाप बदल लीजिए, एक ही बात का ख्याल रखिए, रेसिस्ट मत करिए, दिल में दुखी मत होइए कि पैर को बदलना पड़ रहा है। पैर आपका अभी जिंदा है इसलिए खबर देता है, मर जाएगा तो खबर नहीं देगा।
मार्क ट्वेन का नाम आपने सुना होगा, बहुत हंसोड़ और बढ़िया आदमी हुआ अमरीका में। वह एक दिन बैठे-बैठे बहुत गपशप कर रहा था, बहुत प्रसन्न था, खूब ऊंची बातें कर रहा था, हंसा रहा था मित्रों को, एकदम गंभीर हो गया और उदास हो गया, एकदम से। तो उसके एक मित्र ने पूछाः आपको क्या हो गया?
उसने कहाः मालूम होता है मेरे पैर को लकवा लग गया। डाक्टरों ने मुझे
दस साल पहले कहा था कि कभी न कभी खतरा है, आपके पैर को लकवा लग जाएगा।
तो उन्होंने कहाः आपको पता कैसे चला?
उसने कहाः मैं च्यूंटी ले रहा हूं बड़ी देर से, लेकिन कुछ पता ही नहीं
चल रहा।
बगल की महिला ने कहाः क्षमा करिए, मैं संकोच की वजह से कह नहीं रही, च्युंटियां आप मुझे लिए जा रहे हैं।
वह बेचारा जांच कर रहा था और बगल की महिला की च्युंटियां लेता रहा, लेता रहा, उसने सोचा कि मेरा पैर तो गया, पता ही नहीं चल रहा कुछ।
यह जो पैर का पता न चलना है, या शरीर का पता न चलना है, यह कोई अच्छी स्थिति नहीं है। आपको पता चलना चाहिए। भीतर होश है, कांशसनेस जितनी ज्यादा होगी, पता चलेगा। उसकी कोई फिकर न करें, चुपचाप पैर को बदल लीजिए। नॉन-रेसिस्ट, कोई विरोध नहीं, चुपचाप पैर बदल लीजिए। गर्दन थक गई हो, आगे- पीछे जाती हो, जाने दीजिए। ऐसे जाने दीजिए जैसे आपका कोई विरोध नहीं है, जो हो रहा है शरीर को करने दीजिए। आप इतना ही भर ख्याल रखिए कि मैं किसी चीज का विरोध नहीं करूंगा, चुपचाप बैठा रहूंगा। होने दूंगा जो हो रहा है, मैं किसी चीज पर पकड़ नहीं रखूंगा कि ऐसा हो, वह जो हो रहा है होने दूंगा। हवाएं आएंगी तो ठीक, नहीं आएंगी तो ठीक। कोई चिल्लाएगा तो ठीक, नहीं चिल्लाएगा तो ठीक। मैं सब कुछ स्वीकार करता हूं, टोटल एक्सेप्टिबिलिटी, और मैं किसी चीज का विरोध नहीं करता हूं। बस इस भाव में एक दस मिनट हम यहां बैठेंगे। तो थोड़े-थोड़े फासले पर हो जाएंगे तो अच्छा होगा। क्योंकि हो सकता है
आप इस भाव में हों, लेकिन बगल वाला इस भाव में न हो। थोड़े-थोड़े फासले पर, ताकि कोई किसी को छूता न हो। थोड़े ऐसे फासले पर बैठे जाएंगे बहुत आराम से। हां, बाहर भी बैठ सकते हैं।
आप लोग भी थोड़ा एक-दूसरे से दूर हो जाएं तो अच्छा है, एक-दूसरे को छूता हुआ कोई न बैठे। और बिल्कुल आराम से बैठ जाएं, जैसा आपके लिए बैठना निरंतर सुखद रहा हो, वैसे बैठ जाएं। यहां जगह कम है इसलिए बैठने को कह रहे हैं, आप घर पर करेंगे, सोकर सकते हैं, कोई सोने-बैठने का सवाल नहीं है। सवाल है भीतर की स्टेट ऑफ माइंड, भीतर जो मन की स्थिति है उसका। कोई चीज का कोई सवाल नहीं है। सोए रहें, खड़े रहें, बैठे रहें, आराम कुर्सी पर हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बड़ी बात है कि बिल्कुल सहजता से, सरलता से, आनंद से बैठ जाएं।
तो मैं मान लूं कि आप एक-दूसरे को नहीं छू रहे हैं। कुछ लोग तो छू ही रहे होंगे, वे सोच रहे होंगे कि क्या हर्जा है, बैठे रहें।
फिर अब धीरे से आंख की पलकों को छोड़ दें, आंख को बंद हो जाने दें; बंद न करें, बंद हो जाने दें, धीरे से पलक छोड़ दें और आंख बंद हो जाए। धीरे से पलक को छोड़ दें, ऐसा भाव करेंगे कि पलक छूट गई, छूट जाएगी और धीमे से बंद हो जाएगी, दबाव भी नहीं होगा, आंख धीरे से बंद हो जाएगी। अगर आंख बिल्कुल धीरे से छोड़ दी तो आंख के छोड़ते से ही लगेगा भीतर एक हलकापन आ जाएगा। आधे से ज्यादा तनाव तो जीवन में आंख के तने होने का है।

बिल्कुल ढीला छोड़ दें आंख को, आंख बंद हो जाने दें। बिल्कुल शांत बैठ जाएं, किसी चीज से कोई विरोध नहीं है, कोई विरोध नहीं है। हम कोई बड़ी साधना भी नहीं कर रहे हैं। नहीं तो उसी ख्याल से विरोध शुरू हो जाता है। कोई साधना नहीं कर रहे हैं, विश्राम कर रहे हैं। पूरी शांति है।
जैसे ही शांत होने लगेंगे, भीतर की श्वासों का पता चलने लगेगा। श्वास
का आना-जाना भी मालूम होने लगेगा, श्वास भीतर-बाहर होगी तो पता चलेगा। हवाएं हिलाएंगी, तो पता चलेगा। दूर कुछ गायें चल रही हैं, उनकी घंटियां बजेंगी, तो पता चलेगा। जो कुछ भी ध्वनियां चारों तरफ हो रही हैं, शांति से उन्हें गूंजने दें और चुपचाप उनका निरीक्षण करते रहें। किसी का कोई विरोध नहीं है। बस शांति से सुनें, जो भी आवाजें हो रही हैं उन्हें सुनें। मौन सुनते रहें, सुनते-सुनते ही मन शांत होता जाएगा, एकदम शांत होता जाएगा।

साक्षी की साधना
पांचवां प्रवचन

सहज जीवन-परिवर्तन

सबसे पहले एक प्रश्न पूछा है। और उससे संबंधित एक-दो प्रश्न और भी पूछे हैं।
पूछा हैः मन चंचल है और बिना अयास और वैराग्य के वह कैसे थिर होगा?

यह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। और जिस ध्यान की साधना के लिए हम यहां इकट्ठे हुए हैं, उस साधना को समझने में भी बहुत सहयोगी होगा। इसलिए मैं थोड़ी सूक्ष्मता से इस संबंध में बात करना चाहूंगा।
पहली बात तो यह कि हजारों वर्ष से मनुष्य को समझाया गया है कि मन चंचल
है और मन की चंचलता बहुत बुरी बात है। मैं आपको निवेदन करना चाहता हूं, मन निश्चित ही चंचल है, लेकिन मन की चंचलता बुरी बात नहीं है। मन की चंचलता उसके जीवंत होने का प्रमाण है। जहां जीवन है, वहां गति है; जहां जीवन नहीं है, जड़ता है, वहां कोई गति नहीं है। मन की चंचलता आपके जीवित होने का लक्षण है, जड़ होने का नहीं।
मन की इस चंचलता से बचा जा सकता है, अगर हम किसी भांति जड़ हो जाएं। और बहुत रास्ते हैं मन को जड़ कर लेने के। जिन बातों को हम समझते हैं साधनाएं, उनमें से अधिकांश मन को जड़ करने के उपाय हैं। जैसे किसी भी एक शब्द की, नाम की निरंतर पुनरुक्ति, रिपीटीशन मन को जड़ता की तरफ ले जाता है। निश्चित ही उसकी चंचलता क्षीण हो जाती है। लेकिन चंचलता क्षीण हो जाना ही न तो कुछ पाने जैसी बात है, न कुछ पहुंचने जैसी स्थिति है।
गहरी नींद में भी मन की चंचलता शांत हो जाती है, गहरी मूर्च्छा में भी शांत हो जाती है, बहुत गहरे नशे में भी शांत हो जाती है। और इसीलिए दुनिया के बहुत से साधु और संन्यासियों के संप्रदाय नशा करने लगे हों, तो उसमें कुछ संबंध है। मन की चंचलता से ऊब कर नशे का प्रयोग शुरू हुआ। हिंदुस्तान में भी साधुओं के बहुत से पंथ गांजे, अफीम और दूसरे नशों का उपयोग करते हैं। क्योंकि गहरे नशे में मन की चंचलता रुक जाती है, गहरी मूर्च्छा में रुक जाती है, निद्रा में रुक जाती है।
चंचलता रोक लेना ही कोई अर्थ की बात नहीं है। चंचलता रुक जाना ही कोई बड़ी गहरी खोज नहीं है। और चंचलता को रोकने के जितने अयास हैं, वे सब मनुष्य की बुद्धिमत्ता को, उसकी वि.जडम को, उसकी इंटेलिजेंस को, उसकी समझ, उसकी अंडरस्टैंडिंग को, सबको क्षीण करते हैं, कम करते हैं। जड़ मस्तिष्क मेधावी नहीं रह जाता।
तो क्या मैं यह कहूं कि चंचलता बहुत शुभ है? निश्चित ही, चंचलता शुभ है, बहुत शुभ है। लेकिन चंचल तो विक्षिप्त का मन भी होता है, पागल का मन भी होता है। विक्षिप्त चंचलता शुभ नहीं है, पागल चंचलता शुभ नहीं है। चंचलता तो जीवन का लक्षण है। जहां गति है, वहां-वहां चंचलता होगी। लेकिन विक्षिप्त चंचलता--जैसे एक नदी समुद्र की तरफ जाती है, जीवित नदी समुद्र की तरफ बहेगी, गतिमान होगी। लेकिन कोई नदी अगर पागल हो जाए--अभी तक कोई नदी पागल हुई नहीं, आदमियों को छोड़ कर और कोई पागल होता ही नहीं है--तो कोई नदी अगर पागल हो जाए तो भी गति करेगी, कभी पूरब जाएगी, कभी दक्षिण जाएगी, कभी पश्चिम जाएगी, कभी उत्तर जाएगी और भटकेगी, अपने ही विरोधी रास्तों पर भटकेगी, सब तरह दौड़ेगी-धूपेगी, लेकिन सागर तक नहीं पहुंच पाएगी। तब उस गति को हम पागल गति कहेंगे। गति बुरी नहीं है, पागल गति बुरी है।
आप यहां तक आए, बिना गति के आप यहां तक नहीं आते। लेकिन गति अगर आपकी पागल होती, तो आप पहले कहीं जाते थोड़ी दूर, फिर कहीं दूर जाते थोड़ी दूर, फिर लौट आते, फिर इस कोने से उस कोने तक जाते, फिर वापस हो जाते और भटकते एक पागल की तरह। तब आप कहीं पहुंच नहीं सकते थे।

वह मन जो पागल की भांति भटकता है, घातक है। लेकिन स्वयं गति घातक नहीं है। जिस मन में गति ही नहीं है, वह मन तो जड़ हो गया।

तो इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है।
मैं गति और चंचलता के विरोध में नहीं हूं। मैं जड़ता के पक्ष में नहीं हूं। और हम दो ही तरह की बातें जानते हैं अभी, या तो विक्षिप्त मन की गति जानते हैं और या फिर राम-राम जपने वाले या माला फेरने वाले आदमी की जड़ता जानते हैं। इन दो के अतिरिक्त हम कोई तीसरी चीज नहीं जानते।
चाहिए ऐसा चित्त जो गतिमान हो, लेकिन विक्षिप्त न हो, पागल न हो। ऐसा चित्त कैसे पैदा हो, उसकी मैं बात करूं। उसके पहले यह भी निवेदन करूं कि मन की चंचलता के प्रति अत्यधिक विरोध का जो भाव है, वह योग्य नहीं है और न अनुग्रहपूर्ण है और न कृतज्ञतापूर्ण है। अगर मन गतिमान न हो और चंचल न हो, तो हम मन को न मालूम किस कूड़े-करकट पर उलझा दें और वहीं जीवन समाप्त हो जाए। लेकिन मन बड़ा साथी है, वह हर जगह से ऊबा देता है और आगे के लिए गतिमान कर देता है।
एक आदमी धन इकट्ठा करता है। कितना ही धन इकट्ठा कर ले, मन उसका राजी नहीं होता, इनकार कर देता है--इतने से कुछ भी न होगा। मन कहता हैः और लाओ। वह और धन ले आए, मन फिर कहेगाः और लाओ। मन कितने ही धन पर तृप्त नहीं होता। कितना ही यश मिल जाए, मन तृप्त नहीं होता। कितनी ही शक्ति मिल जाए, मन तृप्त नहीं होता। यह मन की अतृप्ति बड़ी अदभुत है। अगर यह अतृप्ति न हो, तो दुनिया में कभी कोई आदमी आध्यात्मिक नहीं हो सकता है।
अगर बुद्ध का मन तृप्त हो जाता उस धन से जो उनके घर में उपलब्ध था और
उस संपत्ति से और उस राज्य से जो उन्हें मिला था, तो फिर बुद्ध के जीवन में आध्यात्मिक क्रांति नहीं होती। लेकिन मन अतृप्त था और चंचल था, उन महलों से वह तृप्त न हुआ और वह मन आगे भागने लगा। इसलिए एक क्षण आया कि मन की अतृप्ति क्रांति बन गई। वह जो डिसकंटेंट है मन की, वह जो मन का असंतोष है, वही तो क्रांति बनता है, नहीं तो क्रांति कैसे होगी जीवन में? अगर मन चंचल न हो, तो धन से तृप्त हो जाएगा, भोग से तृप्त हो जाएगा, वासना से तृप्त हो जाएगा।
इजिप्त में एक फकीर था, इजिप्त का बादशाह उससे कभी-कभी मिलने जाता था।
एक बार वह बादशाह मिलने गया। फकीर के द्वार पर ही उसकी पत्नी बैठी थी। उस बादशाह ने कहा कि मैं फकीर को मिलने आया हूं, वे कहां हैं?
उसकी पत्नी ने कहाः आप बैठें, दो क्षण विश्राम करें, पीछे के बगीचे में वह काम करता है, मैं उसे बुला लाऊं।
लेकिन वह बादशाह बैठा नहीं, वह खेत की मेड़ पर टहलने लगा। उसकी पत्नी
ने फिर भी कहा कि आप बैठ जाएं।
उसने कहाः तुम बुला लाओ, मैं टहलता हूं।
पत्नी ने सोचा, शायद खेत की मेड़ पर बैठना उसे शोभायुक्त न मालूम होता हो। उसे भीतर बुलाया, चटाई बिछाई और कहाः आप यहां बैठ जाएं।
लेकिन वह आकर दालान में टहलने लगा। उसने कहाः तुम बुला लाओ, मैं टहलता हूं।
वह पत्नी गई, उसने अपने पति को बुलाया और मार्ग में उससे कहा कि यह बादशाह तो बड़ा पागल मालूम होता है। मैंने उसे बहुत आग्रह किया बैठ जाने का, लेकिन वह बैठा नहीं।
उस फकीर ने कहाः उसके योग्य, उसके बैठने योग्य स्थान हमारे पास नहीं है, इसलिए वह टहलता है। उसके बैठने योग्य स्थान हमारे पास नहीं है, इसलिए वह टहलता है, नहीं तो वह जरूर बैठ जाता। मैंने उसे बहुत बार बैठे हुए भी देखा है।
यह कहानी मैं इसलिए कह रहा हूं कि हमारा मन जो इतना चंचल है, वह इसीलिए
कि हम मन के बैठने योग्य स्थान आज तक नहीं दे सके। अगर हम मन के बैठने योग्य स्थान दे दें, वह तो तत्क्षण बैठ जाएगा। उसकी सारी चंचलता विलीन हो जाएगी।
परमात्मा के पूर्व मन कहीं भी नहीं बैठ सकता है, वही उसके बैठने का स्थान है। इसलिए मन की आप पर बड़ी कृपा है कि वह चंचल है और हर कहीं नहीं बैठ जाता है। वह परमात्मा के पहले कहीं भी बैठेगा नहीं, यह उसकी कृपा है। और जिस दिन वह बैठेगा, उस दिन ही इस कृपा को आप समझ पाएंगे कि मन मुझे यहां तक

ले आया। अगर मन कहीं बैठ जाता, तो मैं परमात्मा तक आने में असमर्थ था। मन ले जाएगा, हर जगह अतृप्त कर देगा, कहीं रुकेगा नहीं, हर जगह चंचल हो जाएगा, उस क्षण तक चंचल होता रहेगा, जब तक कि परम विश्राम का क्षण न आ जाए, जब तक कि वह बिंदु न आ जाए जहां मन बैठ सकता है। जिस जगह मन बैठ जाए बिना जड़ हुए, जीवित, गतिमान मन जिस जगह जाकर विश्राम को उपलब्ध हो जाए, जान लेना परमात्मा निकट आ गया।
तो मैं यह नहीं कहता हूं कि मन थिर हो जाए तो परमात्मा मिल जाएगा, मैं
यह कह रहा हूं कि परमात्मा मिल जाए तो मन एकदम थिर हो जाएगा। वह थिरता फिर जड़ता नहीं होगी, वह थिरता बड़ी जीवंत होगी, बड़ी जागरूक होगी।
लेकिन हम करते हैं उलटा, हम मन को जड़ करना चाहते हैं। मन के जड़ करने से परमात्मा नहीं मिलेगा, केवल गहरी नींद आ जाएगी, केवल मूर्च्छा हो जाएगी, केवल तंद्रा हो जाएगी। केवल मन जड़ हो जाएगा। तो जिसको हम अयास कहते हैं, वह सब अयास करीब-करीब इसी भांति का है जिससे मन जड़ होता है।
मैं जो कह रहा हूं, वह अयास नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो वह अन-अयास है। मन ने अब तक जो अयास किए हैं, उन सबको छोड़ देना है, कोई नया अयास नहीं करना है। क्योंकि मन जो भी अयास करता है, मन ही तो करेगा न अयास, और मन का कोई भी अयास मन के ऊपर ले जाने में मार्ग नहीं बन सकता। वह मन से बड़ा नहीं हो सकता। आप ही अयास करेंगे न? तो आपके चित्त की जो दशा है, उस दशा से ऊपर आप कभी नहीं जा सकेंगे। अयास कौन करेगा? आप ही करेंगे, आप का ही मन करेगा। इसलिए मैं कहता हूं, अयास से कभी आप ऊपर नहीं जा सकेंगे। मन का सारा अयास छोड़ दें, शांत हो जाएं। अयास भी एक अशांति है। शांत हो जाएं, जैसे कुछ भी नहीं कर रहे हैं। न करने की स्थिति में हो जाएं, धीरे-धीरे जैसे-जैसे न करने की स्थिति गहरी होगी, आप पाएंगे कि मन विलीन होता जा रहा है। जैसे- जैसे मन शांत और विलीन होगा, वैसे-वैसे आप पाएंगे कि एक दूसरे लोक में चेतना उठ रही है और जाग रही है।
लेकिन आप कहेंगेः यह भी तो अयास ही हुआ। हम शांत होकर बैठें, चित्त को विश्राम में ले जाएं, यह भी अयास है, यह भी एक प्रैक्टिस हुई।
नहीं, मैं आपसे निवेदन करूंगा, यह अयास नहीं है।
जैसे अगर मैं यह मुट्ठी बांधे हूं और कोई मेरे पास आए और मैं उससे पूछूं कि इस मुट्ठी को मैं कैसे खोलूं? तो वह मुझसे क्या कहेगा? वह कहेगाः खोलने के लिए कुछ भी करने की जरूरत नहीं है, बांधने के लिए जो कुछ कर रहे हैं, कृपा कर उतना ही न करें, मुट्ठी तो खुल जाएगी। मुट्ठी का खुलना तो अपने आप हो जाएगा, हम उसे बांधने के लिए जो कर रहे हैं, वह भर न करें। तो मुट्ठी का खुलना अयास नहीं है, बांधने के लिए हम जो अयास कर रहे हैं, उसके छोड़ते ही मुट्ठी खुल जाएगी।
जैसे एक वृक्ष की शाखा को हम खींच कर पकड़ लें और किसी से पूछें कि अब इसे इसकी जगह वापस लौटाने के लिए क्या करें? तो वह क्या कहेगा? वह कहेगाः आप कुछ भी न करें वापस लौटाने के लिए, कृपया इसे रोक रखने के लिए जो कर रहे हैं, वह भर न करें, शाखा अपने आप वापस लौट जाएगी।
हम मन के साथ जो कर रहे हैं निरंतर, क्या कर रहे हैं हम मन के साथ? हम कुछ काम कर रहे हैं मन के साथ। अगर हम वह न करें, मन अपने आप शांत हो जाएगा। मन अपने आप शांत हो जाएगा।
जैसे सुबह मैंने आपसे कहा कि हम मन के साथ निरंतर प्रतिरोध की एक साधना कर रहे हैं, रेसिस्टेंस की साधना कर रहे हैं। हम चौबीस घंटे मन से प्रतिरोधी बने हुए हैं। किसी न किसी स्थिति के प्रति हमारा प्रतिरोध इतना ज्यादा है कि जीवन भर हम लड़ रहे हैं। मन हमारा चौबीस घंटे लड़ रहा है। कभी भी गैर-लड़ाई की स्थिति में हमारा मन नहीं है।
यह लड़ाई मन को तनाव से भर देती है, बेचैनी से भर देती है, दुख, असफलता
से भर देती है। और तब, तब मन में इतना ज्यादा रुग्ण, फीवरिश, इतना बुखार की स्थिति हो जाती है कि फिर हम शांति की खोज करते हैं; गुरुओं के पास जाते हैं और उनसे पूछते हैं, शांत कैसे हो जाएं? वे हमसे कहते हैंः राम-राम जपो, ओम-ओम जपो, या माला फेरो, या मंदिर जाओ, या यह पढ़ो या वह पढ़ो, या यह मंत्र या वह जाप, वे हमें यह बताते हैं। हम वह जाप शुरू कर देते हैं, बिना इस बात को

जाने हुए कि यह जाप कौन कर रहा है? वही फीवरिश माइंड, वही अशांत, परेशान मन, वही बीमार रुग्ण मन जाप फेर रहा है। बीमार मन, रुग्ण मन जाप फेरेगा तो जाप से क्या फल आने वाला है? यह सब खुद भी उसी बीमारी के हिस्से के भीतर यह बात सारी चलेगी। इससे कोई परिवर्तन होने वाला नहीं है। इससे कोई परिवर्तन कभी नहीं हुआ है।
मैं आपसे कहूंगाः बजाय इसके कि आप शांति की खोज में जाएं, उचित है कि
आप समझें कि अशांति क्यों है? मेरे पास तो रोज निरंतर लोग आते हैं, वे यह कहते हैं कि हमें शांत होना है। मैं उनसे पूछता हूं कि इसकी फिकर छोड़ दें, अशांत व्यक्ति कभी शांत नहीं हो सकता। वे बड़े हैरान हो जाते हैं कि अगर अशांत व्यक्ति शांत नहीं हो सकता, तो क्या हम बिल्कुल निराश हो जाएं? मैं उनसे कहता हूंः नहीं। अशांत व्यक्ति शांत नहीं हो सकता, लेकिन अशांत व्यक्ति अगर अशांति के मूल कारणों को समझ ले, तो अशांति से मुक्त हो सकता है। और जब अशांति से मुक्त हो जाएगा, तो जो चीज शेष रह जाएगी, उसका नाम शांति है। अशांत मन शांत नहीं हो सकता, हां, अशांति से मुक्त हो सकता है। अशांति से मुक्त हो जाए, तो शांति तो हमारा स्वभाव है। हम तो उसमें खड़े हो जाएंगे।
तो बजाय इसके कि हम शांति खोजें और उसके लिए कोई अयास करें, मेरी दृष्टि यह है कि हम समझें कि हम अशांत क्यों हैं? और अगर हम समझ लें कि अशांत क्यों हैं, तो जिस चीज को हम समझ लेंगे कि वह हमें अशांति दे रही है, उसे छोड़ने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। क्योंकि जो चीज हमें अशांति दे रही हो, वह समझ में ही आ जाए तो छूट जाएगी। आपको समझ में आ जाए कि जहर रखा हुआ है, आप नहीं पीते। आपको समझ में आ जाता है कि यहां दीवाल है, यहां दरवाजा है, तो आप दरवाजे से निकलते हैं, दीवाल से नहीं निकलते। क्यों? अयास करते हैं बहुत दीवाल से न निकलने का? कि दरवाजे से निकलने का कोई अयास करते हैं? नहीं, बस जान लेते हैं कि यह दरवाजा है और यह दीवाल है, फिर दीवाल से आप नहीं निकलते।
जिस दिन आपको स्पष्ट दिखाई पड़ जाए कि अशांति कहां-कहां है चित्त में, कौन-कौन से कारणों से, उस दिन कोई अयास नहीं करना होता। अंडरस्टैंडिंग, समझ मात्र जीवन में एक क्रांति ला देती है। आप और ढंग से चलना शुरू हो जाते हैं।
एक दक्षिण में फकीर हुआ। उसके आश्रम में एक युवक बहुत-बहुत बकवादी, बहुत तार्किक और विवादी था। जैसे आमतौर से धार्मिक लोग होते हैं। धार्मिक लोग आमतौर से विवादी होते हैं। और जो जितना बड़ा विवादी होता है, हम कहते हैं, वह उतना ही बड़ा महर्षि है। जो जितना खंडन करे, तर्क करे, विवाद करे, कहते हैं, उतना ही बड़ा ज्ञानी है। वह युवक भी बड़ा ज्ञानी था, वह सुबह से सांझ तक सिवाय खंडन-मंडन के उसे कोई काम ही नहीं था। यह शास्त्र ठीक है और वह शास्त्र गलत है, और यह धर्म ठीक है और वह धर्म गलत है, निरंतर। एक दिन यात्रा करता हुआ एक संन्यासी मेहमान हुआ उस आश्रम में। उस युवक ने उससे भी बहुत विवाद किया, उसे बहुत पराजित भी किया।
विवाद का सुख ही और क्या है सिवाय इसके कि हम किसी को पराजित करें। और जहां पराजित करने वाला व्यक्ति मौजूद है, वहां फर्क नहीं पड़ता कि पराजय तर्क के द्वारा लाई गई या तलवार के द्वारा, हिंसा मौजूद है। वे एक तरह के लोग हैं। पुराने दिनों में गुरु निकलते थे गांव-गांव, खोजते थे दुश्मनों को, लड़ने जाते थे उनसे, उनको विवाद में हराने जाते थे। ये सब अहंकार की चेष्टाएं हैं, इनका ज्ञान से कोई संबंध नहीं है।
वह आते से ही उस संन्यासी से जूझ गया और उस संन्यासी को उसने शाम तक बहुत परेशान कर दिया, उसके सारे तर्क खंडित कर दिए। सांझ हारा हुआ वह संन्यासी चला गया। वह युवक बहुत गौरव से अपने मित्रों की तरफ देखा।
उसके गुरु ने उससे कहा कि देख, मैंने तुझे कभी नहीं कहा, लेकिन तीन वर्ष से निरंतर तू यहां है और सुबह से सांझ तक विवाद करता है, तर्क करता है। आज मैं तुझसे यह कहता हूं कि कभी मौन भी होकर देखेगा या नहीं? और मैं तुझसे यह निवेदन करता हूं कि इतने दिन तूने तर्क किया और विवाद किया, क्या

तुझे मिला? अगर कुछ मिला हो, तो मुझे भी बता, मैं भी विवाद करूं, मैं भी तर्क करूं। अगर न मिला हो, तो मौन होकर देख। कब से तू मौन होगा?
उस युवक ने क्या किया आपको पता है? उसने आंख बंद कीं, दो क्षण वह मौन बैठा रहा, और उसने अपने गुरु को कहा कि मैं ये अंतिम शब्द बोल रहा हूं कि आगे अब कभी नहीं बोलूंगा।
वह अंतिम दिन था, फिर जीवन भर वह नहीं बोला। लोगों ने आकर उसके गुरु को कहा कि यह युवक तो बिल्कुल पागल मालूम होता है, पहले तो बहुत विवाद करता था और अब बिल्कुल चुप हो गया!
उसके गुरु ने कहाः इस जैसे लोग मुश्किल से पाए जाते हैं, इतनी स्पष्ट समझ मुश्किल से होती है। इसे अयास की भी जरूरत न पड़ी, इसे चीज दिखाई पड़ी और हो गई। इसने सुना, समझा, दो क्षण आंख बंद करके मौन हुआ, उसे बात दिखाई पड़ गई कि तर्क में जो शांति नहीं थी, वह दो क्षण के मौन में थी। तर्क गया और विलीन हो गया।
कोई अयास थोड़े ही करना पड़ता है छोड़ने के लिए। ज्ञान खुद क्रांति बन जाता है। अयास तो वहां करना होता है, जहां ज्ञान नहीं होता, वहां अयास करना होता है। अयास अज्ञानी का लक्षण है। जब हम किसी चीज की कोशिश कर-कर के करते हैं, तो वह झूठी हो जाती है।
एक आदमी कहता है कि मैं शराब छोड़ने का अयास कर रहा हूं। उसका क्या मतलब है? उसका मतलब है कि उसे यह दर्शन नहीं हुए कि शराब जीवन के लिए घातक है, इसलिए अयास कर रहा है। एक आदमी कहता है कि मैं यह काम करने का अयास कर रहा हूं, वह काम छोड़ने का अयास कर रहा हूं। इसका अर्थ क्या? अगर दिखाई पड़े तो दर्शन ही क्रांति हो जाती है, परिवर्तन हो जाता है। मेरा आग्रह है कि चीजों को समझना चाहिए, अयास करने की फिकर नहीं करनी चाहिए। समझ से जो आता है, वह सहज परिवर्तन है; अयास से जो आता है, वह जबरदस्ती लाया हुआ परिवर्तन है। और जबरदस्ती लाए हुए परिवर्तन के पीछे विरोधी चित्त निरंतर मौजूद रहता है। वह कहीं खोता नहीं, वह कहीं जाता नहीं।
अगर मैं जबरदस्ती साध कर अयास करके ब्रह्मचर्य को पा लूं, भीतर सेक्स मौजूद रहेगा, जा नहीं सकता। इसलिए जिनको हम ब्रह्मचारी कहते हैं, उनकी दृष्टि और मन में जितनी सेक्सुअलिटी होती है, जितनी कामुकता होती है, उतनी सामान्यजन के मन में नहीं होती। हो भी नहीं सकती है। अयास कर-कर के ऊपर से ब्रह्मचर्य को थोप लेते हैं, भीतर का काम, भीतर की वासना कहां जाएगी? वह भीतर बैठी रहती है। फिर वह नये-नये रूपों से निकलती है। उसके बड़े अजीब-अजीब रूप हैं, जिनकी हमें पहचान भी नहीं है।
क्या आपको पता है कि जिन लोगों ने स्वर्ग में निरंतर युवा रहने वाली अप्सराओं की कल्पना की है, ये कौन लोग होंगे?
ये वे ही लोग होंगे, जिनको हम जमीन पर ब्रह्मचारी की तरह जानते हैं। इन्होंने स्वर्ग में निरंतर युवा रहने वाली अप्सराओं की कल्पना कर ली है। इन्होंने स्वर्ग में सारे सुख-भोग और सारी वासनाओं की तृप्ति का इंतजाम कर लिया है। ये यहां त्याग कर रहे हैं वहां पाने के लिए। और जिस चीज का त्याग कर रहे हैं, उसी को बड़े रूप में पाने का वहां इंतजाम कर रहे हैं। बहुत हैरानी की बात है! बहुत आश्चर्य की बात है! ये कैसे लोग हैं?
ऐसे धर्मग्रंथ हैं जिनमें यह लिखा है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं, झरने बहते हैं। वही धर्मग्रंथ यहां कहते हैं कि शराब पीना पाप है, वही कहते हैं कि जो यहां शराब छोड़ेगा उसे ऐसा स्वर्ग मिलेगा जहां झरने बह रहे हैं शराब के। और वहां कोई चुल्लुओं से पीने का सवाल नहीं है, वहां तो नहाइए-धोइए शराब में, कूदिए और पीइए, और जो भी करना हो। बड़ी हैरानी की बात है! जरूर जिसने जबरदस्ती शराब पर संयम बांध लिया होगा, उसी के मन में यह कल्पना उठी होगी स्वर्ग में शराब के चश्मे बहाने की। और तो किसके मन में उठेगी?
जिन लोगों ने जबरदस्ती स्त्रियों से अपने को दूर कर लिया होगा, उन्हीं ने स्वर्ग में अप्सराओं के नृत्य कल्पित किए होंगे। नहीं तो कौन करेगा? करेगा कौन? यह दमित, सप्रेस्ड माइंड, दमन किए हुए लोग, इस तरह की कल्पनाएं करेंगे, यह हैरानी की बात नहीं है। और जिन लोगों ने इस तरह का

ब्रह्मचर्य साधा है, उन सारे लोगों ने अपने ग्रंथों में, अपने शास्त्रों में स्त्रियों के अंग-अंग का वर्णन भी किया है। ऐसा रसपूर्ण वर्णन किया है कि हैरानी होती है कि ये कैसे लोग हैं? इनके दिमाग में जरूर कोई रुग्णता है, कोई खराबी है। स्त्रियों को नरक का द्वार कह रहे हैं।
तो मैं कई दफे हैरान हुआ, मुझे तो ऐसा लगने लगा कि स्त्रियां तो अब तक नरक गई ही नहीं होंगी, क्योंकि पुरुष तो कोई नरक जाने का द्वार हैं नहीं, स्त्रियां द्वार हैं, तो उनसे पुरुष तो नरक चले गए होंगे, लेकिन स्त्रियां कहां गई होंगी? स्त्रियां तो नरक जा ही नहीं सकतीं, वे तो द्वार हैं। उनके लिए तो कोई द्वार नहीं है, वे सब स्वर्ग में होंगी, मोक्ष में होंगी, पता नहीं कहां होंगी। अगर स्त्रियों ने ग्रंथ लिखे होते, तो वे लिखतीं, पुरुष नरक का द्वार है। लेकिन चूंकि पुरुषों ने लिखे हैं, इसलिए स्त्रियां नरक का द्वार हैं। और उन पुरुषों ने लिखे हैं, जिन्होंने जोर-जबरदस्ती से अपने को स्त्री से रोका होगा और दूर रखा होगा। नहीं तो जिस व्यक्ति के चित्त से काम विलीन हो जाए, सेक्स विलीन हो जाए, उसे तो स्त्री और पुरुष में फर्क और फासला भी नहीं रह जाना चाहिए।
बुद्ध एक पहाड़ी के किनारे ध्यान करते थे। वैशाली से कुछ युवक एक वेश्या को लेकर वन में विहार करने को आए होंगे। जब वे खा-पी रहे थे और शराब पी रहे होंगे, तब वह वेश्या मौका पाकर उनके हाथ से निकल भागी। वे युवक उसका पीछा करते हुए खोजने निकले। उस जंगल में कोई न दिखा, एक झाड़ के नीचे बुद्ध दिखाई पड़े। तो उन्होंने उन्हें हिलाया और कहा कि महानुभाव, आंखें खोलिए, क्या कोई स्त्री यहां से जाती हुई दिखाई पड़ी है?
बुद्ध ने कहाः क्षमा करें! कोई दस वर्ष हुए, तब से स्त्रियां दिखाई पड़नी संभव नहीं रहीं।
उन्होंने कहाः आप पागल हो गए हैं!
उन्होंने कहाः मैं सत्य कहता हूं। दिखाई पड़ते हैं लोग आते-जाते हुए, लेकिन जिस भांति पहले स्त्रियां पृथक दिखाई पड़ती थीं, वैसा अब दिखाई नहीं पड़ता। वह जो स्त्री के पृथक होने का बोध था, वह भीतर काम के कारण था, भीतर सेक्स के कारण था।
मैं सुनता था, एक व्यक्ति यूरोप से वापस लौटा। उसकी पत्नी उसे एयरपोर्ट पर लेने गई थी। वह नीचे उतरा, वे जो परिचारिकाएं हवाई जहाज पर थीं, उसमें से एक परिचारिका ने उससे हाथ मिलाया और विदा दी। उसने अपनी पत्नी को कहा कि यह परिचारिका बहुत अदभुत है और बहुत सेवा-कुशल है। कुछ नाम बताया कि यह इसका नाम है। उसकी पत्नी ने पूछाः आप इसका नाम कैसे जान सके?
उसने कहा कि पीछे अंदर तख्ती लगी हुई है, जिसमें सभी परिचारिकाओं, चालकों, सबके नाम लिखे हुए हैं।
और उसने कहाः कृपा करके बताइए, चालक का नाम क्या है?
वह पति जरा मुश्किल में पड़ गया।
जब एक पुरुष किसी तख्ती को पढ़ता है, तो सिर्फ स्त्रियों के नाम उसे ख्याल रह जाते हैं, पुरुषों के नाम ख्याल नहीं रह जाते। जिन पत्रिकाओं पर लिखा रहता है, ओनली फॉर मेन, उनको सिर्फ स्त्रियां पढ़ती हैं। जिन पर लिखा रहता है, सिर्फ पुरुषों के लिए, उनको सिर्फ स्त्रियां पढ़ती हैं। जिन पत्रिकाओं पर लिखा रहता है, सिर्फ स्त्रियों के लिए, उनको स्त्रियां नहीं पढ़तीं, सिर्फ पुरुष पढ़ते हैं। यह बहुत स्वाभाविक है। यह आश्चर्यजनक नहीं है। हमारे चित्त में जो विरोधी सेक्स के प्रति आकर्षण है, वह निरंतर काम करता है, उसी से हमें चीजें अलग दिखाई पड़ती हैं।
बुद्ध ने कहाः क्षमा करें! इधर दस वर्षों से, जब तक कि मैं कोशिश करके
ही पहचानने का ख्याल न करूं, तब तक स्त्री और पुरुष को अलग-अलग देख पाना अचानक नहीं हो जाता है। कोई निकला तो जरूर है यहां से, लेकिन स्त्री थी या पुरुष, यह कहना कठिन है।
जिन लोगों के चित्त से काम और सेक्स विसर्जित हो जाएगा, उनके मन में स्त्रियों के प्रति गालियां नहीं हो सकती हैं। अगर वे स्त्रियां हैं, तो उनके मन में पुरुषों के प्रति निंदा का, कंडेमनेशन का भाव नहीं हो सकता

है। अगर यह भाव मौजूद है, तो जानना चाहिए, भीतर काम मौजूद है, ऊपर से ब्रह्मचर्य को थोप लिया गया है, अयास कर लिया गया है। अयास बड़ी खतरनाक बात है। खतरनाक इसलिए कि भीतर कोई क्रांति नहीं होती और ऊपर से हम बिल्कुल बदले हुए दिखाई पड़ने लगते हैं।
मैं एक जगह था, एक बड़ी साध्वी से बातें करता था। बड़ी इसलिए कि उनके बहुत अनुयायी हैं। और तो बड़े-छोटे का कोई पता चलता नहीं दुनिया में। जिसके जितने अनुयायी होते हैं, वह उतना बड़ा हो जाता है। जैसे जिसके पास जितने ज्यादा रुपये होते हैं, उतना बड़ा आदमी हो जाता है। जिस साधु के पास जितनी भीड़ होती है, उतना बड़ा साधु हो जाता है। तो वे बड़ी साध्वी हैं, बहुत भीड़-भाड़ उनके आस-पास है। और भीड़-भाड़ देख कर भीड़-भाड़ बढ़ती जाती है। जैसे रुपये रुपये को खींचते हैं, वैसे भीड़ भीड़ को खींचती है। तर्क होता है चीजों का अपना। आपके पास बहुत रुपये हैं, रुपये अपने आप चले आते हैं। आपके पास बहुत भीड़ है, और भीड़ चली आती है। क्योंकि भीड़ सोचती है कि इतनी भीड़ है, तो आदमी जरूर बड़ा होगा। तर्क हमारे मन का ऐसा काम करता है। तो बड़ी भीड़ उनके पास है। उन्होंने मुझे भी कहा कि मुझसे मिलना चाहती हैं। मिलना हुआ। जैसे अभी यहां हवाएं चल रही हैं, ऐसी खूब तेज हवाएं थीं समुद्र के किनारे, जहां मैं उनसे मिला। तो मेरा चादर उड़ कर उनको छूता था। मेरा चादर छूता था, तो उनको ऐसा धक्का लगता था, जैसे बिजली का शॉक लग जाए। वे आत्मा-परमात्मा की मुझसे बात कर रही थीं और कह रही थींः हम तो शरीर नहीं हैं, हम तो परमात्मा हैं, आत्मा हैं, ब्रह्म हैं, फलां-ढिकां हैं। और मेरा चादर उनको छूता था हवा में, तो उनके प्राण कंप जाते थे। डर के मारे वे हट भी नहीं सकती थीं, क्योंकि मैं पूछूंगा कि आप हटी क्यों? मुझसे कह भी नहीं सकती थीं कि आपका चादर छू रहा है, तो बड़ा पाप हो रहा है। मगर उनके एक शिष्य ने मेरे कान में कहा कि क्षमा करिए! शायद आपको पता नहीं है, पुरुष का चादर साध्वी नहीं छू सकती है।
तो मैंने उनसे पूछाः आप भी सहमत हैं, ये जो मेरे कान में कह रहे हैं?
हां, उन्होंने कहा कि यह तो पुरुष का चादर हमें नहीं छूना चाहिए, वर्जित है।
तो मैंने कहाः मैं बहुत हैरान हूं! मेरे ओढ़ने से चादर भी पुरुष हो गया? आपके ओढ़ने से स्त्री हो जाता है, चादर भी? और बातें आप कर रही हैं आत्मा-परमात्मा की! बातें आप कर रही हैं कि हम शरीर नहीं हैं, शरीर तो मिट्टी है! चादर भी मिट्टी नहीं है आपको, चादर भी पुरुष है और शरीर को मिट्टी होने की बात कर रही हैं? तो मैंने उनको कहा कि यह चादर इसलिए पुरुष हो गया, भीतर जो दबा हुआ काम है, भीतर जो सेक्सुअलिटी है दबी हुई, वह सेक्सुअलिटी इस चादर के छूने से भी चौंकती है, जगती है, घबड़ाहट पैदा करती है।
यह जो हमारा चित्त है, जितनी चीजों को दबा लेता है और अयास कर लेता है, उतनी कठिनाई में पड़ जाता है।
तो मैं आपसे निवेदन करूंगा, अयास के लिए मेरा आग्रह नहीं है। मेरा आग्रह बहुत सहज जीवन-परिवर्तन के लिए है। कोशिश करके लाए हुए परिवर्तन का कोई भी मूल्य नहीं है। मूल्य है उस परिवर्तन का जो ज्ञान से आता है। मूल्य है उस परिवर्तन का जो भीतर से आता है और विकसित होता है। मूल्य है उस परिवर्तन का जो अनायास और सहज आपके जीवन को घेर लेता है, आलोक से मंडित कर देता है। उस परिवर्तन का कोई भी मूल्य नहीं है, जिसको खींच-खींच कर, व्यवस्था कर-कर के आप अपने चारों तरफ खड़ा कर लेते हैं। आपके द्वारा लाया गया परिवर्तन कोई भी अर्थ नहीं रखता। उस परिवर्तन का अर्थ है जो आपके अयास से नहीं आता, बल्कि आपके ज्ञान की छाया की भांति विकसित होता है।
तो मैं आपको कहूंः विवेक ही परिवर्तन है, ज्ञान ही परिवर्तन है। और ज्ञान कोई अयास नहीं है। ज्ञान कोई अयास नहीं है, ज्ञान है सतत जागरण, ज्ञान है चेतना का शांत होना और विकसित होना।
उसकी मैं कल बात करूंगा कि विवेक कैसे जाग्रत हो और ज्ञान कैसे फलित हो। अभी तो इतना कहूंगा इस प्रश्न के संबंध में और कि ऐसे अयास से आया हुआ वैराग्य, चाहे कोई भी शास्त्र उसका समर्थन करते हों और चाहे कोई भी धर्म-

49

ग्रंथ उसके पक्ष में खड़े हों, उनसे मुझे प्रयोजन नहीं है। जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं आपसे कह रहा हूं। और उसे स्पष्ट, निष्पक्ष भाव से आप सोचेंगे, यह भी आशा करता हूं।
अयास से आया हुआ वैराग्य झूठा है। जो वैराग्य सहज जीवन के जीने से विकसित होता है, वही सच्चा है। वैसे वैराग्य में न तो कुछ छोड़ना है, न किसी से भागना है, चीजें अपने आप छूटती हैं और बदलाहट होती चली जाती है। जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं, न वृक्ष को पता चलता, न पत्तों को, वैसे ही जिसके जीवन में ज्ञान की परिपक्वता आती है, उसके जीवन में कुछ चीजें छूटती चली जाती हैं और बदलती चली जाती हैं।
एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे मेरी बात समझ में आ सके।
एक लकड़हारा और उसकी पत्नी जंगल से वापस लौटते थे। वह लकड़हारा साधारणजन नहीं था, अयासी था और बहुत अर्थों में उसने वैराग्य को साधा था। उसने सब तरह के धन-संपत्ति से विराग ले लिया था। घर की सब संपत्ति बांट दी थी, अकिंचन हो गया था। घर में एक पैसा भी नहीं रखता था। रोज सुबह लकड़ियां काट लेता, बेच देता; जो बचता, खा-पी लेता; और जो बच जाता, सांझ को सूरज डूबने के पहले उसको बांट देता। रात वह परम दरिद्र होकर सो जाता। सुबह फिर लकड़ियां काटनी, फिर बांट लेना, फिर सो जाना। लेकिन कुछ दिन पानी गिरा था और पांच-सात दिन वह लकड़ियां नहीं काट सका था। तो पांच-सात दिन भूखे ही गुजारने पड़े थे, उसकी पत्नी और उसको, दोनों को। आज पांच-सात दिन के बाद वह लकड़ियां काट कर जंगल से वापस हो रहा था। आगे खुद था, पीछे पत्नी थी। पांच दिन का भूखा, थका, बूढ़ा आदमी, सिर पर लकड़ियों का बोझ! लेकिन बगल में उसने देखा कि किसी राहगीर, किसी घोड़े के सवार की, बगल में घोड़े के टापों के निशान हैं और पास में ही एक बड़ी थैली पड़ी है। कुछ मोहरें बाहर पड़ी हैं सोने की, कुछ थैली के भीतर हैं, थैली खुल गई है। उसके मन को हुआ कि मैंने तो निरंतर अयास से अनासक्ति को साध लिया, धन के प्रति मेरी कोई आसक्ति नहीं है, लेकिन मेरी पत्नी का मन डोल सकता है, उसका इतना अयास नहीं है, उसका इतना वैराग्य नहीं है, स्त्री ही ठहरी।
पुरुष के मन में सदा ऐसा लगता है कि स्त्री को भी कहीं वैराग्य हो सकता है? आपको पता है, मुश्किल से कोई धर्म हो जो स्त्री को स्वर्ग जाने का हक देता हो। कोई धर्म नहीं देता। धर्म कहते हैं कि स्त्री जब तक पुरुष की पर्याय में नहीं आएगी, तब तक मोक्ष उसका हो ही नहीं सकता। मुझे जगह-जगह स्त्रियां पूछती हैं कि हम पुरुष के पर्याय में कैसे आएं, इसका रास्ता बताइए! क्योंकि जब तक पुरुष न हो जाएं वे अगले किसी जन्म में, तब तक मोक्ष नहीं जा सकतीं।
यह तो फिर भी बड़ी दया है, चीन जैसे मुल्क में तो स्त्री के भीतर आत्मा
भी नहीं मानी जाती रही। स्त्री की हत्या कर देते, आज से तीस साल पहले तक चीन में मुकदमा नहीं चल सकता था। क्योंकि स्त्री में कोई आत्मा ही नहीं है, स्त्री तो संपदा है पुरुष की। ऐसे तो हम भी कहते हैंः स्त्री-संपत्ति। मूढ़ता तो हमारी भी वही है। स्त्री को हम भी संपत्ति ही मानते हैं। अभी भी हमारे मन में वही भाव है, मालिक हैं हम। इसलिए पुरुष के नाम से स्त्री जानी जाती है, स्त्री के नाम से पुरुष नहीं जाना जाता। हमारी पकड़ ऐसी रही है। तो उसने सोचाः स्त्री है, इसकी बुद्धि में कहां आ सकता है वैराग्य वगैरह! अयास भी इसका गहरा नहीं है। कहीं इसका मन न डोल जाए। उसने उस थैली को बगल के गड्ढे में सरका कर मिट्टी से ढंक दिया।
लेकिन वह ढंक भी नहीं पाया था कि उसकी स्त्री पीछे आ गई और उसने पूछाः क्या करते हैं? तो उसका यह भी अयास था कि झूठ नहीं बोलना है, सत्य ही बोलना है। तब बड़ी मुश्किल में पड़ गया, दुविधा में--अगर झूठ बोले तो पाप हो जाए और सत्य बोले तो कहीं स्त्री का मन न डोल जाए। फिर भी मजबूरी में भगवान का नाम लेते-लेते उसने सत्य बोला और उसने कहा कि ऐसी-ऐसी बात हुई, यहां सोने की मुद्राएं पड़ी थीं। मेरा वैराग्य तो दृढ़ है, तेरा संदिग्ध है। यह सोच कर कि भूख-प्यास में, घबड़ाहट में कहीं तेरा मन न डोल जाए--मन है चंचल, डोल सकता है--तो व्यर्थ ही तेरे मन को पाप लगे, कालिमा लगे, इसलिए मैंने इन मोहरों को हटा कर गड्ढे में डाल कर मिट्टी से ढंक दिया है।

उसकी स्त्री बहुत जोर-जोर से हंसने लगी। उसके पति ने पूछाः इतने जोर
से क्यों हंसती हो? बात क्या हो गई इसमें हंसने की?
उसने कहाः बात तो बड़ी हो गई। मैं तो सोचती थी कि तुम्हारे मन से सोने
का मोह चला गया। लेकिन अभी गया नहीं। तुम्हें सोना दिखाई पड़ता है? तुम्हें स्वर्ण दिखाई पड़ता है? और मैं दुखी भी मन में बहुत हो रही हूं, क्योंकि तुम मिट्टी पर मिट्टी को डाल रहे हो और सोच रहे हो कि बड़ा काम कर रहे हो!
इस स्त्री का कोई अयास नहीं था, इस स्त्री को कुछ दिखाई पड़ा था। सोने
का मिट्टी होना दिखाई पड़ा था, बात खत्म हो गई थी, अयास का कोई सवाल न था। पति को दिखाई तो सोना ही पड़ता था, अयास कर-कर के कि सब सोना बेकार है, कामिनी-कांचन सब व्यर्थ है, ऐसा दोहरा-दोहरा कर, मन को समझा-समझा कर, बांध-बांध कर, संयम कर-कर के उन्होंने किसी भांति सोने से अपने को दूर रख लिया था। सोना तो खूब दिखाई पड़ेगा ऐसी स्थिति में, आमतौर से और ज्यादा दिखाई पड़ेगा। आमतौर से ज्यादा दिखाई पड़ेगा। जिसने इस तरह अपने को दूर-दूर बांधा है सोने से, सोना उसे पागल करने लगेगा, सोने के प्रति उसका आकर्षण बहुत तीव्र हो जाएगा, घनीभूत हो जाएगा। वह जहां भी देखेगा, वहीं उसे सोना दिखाई पड़ेगा। जरा सा भी सोना होगा, उसके प्राण डांवाडोल होने लगेंगे, क्योंकि उसने बांधा है, जबरदस्ती रोका है। जबरदस्ती से रोकने से रुग्ण चाह पैदा होती है, अनासक्ति नहीं। रुग्ण चाह आसक्ति से भी ज्यादा घातक है।
लेकिन चीजें दिखाई पड़ें, अनुभव में आएं, तो फिर एक परिवर्तन होता है,
जो बिना अयास के होता है। मैं नहीं कहता हूं कि कोई अयास करें। मैं कहता हूंः विवेक को जगाएं, मन को शांति की तरफ ले जाएं और देखें चीजों को, जीवन को। आपको खुद दिखाई पड़ने लगेगा कि जीवन एक सपने की भांति है। कोई इसका अयास नहीं करना पड़ेगा। और ऐसा बैठ कर रोज दोहराना नहीं पड़ेगा कि जगत मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है। ऐसा दोहराना नहीं पड़ेगा। ऐसा घर में रोज-रोज अयास नहीं करना पड़ेगा कि जगत तो मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है। जो ऐसा दोहरा-दोहरा कर याद करता हो कि जगत मिथ्या और ब्रह्म सत्य, उसको दिखाई नहीं पड़ रहा है, नहीं तो दोहराता क्यों? दोहराता वही है जिसे दिखाई नहीं पड़ता। जिसे दिखाई पड़ रहा है, वह क्यों दोहराएगा? दिखाई पड़ना पर्याप्त है और उससे क्रांति हो जाती है।
तो मैं चाहूंगा कि देखना शुरू करें, अयास नहीं।
लेकिन हजारों साल की शिक्षाएं हैं लीक से बंधी हुई और वे हमसे कहती हैंः अयास करो, नहीं तो वैराग्य पैदा ही नहीं होगा। राग में पड़े रहोगे तो कैसे वैराग्य पैदा होगा? इसलिए विराग का अयास करो। राग से हटो, विराग का अयास करो।
मैं कहता हूंः नहीं। राग से अगर भागे और वैराग्य पैदा किया, उस वैराग्य के भीतर भी राग मौजूद रहेगा, वह कहीं जा नहीं सकता है। फिर मैं आपसे क्या कहता हूं? मैं कहता हूंः जहां आप हो, वहीं आंखें खोल कर जीओ। राग में भी आंख खोल कर जीओ। आंखें खोल कर जीने से, अगर राग व्यर्थ है, तो दिखाई पड़ने लगेगा, वैराग्य लाना नहीं पड़ेगा। राग की व्यर्थता दिखाई पड़ी कि राग झड़ने लगेगा, जैसे पके पत्ते गिरने लगते हैं। और जहां हो आप, वहीं एक दिन आप पाओगे, वैराग्य आ गया है। वैराग्य आता है, लाया नहीं जाता, वह कल्टिवेट नहीं किया जाता। संन्यास आता है, लाया नहीं जा सकता। और आता कैसे है? जहां देखने की दृष्टि निर्मल हो जाती है, वहां अपने आप चला आता है। जैसे बैलगाड़ी चलती है, तो पीछे चक्के के निशान बन जाते हैं, वैसे ही जहां भी ज्ञान जीवन में जगता है, वहीं अपने आप पीछे वैराग्य के निशान बनते चले आते हैं। वैराग्य ज्ञान की छाया है, अयास का फल नहीं। और जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह ज्ञान से फलित होता है, अयास से फलित नहीं होता। अयास से कोई एक्टिंग कर सकता है, अभिनेता बन सकता है, पाखंड पैदा कर सकता है। लेकिन वस्तुतः जीवन-क्रांति उससे न कभी पैदा हुई है और न हो सकती है।
तो इस संबंध में यह मुझे निवेदन करना है। इस संबंध में और भी कुछ बातें शायद होंगी, तो वह आप पूछेंगे, तो इन दो दिनों में उनकी भी चर्चा हो सकेगी।

और भी कुछ प्रश्न हैं थोड़े से। एकाध-दो प्रश्न की और मैं बात करूंगा, फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे। जो प्रश्न बच जाएंगे, उनकी मैं कल बात करूंगा।

पूछा हैः हम ऐसा क्यों मानते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति ही मानव-जीवन का ध्येय है? क्या यह नहीं हो सकता कि मानव-जीवन का कोई ध्येय न हो? प्रयोजन ही न हो?

इन दोनों बातों में, जिसने पूछा है, उसे विरोध दिखाई पड़ता होगा।
उसने पूछा है कि क्या मानव-जीवन का ध्येय परमात्मा को पाना है? या कि मानव-जीवन का कोई ध्येय ही नहीं है?
उसे दिखाई पड़ता होगा कि इन दोनों में विरोध है। मैं आपसे कहूंः इन दोनों में विरोध नहीं है। परमात्मा को पा लेने पर ही ज्ञात होता है कि जीवन का कोई ध्येय नहीं, उसके पहले तो ज्ञात हो ही नहीं सकता। ऐसी चित्त की स्थिति को पा लेना जहां कोई ध्येय न हो, कोई ध्येय शेष न रह जाए, वही तो परम ध्येय है। जीवन की ऐसी स्थिति को पा लेना, जहां फिर कोई और ध्येय न रह जाए, यही तो परम ध्येय है। परमात्मा को पाने का और कोई अर्थ ही नहीं है। और कोई अर्थ नहीं है।
आमतौर से हम जीवन में कुछ न कुछ पाने को ध्येय मानते हैं--कोई धन पाने को, कोई यश पाने को, कोई कुछ और, कोई कुछ और। लेकिन कितना ही धन पाएं, फिर भी ध्येय आगे शेष रह जाता है, समाप्त नहीं होता, और धन चाहिए। कितना ही यश पाएं, फिर भी ध्येय शेष रह जाता है, और यश चाहिए। कुछ भी पाते जाएं, ध्येय आगे फिर बच रहता है। इसलिए ये कोई भी ध्येय अंतिम ध्येय नहीं हो सकते हैं, क्योंकि इनके बाद ध्येय समाप्त नहीं होता, फिर बच रहता है।
सिकंदर हिंदुस्तान की तरफ आया था, उसे ख्याल था कि सारी दुनिया जीत लेनी है। रास्ते में, सुबह जिस डायोजनीज की मैंने बात की, उससे उसका मिलना हुआ, तो डायोजनीज ने उससे पूछा कि अगर तुम सारी दुनिया जीत लोगे, तो फिर क्या करोगे?
उसने कहाः यह प्रश्न तो मेरे ख्याल में नहीं आया। तुम पूछते हो तो मैं बहुत डर गया, क्योंकि सच में ही फिर इसके आगे तो कुछ बचता ही नहीं, दूसरी दुनिया भी नहीं जिसको मैं जीतूं। अगर मैंने पूरी दुनिया जीत ली, तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा। फिर मैं क्या करूंगा? यह तो मैंने सोचा नहीं। क्योंकि और आगे कोई दूसरी दुनिया नहीं, जिसको मैं फिर जीतने जाऊं।
फिर भी डायोजनीज ने कहा कि फिर क्या करोगे आखिर? कुछ तो सोचो!
उसने कहा कि फिर मैं विश्राम करूंगा। फिर मैं जीतना छोड़ दूंगा। फिर मैं परम शांति से विश्राम करूंगा।
डायोजनीज खूब हंसने लगा और उसने कहाः फिर तुम पागल हो! अगर विश्राम ही करना है, तो मैं विश्राम कर ही रहा हूं। इतनी दौड़-धूप क्यों करते हो? आओ और मेरे पास लेट जाओ; इस छोटे से जगह में, झोपड़े में, दो के लायक काफी जगह है। अगर विश्राम ही करना है अंत में, और सब खोज और सब जीत छोड़ देनी है, तो इतनी दौड़-धूप क्यों? आ जाओ और अभी शुरू कर दो! इतना समय क्यों खोते हो?
सिकंदर ने कहाः बात तो तुम बड़ी ठीक कहते हो। लेकिन बड़ा मुश्किल है, मैं तो आधी यात्रा पर निकल चुका। आधे से लौटना तो ठीक नहीं।
वह डायोजनीज ने कहाः तुम बिल्कुल पागल हो! अब तक दुनिया में पूरी यात्रा तो किसी ने की ही नहीं, सभी को आधे पर ही लौट जाना पड़ता है। क्योंकि जो जहां तक पहुंच जाता है, यात्रा उसके आगे भी बहुत शेष रह जाती है।
तो दो तरह के ध्येय हैं जीवन में। एक, जो कभी पूरे नहीं होते, क्योंकि उनको पूरा भी कर लो, तो नये ध्येय पैदा हो जाते हैं। और एक ऐसा ध्येय भी है जीवन में, जो पूरा हो जाए, तो सभी ध्येय समाप्त हो जाते हैं, उसके आगे फिर करने को कुछ शेष नहीं रह जाता। उस ध्येय का नाम ही तो परमात्मा है।
परमात्मा से कोई यह मतलब थोड़े ही है कि धनुषबाण लिए हुए रामचंद्रजी खड़े हैं, तो परमात्मा है। कि मुरली बजाते कृष्ण खड़े हैं, तो परमात्मा है।
कि सूली पर लटके क्राइस्ट खड़े हैं, तो परमात्मा है।

नहीं; परमात्मा का अर्थ हैः जीवन में ऐसी परम विश्रांति की अवस्था को
पा लेना, जिसके बाद पाने को फिर कुछ शेष न रह जाए। परमात्मा जीवन की ऐसी आनंद अनुभूति है जिसके बाद फिर पाने की कोई आकांक्षा शेष नहीं रह जाती है। तो वे पूछते हैं कि यह भी तो हो सकता है कि जीवन का कोई ध्येय न हो?
यह सच है, वस्तुतः जीवन का कोई ध्येय नहीं है। और जब तक हम ध्येय के पीछे दौड़ते हैं, तभी तक हम जीवन से वंचित रहते हैं, जीवन को नहीं उपलब्ध कर पाते हैं। लेकिन इस भांति भी जीवन जीया जा सकता है कि उसमें फिर कोई ध्येय, कोई आकांक्षा और कोई वासना और कोई डिजायर और कोई एंबीशन न रह जाए, इस भांति भी जीवन जीया जा सकता है। उस तरह के जीवन को जीने का ढंग ही परमात्मा का मार्ग है, और उस तरह की स्थिति को पा लेना ही परमात्मा को पा लेना है।
तो इन दोनों बातों में विरोध नहीं है। जो पूछा है, पूछने वाले को ख्याल होगा कि विरोध है। इन दोनों बातों में विरोध नहीं है, ये दोनों बातें एक ही हैं। जब भी कोई व्यक्ति इतना शांत हो जाएगा कि उसके जीवन में कोई कामना और वासना नहीं रह जाती, फिर वह जीता है ऐसे ही जैसे हवाएं बहती हैं, जीता है ऐसे ही जैसे नदियां बहती हैं, जीता है ऐसे ही जैसे वृक्षों में फूल खिलते हैं, जीता है ऐसे ही जैसे आकाश में बादल घूमते हैं। जिस दिन मनुष्य ऐसा जीने लगता है कि उसके जीवन में कोई कामना और वासना के सूत्र नहीं रह जाते खींचने वाले; आनंद में और शांति में।
दो तरह के जीवन के जीने के ढंग हैं। एक जीवन का ढंग है, जिसमें वासना आगे से खींचती है, तो हम चलते हैं। जैसे कोई आदमी किसी को बांध कर खींच रहा हो, वैसे ही वासना हमें खींचती है। हम सब इसी तरह चलते हैं। कोई हमें खींच रहा है आगे से। कोई कामना खींच रही है--किसी को मिनिस्टर बनना है, तो किसी को गवर्नर बनना है, या किसी को राष्टपति बनना है, तो खींच रही है एक वासना उसे। आगे से कोई कामना खींचे जा रही है, वह बंधे हुए बैल की तरह खिंचा जा रहा है उसकी तरफ। एक तो इस तरह का जीवन है, वासना से खींचा गया जीवन। एक इस तरह का जीवन है, वासना से खींचा गया नहीं, आनंद से झरा हुआ जीवन।
एक छोटी घटना कहूं, उससे भेद समझ में आए।
तानसेन का नाम तो सुना ही है। अकबर बहुत-बहुत प्रभावित था तानसेन से, उसके संगीत से, उसकी कला से। अदभुत थी उसकी क्षमता और प्रतिभा। एक दिन अकबर ने तानसेन को पूछा कि मित्र, बहुत बार एक प्रश्न मन में उठता है, लेकिन पूछता नहीं, संकोच से रह जाता हूं, लेकिन आज पूछूंगा, कोई है भी नहीं, तुम अकेले हो। और रात किसी राग को सुना कर तानसेन वापस लौटता था, सीढ़ियों पर अकबर ने उसे रोक लिया और कहाः यह पूछना है। कल्पना में भी यह बात नहीं बैठती कि तुमसे बेहतर भी कोई बजा सकता होगा या गा सकता होगा। लेकिन यह बात मन में ख्याल में आती है, तुम्हारा कोई गुरु भी होगा। किसी से तुमने सीखा भी होगा। तो शायद वह तुमसे बेहतर बजाता हो! शायद! तुम्हारे गुरु जीवित हैं? अगर जीवित हों, तो मैं उनको भी देखना और सुनना चाहूंगा।
तानसेन ने कहाः गुरु तो जीवित हैं, लेकिन सुनना उन्हें बहुत कठिन है। क्योंकि वे किसी कारण से बजाते और गाते नहीं, अकारण गाते और बजाते हैं। उनसे कोई कहे कि गाओ और बजाओ, तो वे हंसने लगते हैं। वे कहते हैं, मैं जानता ही कहां! कोई प्रलोभन उन्हें बजाने को राजी नहीं कर सकता। तो किसी के कहने से वे कभी गाते-बजाते नहीं; कभी मौज में होते हैं, तो नाचते हैं, गाते हैं, बजाते हैं। अकारण है उनका बजाना; बिना किसी ध्येय के और बिना किसी लक्ष्य के। तो उन्हें तो सुनना बहुत दूभर, बहुत मुश्किल बात है। कभी रात तीन बजे बजाते हैं, कभी दो बजे। आप कहां सुनने जाएंगे? कैसे सुनने जाएंगे?
अकबर ने कहाः लेकिन कुछ भी हो, मैं सुनना चाहूंगा। तुम्हारी बात सुन
कर तो सुनने का मोह और भी तीव्र हो गया।
तानसेन ने पता लगाया, ज्ञात हुआ कि उन दिनों वे कोई तीन बजे सुबह उठ कर--यमुना के किनारे रहते थे, हरिदास नाम के एक साधु थे--वे कोई तीन बजे सुबह कुछ गाते हैं, कुछ बजाते हैं। रात दो बजे से तानसेन और अकबर झोपड़े के बाहर छिप कर बैठ गए। कभी किसी बादशाह ने चोरी से किसी का संगीत सुना नहीं होगा इसके पहले और न इसके बाद। कोई तीन बजे हरिदास ने गीत गाना शुरू किया, अपने तंबूरे पर धुन निकालनी शुरू की। वे गाते रहे और इधर अकबर रोता रहा।

फिर गीत बंद हुआ, तो भी अकबर बैठा रहा। तानसेन ने हिलाया और कहा कि गीत बंद हो गया, अब हम लौट चलें, और कहीं पकड़ न लिए जाएं इस चोरी करते हुए!
अकबर चौंका, जैसे किसी ने नींद तोड़ दी हो, उसने अपने आंसू पोंछे और तानसेन के साथ वापस लौटा। रास्ते भर चुप रहा, बोला नहीं, महल में प्रवेश करते वक्त उसने तानसेन से कहाः मैं सोचता था, तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं। अब मैं सोचता हूं, गुरु के सामने तो तुम कुछ भी नहीं हो। इतना फर्क क्यों है? इतना भेद क्यों है?
तानसेन ने कहाः बात बहुत साफ है। मैं इसलिए बजाता हूं कि कुछ मिलेगा बजाने से, कुछ पा लूंगा बजाने से। मैं बजाता हूं, क्योंकि कोई कामना है जो पूरी होगी। बजाना मेरे सामने परिपूर्ण कृत्य नहीं है; टोटल एक्ट, परिपूर्ण कृत्य नहीं है। बजाना है मेरे सामने साधन, पाना है कुछ और। पाने पर नजर टिकी रहती है, बजाता हूं, बजाना एक काम हो जाता है। नजर टिकी रहती है पाने पर, इसलिए बजाने में वह सौंदर्य और आनंद नहीं हो सकता। मेरे गुरु बजाते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें कुछ पाना है, बल्कि इसलिए कि उन्होंने कुछ पा लिया है। इस फर्क को मैं फिर से दोहराता हूंः मेरे गुरु बजाते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें कुछ पाना है, बल्कि इसलिए कि उन्होंने कुछ पा लिया है। और जो पा लिया है, वह बंटना चाहता है, फैलना चाहता है। वह जो आनंद उन्हें उपलब्ध हुआ है, वह बिखरना चाहता है और बंट जाना चाहता है, और हवाओं पर सवारी करना चाहता है, और दूर-दूर छिटक जाना चाहता है। आनंद पहले है, संगीत उससे निकल रहा है। मेरी तरफ संगीत पहले है, आनंद उससे निकलेगा।
दो तरह के लोग हैं। वासनाओं से खींचे जाते हुए लोग, उनका जीवन किसी लक्ष्य, किसी इच्छा, किसी महत्वाकांक्षा से प्रेरित होगा। ऐसे जीवन में न शांति हो सकती है, न आनंद हो सकता है। ऐसा जीवन बोझ का जीवन होगा। एक दूसरी तरह का चित्त भी है, जो किसी बहुत गहरे आनंद को उपलब्ध हुआ है। अब भी जीता है, अब भी श्वास लेता है, चलता है, उठता है, बैठता है, लेकिन अब उसके सारे कृत्य उस आनंद को बांटने का कृत्य हो जाते हैं, अब उसे कुछ पाना नहीं है, अब तो कुछ उससे बंटना है और बिखर जाना है।
ऐसा जीवन परमात्मा को उपलब्ध जीवन है। ऐसे जीवन में कोई लक्ष्य नहीं
है अब। वस्तुतः जीवन में कोई लक्ष्य नहीं है। लेकिन जब तक जीवन में बहुत लक्ष्य हैं--यह लक्ष्य है धन का, वह लक्ष्य है यश का, वह लक्ष्य है पद का--जब तक बहुत लक्ष्य हैं, तब तक इन सारे लक्ष्यों से जीवन पीड़ित और दुखी होगा। जब हम कहते हैं, परमात्मा को पाना है, तो ऐसा मत समझ लेना कि परमात्मा को पाना भी एक लक्ष्य है। नहीं, परमात्मा को पाने का यह अर्थ है कि सारे लक्ष्यों से मुक्त हो जाना। इस बात को समझ लें! परमात्मा को पाना कोई लक्ष्य नहीं है। जैसे धन को पाना एक लक्ष्य है और यश को पाना एक लक्ष्य है, ऐसा परमात्मा को पाना एक लक्ष्य नहीं है। लेकिन तथाकथित साधु और संन्यासी परमात्मा को इसी तरह का लक्ष्य बनाए हुए है। वह सोचता है, परमात्मा को पाना है। लेकिन जो चित्त पाने की इच्छा से भरा है, वह चित्त कभी परमात्मा को पा नहीं सकेगा। परमात्मा को पाता तो वह चित्त है जिसकी पाने की सारी इच्छा विसर्जित हो गई है। जो न पाने की स्थिति में राजी हो गया और तृप्त हो गया, वह उसी क्षण परमात्मा को पा लेता है।
वह कल रात मैंने जो कहानी कही थी, उसे आप स्मरण करना। पाने की इच्छा से भरा हुआ चित्त कभी नहीं पा सकता। लेकिन जिसकी पाने की कोई कामना नहीं रह गई, वह पा लेता है। परमात्मा को पाना, यह केवल शाब्दिक भूल है, परमात्मा कोई वासना नहीं है हमारी कि हम उसे पा लें। हां, परमात्मा को पा लिया जाता है, उस समय जब चित्त निर्वासना में, डिजायरलेसनेस में मौजूद हो जाता है। कैसे चित्त निर्वासना में, न कुछ पाने की स्थिति में आ सकता है?
जिसको मैं ध्यान कह रहा हूं, उसी विधि से, उसी ध्यान के बोध से निरंतर चित्त की वासना क्षीण होती चली जाती है और एक घड़ी आती है कि आपको लगता है कि कुछ भी पाने को नहीं है। न कुछ पाने की प्रेरणा है, न कुछ पाने की कामना है, चित्त शांत है, मौन है। कुछ भी पाने की कोई पीड़ा और कोई तनाव चित्त को घेर नहीं रहा है। जिस क्षण भी, एक क्षण को भी चित्त इस स्थिति में पहुंचेगा, उसी क्षण आप पाएंगे कि परमात्मा का सान्निध्य उपलब्ध हो गया।

उसी क्षण आप पाएंगे कि मेरे और उसके बीच की सारी दीवाल गिर गई, मैं वही हो गया। उस दिशा में जाने के लिए निरंतर, निरंतर बोध को जगाने की, विवेक को विकसित करने की और ध्यान को गहरा से गहरा ले जाने की जरूरत है।

और कुछ प्रश्न हैं, उनकी मैं कल आपसे बात करूंगा। अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।
ध्यान में कोई फर्क नहीं है। सबसे पहले तो बहुत आराम से बैठ कर शरीर
को ढीला छोड़ दें। उसमें कोई, कोई तनाव शरीर के किसी अंग पर न हो। और बिल्कुल फिकर न करें, उसे बिल्कुल ढीला छोड़ दें, कोई अंग तना हुआ न हो। दूसरी बात, आंख को बहुत धीरे से बंद हो जाने दें; बंद करें नहीं, बंद हो जाने दें। धीरे से पलक को झपक जाने दें।
और बड़े हलके मन से बैठें, कोई गंभीरता नहीं, कोई बड़ा काम नहीं करने जा रहे हैं। एक मौज में दो, दस क्षण बिताने जा रहे हैं, चुपचाप मौन में। कोई अपेक्षा न रखें कि कोई बड़ी शांति मिल जाएगी, कोई बहुत आनंद मिल जाए। कोई अपेक्षा न रखें। सब अपेक्षा छोड़ दें। बिल्कुल हलके हो जाएं, मन से सारा भार अलग कर लें। और ख्याल कर लें, आंख बंद करने के बाद मस्तिष्क पर कोई तनाव न हो, चेहरा खिंचा न हो, बिल्कुल ढीला छोड़ दें। माथे पर कोई बल न रह जाए, बिल्कुल ढीला छोड़ दें। ख्याल करें, जब आप छोटे-छोटे बच्चे रहे होंगे, वैसे ही हलके-फुलके होकर बैठ जाएं।
ठीक है! ढीला छोड़ दें शरीर को, आंख बंद हो जाने दें। बिल्कुल हलके- फुलके हो जाएं, अपने को बिल्कुल मिटा दें, आप हैं ही नहीं। अब सुनें, चारों तरफ आवाजें होंगी, झींगुर बोल रहे हैं, रात का सन्नाटा बोलेगा, उसे शांति से सुनें, बिना किसी प्रतिरोध के। आप साक्षीमात्र हैं, इस शांत रात्रि में, झींगुर बोलती हुई रात्रि में आप साक्षीमात्र हैं। बस सुन रहे हैं, कुछ कर नहीं रहे हैं। सुनते-सुनते ही मन मौन होता जाएगा, सुनते ही सुनते मन शांत होता जाएगा, सुनते ही सुनते भीतर एक सन्नाटा छाने लगेगा और ऐसा लगेगा कि बाहर की सन्नाटे से भरी रात भीतर भी घुस गई, आप उसी में डूब गए। सुनें। दस मिनट के लिए बिल्कुल अपने को छोड़ दें और देखें, क्या होता है? आपको कुछ भी नहीं करना है, कुछ होता जाएगा। धीरे-धीरे मन शांत होता जाएगा, मौन होता जाएगा। फिर तो एक बड़ा शून्य हो जाएगा, आप उसमें डूब जाएंगे, आपको पता भी नहीं रहेगा कि आप हैं, बस यह सन्नाटा रह जाएगा। सुनें, शांत बिना किसी तनाव के, बिना किसी विरोध के, चारों तरफ गूंजती हुई रात को सुनें। सुनते-सुनते ही मन मौन होता जाता है। मन मौन हो रहा है... मन शांत हो रहा है... हो जाने दें, बिल्कुल छोड़ दें। आप हैं ही नहीं, छोड़ दें, अपने को बिल्कुल छोड़ दें, सारी पकड़ छोड़ दें। मन शांत हो रहा है... स्वयं की श्वास सुनाई पड़ने लगेगी, सब सुनाई पड़ने लगेगा और भीतर ऐसी चुप्पी आती जाएगी।... मन मौन होता जाएगा... मन मौन होता जाएगा... मन शांत होता जाएगा... मन शांत
हो जाएगा... मन बिल्कुल मौन हो जाएगा... छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, मन डूबता जाएगा, मौन होता जाएगा, छोड़ दें, छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, सारी पकड़ छोड़ दें, होने दें जो होता है।
देखें, मन शांत हो गया, मन कैसा शांत हो गया, मन कैसा शांत हो गया। इसी शांति में डूबते चले जाएं, इसी शांति में मिटते चले जाएं, इसी शांति में खो जाएं।
मन शांत हुआ है... हवाएं रह गईं, रात रह गई, सर्द रात रह गई और आप मिट गए,
आप अब नहीं हैं, रात है, हवाएं हैं, आवाजें हैं, आप अब नहीं हैं, मन बिल्कुल शांत हो गया।
धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें... धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें... श्वास भी बहुत शांति लाती हुई मालूम पड़ेगी, भीतर तक प्राण शांत हो जाएंगे। फिर धीरे-धीरे आंख की पलकों को खोलें...

साक्षी की साधना
छठवां प्रवचन

विवेक का जागरण

चित्त मुक्त हो, इस संबंध में कल सुबह हमने बात की है। वह पहला चरण है, स्वयं का विवेक जग सके, इस दिशा में। दूसरे चरण में, स्वयं का विवेक कैसे जाग्रत हो, किन विधियों, किन मार्गों से भीतर सोई हुई विवेक की शक्ति जाग जाए, इस संबंध में हम आज बात करेंगे।
इसके पहले कि हम इस संबंध में विचार करना शुरू करें, एक अत्यंत प्राथमिक बात समझ लेनी जरूरी है। और वह यह कि मनुष्य के भीतर केवल वे ही शक्तियां जाग्रत होती हैं और सक्रिय, जिन शक्तियों के लिए जीवन में चुनौती खड़ी हो जाती है, चैलेंज खड़ा हो जाता है। वे शक्तियां सोई हुई ही रह जाती हैं, जिनके लिए जीवन में चुनौती नहीं होती।
यदि किसी व्यक्ति को वर्षों तक आंखों का उपयोग न करना पड़े, तो आंखों
की जागी हुई शक्ति भी सो जाएगी। अगर किसी व्यक्ति को वर्षों तक पैरों से न चलना पड़े, तो पैर भी पंगु हो जाएंगे। जीवन उन शक्तियों का निरोध कर देता है, जिन शक्तियों के लिए हम सक्रिय रूप से उपयोग नहीं करते हैं। ठीक इसके विपरीत, जीवन उन शक्तियों को पैदा भी कर देता है, जिनके लिए चुनौती उपस्थित हो जाती है।
विज्ञान भी इस दिशा में जिन खोजों को कर पाया है, वे भी इसकी समर्थक हैं। पशुओं में, प्राणियों में, पक्षियों में या मनुष्यों में, केवल वे ही शक्तियां जाग गई हैं और सक्रिय हो गई हैं, जिनके लिए जीवन ने चुनौती खड़ी कर दी है। जहां चुनौतियों का अभाव है, जहां प्रेरणाएं नहीं हैं, वहां शक्तियों के जागने का कोई कारण नहीं रह जाता।
घने जंगलों में दरख्त ऊंचे उठ जाते हैं, अफ्रीका के जंगलों में दरख्त आकाश को छूने की तरफ बढ़ने लगते हैं। घने जंगल में श्वास लेने की सुविधा दरख्तों को नीचे होने पर नहीं मिल सकती, उनके सामने बड़ा प्रश्न खड़ा हो जाता होगा, उनके प्राण संकट में पड़ जाते होंगे, तो वे निरंतर ऊपर उठने की कोशिश करते हैं, ताकि हवा और रोशनी उन्हें मिल सके। लेकिन जहां घने जंगल नहीं होते, वहां दरख्त छोटे रह जाते हैं, वहां दरख्त बड़े नहीं होते। मरुस्थलों में ऊंटों ने अपनी गर्दनें लंबी कर लीं, इसके सिवाय जीना असंभव था। जितना भयंकर मरुस्थल हो, और जिस मरुस्थल में नीचाइयों पर पत्तियों को पाना असंभव हो, वहां के ऊंट उतनी ही लंबी गर्दन करने में समर्थ हो गए हैं। जिर्राफ होता है, उसने भी अपनी गर्दन बहुत लंबी कर ली है, क्योंकि जिन जंगलों में वह होता है, वहां दरख्त बहुत ऊंचे हैं।
प्राणी-विज्ञान इस बात को कहेगा कि हम केवल उन्हीं शक्तियों को विकसित कर पाते हैं जिन्हें बिना विकसित किए जीवन संकट में पड़ जाए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में बहुत से हिस्से निष्क्रिय पड़े हुए हैं। मस्तिष्क का बहुत छोटा सा हिस्सा काम कर रहा है, बाकी हिस्से सब बंद पड़े हुए हैं। शायद उनकी जरूरत नहीं पड़ी, शायद उनके लिए चुनौती खड़ी नहीं हुई, शायद उनके लिए जीवन ने अभी मौका नहीं दिया कि वे जागें और सक्रिय हो जाएं।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं प्राथमिक रूप से कि विवेक की शक्ति भी प्रत्येक मनुष्य के भीतर उपस्थित है, लेकिन यदि हम विवेक की शक्ति के लिए चुनौती उपस्थित नहीं करेंगे, तो वह सोई रह जाएगी, वह जागेगी नहीं। श्रद्धा रोक देती है, विश्वास रोक देता है, क्योंकि विश्वास कर लेने पर विवेक को जागने का कोई कारण ही नहीं रह जाता।
इसलिए श्रद्धा विवेक की शक्ति के जागरण में बाधा है, तो ठीक श्रद्धा
के विपरीत जो चित्त की दशा होती है वह सहयोगी होगी। संदेह, डाउट, विवेक को जगाने में सहयोगी होता है। धन्य हैं वे लोग जिनके जीवन में सम्यक संदेह का जन्म हो जाता है। क्यों? क्योंकि सम्यक संदेह के तीव्र दबाव में, प्रेशर में, संदेह की चित्त-दशा में विवेक सोया हुआ नहीं रह सकता, उसे जागना ही पड़ेगा। क्योंकि संदेह बाहर तो किसी बात पर विश्वास करने को राजी नहीं

होता है और जब बाहर किसी बात पर विश्वास करने को हम राजी नहीं होते, तो एक ही मार्ग रह जाता है राजी होने का, संतुष्ट होने का, कि उत्तर भीतर से आए। अगर बाहर के सब उत्तर व्यर्थ दिखाई पड़ने लगें, बाहर के सारे शास्त्र निरर्थक दिखाई पड़ने लगें, बाहर कोई भी शरण न मालूम पड़े और बाहर श्रद्धा को कोई आधार न रह जाए, तो उस निराधार चित्त की दशा में, जब बाहर के सब सहारे खो गए हों और बाहर विश्वास के लिए कोई कारण न रह गया हो, प्राणों में सोई हुई वह ऊर्जा जगती है, जो भीतर से उत्तर देना शुरू करती है। उसके पहले भीतर से उत्तर नहीं आते। उसके पहले भीतर से उत्तर आने का कोई कारण भी नहीं है। भीतर से उत्तर तभी आ सकते हैं, जब बाहर के सब उत्तर व्यर्थ हो गए हों। जब तक हम विश्वास से जकड़े हुए हैं, तब तक भीतर से उत्तर उठने का कोई कारण नहीं रह जाता।
वे ही थोड़े से लोग स्वयं के विवेक को जगा पाते हैं, जो क्रमशः बाहर के
सब भांति के उत्तरों से, बाहर के सब समाधानों से अपने चित्त को मुक्त कर लेते हैं। उस स्थिति में, गहरे और तीव्र संदेह की स्थिति में भीतर का विवेक जगता है। जैसे कोई आपके पीछे बंदूक लेकर दौड़ता हो, तो आपके दौड़ने की अंतिम शक्ति जाग जाएगी, आप अपनी पूरी शक्ति से भागेंगे।
एक बार ऐसा हुआ, जापान में एक राजा अपने एक नौकर को बहुत, बहुत प्रेम करता था। वह नौकर इस योग्य था भी। युद्धों में उस नौकर को वह अपने साथ ले गया, अपने महलों में उसे उसने अपने साथ रखा, अपनी यात्राओं में उसे साथी समझा। उसने कभी उससे नौकर जैसा व्यवहार भी नहीं किया, प्रेम किया मित्र जैसा। वह युवा नौकर सुंदर भी था, स्वस्थ भी था, बुद्धिमान भी था। उस राजा की पत्नी उस पर मोहित हो गई। राजा को यह पता चला। उसके चित्त को बहुत वेदना हुई। सीधी बात थी कि वह तलवार उठाता और नौकर की गर्दन काट कर अलग कर देता। इसमें कोई, कोई बाधा न थी। लेकिन उस नौकर को उसने बहुत प्रेम किया था और मित्र जैसा प्रेम किया था, तो उसने उसे अंतिम रूप से भी मित्र के अनुसार एक मौका देने की इच्छा प्रकट की।
उसने उस नौकर को बुलाया और कहाः मित्र, चाहूं तो मैं तुम्हारी गर्दन काट दूं। लेकिन तुम्हें मैंने इतना प्रेम किया, इसलिए एक मौका दूंगा। यह तलवार अपने हाथ में लो और एक तलवार मैं अपने हाथ में लेता हूं, और हम दोनों लड़ें, और जो मर जाए वह समाप्त हो जाए और जो शेष रह जाए, वह रानी भी उसकी हो जाए, यह राज्य भी उसका हो जाए। मित्र की हैसियत से यह मौका देना जरूरी है। उस नौकर ने कहाः यह तो बड़ी आप बात तो बहुत ऊंची कर रहे हैं, लेकिन इसमें कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि मैंने कभी तलवार उठाई नहीं। मैं, तलवार कैसे पकड़ी जाए, यह भी नहीं जानता हूं। तो नाममात्र को तो युद्ध होगा, मरूंगा मैं, झूठी बात होगी, प्रशंसा भी आपको मिलेगी और जान भी मेरी जाएगी। इससे बेहतर है आप ऐसे ही तलवार उठा कर मेरी गर्दन काट दें। इसमें कोई अर्थ ही नहीं है, मैं तो तलवार पकड़ना भी नहीं जानता, और आप... वह जो राजा था, उस समय का कुशलतम तलवारबाज था, पूरे मुल्क में उसका कोई मुकाबला नहीं था। उससे कोई मुकाबला करने की हिम्मत भी नहीं कर सकता था। उसकी कुशलता अप्रतिम थी। तो एक नौकर, जिसने कभी तलवार न उठाई हो, वह उससे कैसे जीतेगा? कैसे लड़ेगा?
लेकिन फिर भी राजा ने कहा कि मेरे अंतःकरण को यही उचित मालूम होता है
कि तुम्हें एक मौका दूं।
आज्ञा थी, उस नौकर को तलवार लेकर खड़ा होना पड़ा। राजा बहुत बार तलवार
की प्रतियोगिताओं में उतरा था और हमेशा सफल हुआ था। उसकी कल्पना में भी यह घटना नहीं थी, जो हुई। उस दिन उस नौकर को पराजित करना मुश्किल हो गया। क्योंकि नौकर को मरने का तो कोई भय ही नहीं था, मरना तो निश्चित था, बचने का कोई उपाय नहीं था, तलवार चलानी उसे आती नहीं थी। लेकिन इतनी खतरे की स्थिति में, इतने डेंजर में, उसके प्राणों की सारी शक्ति जग गई। वह साधारण सा नौकर एकदम असाधारण हो उठा। उसके हाथ में तलवार बड़ी खतरनाक सिद्ध होने लगी। वह बिल्कुल बेबूझ तलवार चला रहा था, उसे तलवारों के दांव-पेंच का कोई पता नहीं था, वह बेबूझ तलवार चला रहा था। लेकिन बचने का कोई उपाय नहीं था, इसलिए प्राणों की सारी शक्ति इकट्ठी हो गई थी। राजा पीछे हटने लगा, हर वार

राजा को पीछे धकेलने लगा। और राजा घबड़ाया, जिंदगी में ऐसा मौका कभी नहीं आया था, बड़े से बड़े कुशल तलवारबाजों से वह लड़ा था, एक अकुशल आदमी से लड़ना? लेकिन अकुशल आदमी बढ़ा जा रहा था, राजा को प्राणों की रक्षा का सवाल खड़ा हो गया और राजा चिल्लाया कि रुक जाओ! और उसने कहा कि मैं हार गया, मेरी कल्पना के बाहर थी यह बात।
उसने अपने गुरु से, वह राजा राज्य छोड़ कर चला गया, उस नौकर के हाथ में सारी संपत्ति और पत्नी को छोड़ गया। बाद में उसने एक फकीर से पूछा कि यह क्या घटना घटी? यह कैसे संभव हुआ?
उस फकीर ने कहाः यह तो होना निश्चित था। अगर तुम मुझसे पहले पूछते तो मैं तुमसे पहले ही कह देता। जब जीवन इतने खतरे में होता है, तो प्राणों की सारी की सारी संरक्षित शक्तियां संलग्न हो जाती हैं। उस समय जीतना बहुत कठिन है। तुम्हारे लिए जीवन खतरे में नहीं था, तुम सुरक्षित थे अपनी कुशलता में। उस नौकर के लिए जीवन पूरी तरह खतरे में था, उसके पूरे प्राण दांव पर थे। उसकी पूरी शक्ति जग गई हो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। और जब पूरी शक्ति जागती है, तो एक साधारण सा मनुष्य अदभुत रूप से असाधारण हो जाता है। विवेक के संबंध में भी यही सत्य है। विवेक तभी जागता है, जब संदेह पूरा खतरा उपस्थित कर दे। लेकिन जो लोग संदेह के खतरे से बचते हैं, उनका विवेक कभी नहीं जगेगा।
विश्वास में एक तरह की सिक्योरिटी है, एक तरह की सुरक्षा है। हजारों साल से मां-बाप, पीढ़ियां दर पीढ़ियां जिसे मानते रहे हैं, उसे हम भी मान लेते हैं, इसमें एक सुरक्षा है। इतने लोग गलत तो नहीं रहे होंगे। हजारों वर्ष से लाखों लोगों ने जिस बात को माना है, वे कोई भ्रांत तो नहीं रहे होंगे, वे कोई नासमझ तो नहीं रहे होंगे, तो हम सुरक्षित हैं। जब इतनी भीड़ इस बात को सच कहती है, तो हम भी उस भीड़ में खड़े हो जाते हैं। और भीड़ के प्रभाव में, भीड़ की संख्या में हम भी अपनी सुरक्षा पा लेते हैं। हम बेसहारा नहीं रह जाते, अकेले नहीं रह जाते, इतने लोग साथ हैं! इतने लोगों का साथ होना बल देता है, हिम्मत देता है, आसरा देता है, सहारा देता है। खतरा कम हो जाता है जीवन का, हम सुरक्षित हो जाते हैं। और जो सुरक्षित हो जाता है, उसके भीतर विवेक के जागरण का कोई उपाय नहीं रह जाता। विवेक-जागरण के लिए इनसिक्योरिटी चाहिए, खतरा चाहिए, चारों तरफ से ऐसी स्थिति चाहिए जो चुनौती बन जाए, तो कुछ भीतर होता है, तो ही सोई हुई चीजें जागती हैं, नहीं तो नहीं जागती हैं।
लेकिन हम तो विश्वास के घेरे में खड़े होकर सब भांति सुरक्षित हो जाते हैं। और इसीलिए हम खोज करते हैं इस बात की कि फलां किताब कितनी पुरानी है? दो हजार वर्ष पुरानी है तो कम सुरक्षा देती है, पांच हजार वर्ष पुरानी है तो ज्यादा सुरक्षा देती है; क्योंकि पांच हजार वर्ष से जिसे लोग मानते हैं, वह जरूर ही सच होगा। और अगर कोई यह भी सिद्ध कर दे कि वह किताब खुद ईश्वर की लिखी हुई है, ईश्वर-प्रणीत है, तो और सुरक्षा देती है; क्योंकि फिर तो उस पर शक होने का सवाल ही नहीं रहा, संदेह का कोई सवाल नहीं रहा। इसीलिए सारे दुनिया के धार्मिक लोग अपनी-अपनी किताब को ईश्वर के द्वारा बनाए होने का प्रमाण देने की कोशिश करते हैं। यह प्रामाणिकता अपने संदेह को समाप्त करने की कोशिश है। हम बिल्कुल निश्चिंत हो जाएं कि अब शक की कोई बात ही नहीं रही। हम खतरे के बिल्कुल बाहर हो जाएं, सुरक्षा हमें पूरी मिल जाए, सिक्योरिटी में कोई शक न रहे। इसलिए तो सारी दुनिया के धार्मिक लोग लड़ते हैं। हिंदू कहेंगेः वेद ईश्वर के द्वारा बनाया हुआ है। मुसलमान कहेंगे कि नहीं, यह कैसे हो सकता है? ईश्वर ने तो कुरान भेजी है। जैन कहेंगे कि नहीं-नहीं, ये कोई ईश्वर के बनाए हुए नहीं हैं; वह तो तीर्थंकर का प्रणीत, वह तो महावीर ने जो कहा है, वही है; वे सर्वज्ञ के वचन हैं। बौद्ध कहेंगे कि बुद्ध के जो वचन हैं, वे ही सत्य हैं, बाकी कुछ और भी सत्य नहीं है। सारी दुनिया के धार्मिक लोग इसीलिए तो लड़ते हैं।
यह लड़ाई इस बात की लड़ाई नहीं है कि इनको इस बात से प्रयोजन हो कि कौन
सी किताब ईश्वर की बनाई हुई है। इनका प्रयोजन केवल एक है कि जब सिद्ध हो जाए कि फलां किताब ईश्वर की बनाई हुई है, तो इनका चित्त निश्चिंत हो जाए।

और जो चित्त निश्चिंत हो गया, वह मर गया, उसकी खोज खत्म हो गई। उसने सहारा खोज लिया और इंक्वायरी बंद हो गई।
यह जो सारी हमारी कोशिश चलती है कि महावीर सर्वज्ञ हैं, बुद्ध सर्वज्ञ हैं, वे सब जानते हैं, और जो जानते हैं बिल्कुल ठीक जानते हैं, यह हम इतने जोर से क्यों लड़ते हैं इस बात के लिए? अगर कोई कह दे कि नहीं, महावीर की बात में फलां चीज गलत है, तो हम मरने-मारने को उतारू हो जाएंगे। कृष्ण ने फलां बात गीता में गलत कह दी, तो हम लड़ने को तैयार हो जाएंगे। क्यों? इतना हमारा आग्रह क्यों है उनके ठीक होने में?
आग्रह इसलिए नहीं है कि हमको मतलब है कि वे ठीक हों। आग्रह इसलिए है
कि अगर वे संदिग्ध हो गए तो हम तो मुश्किल में पड़ जाएंगे। वे अगर संदिग्ध हो गए तो हम संदेह में पड़ जाएंगे। फिर हमारे विश्वास का आधार कहां रह जाएगा? और फिर हमें सुरक्षा कहां रह जाएगी? फिर तो संदेह खड़ा हो जाएगा, डाउट खड़ा हो जाएगा।
इसलिए ऐसी-ऐसी बातों पर भी हम शक करने में कठिनाई में पड़ गए, जैसे बाइबिल। बाइबिल में कहा होगा कि जमीन चपटी है और जमीन सूरज के इर्द-गिर्द घूमती है। जब पहली दफा पश्चिम में वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि जमीन गोल है, तो पुरोहित और पादरी बहुत नाराज हुए। उन्होंने कहाः यह बिल्कुल ही गलत है, यह हो ही नहीं सकता। प्रमाण सब सामने थे जमीन गोल होने के, लेकिन वे कहते कि बाइबिल में लिखा है कि जमीन चपटी है, यह गोल हो नहीं सकती। वैज्ञानिक के प्रमाण को वे इनकार करते रहे। उन्होंने गैलीलियो को पकड़वा कर कहा कि हम गर्दन कटवा देंगे, कहो कि जमीन चपटी है!
गैलीलियो ने कहा कि बड़ी मुसीबत है। तुम्हें इतनी क्या फिकर है जमीन चपटी होने की? तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है?
नहीं; प्रयोजन था। अगर ईसा का एक वचन भी गलत होता है, तो बाकी वचन भी संदिग्ध हो जाएंगे। खतरा यही था। क्योंकि जमीन गोल है कि चपटी, किसी को क्या लेना-देना इस बात से! नहीं; खतरा यह था, अगर ईसा का यह वचन भी गलत है, तो दूसरे वचन संदिग्ध हो जाएंगे। शक हो जाएगा कि अगर एक आदमी एक बात गलत बोल सकता है, तो दूसरी बातें भी गलत बोल सकता है। तो डाउटफुल हो जाएगी स्थिति। और इससे भी कोई प्रयोजन नहीं कि ईसा गलत हों कि सही हों, प्रयोजन तो इसका है कि फिर हमारे लिए संदेह खड़ा हो जाएगा और हमारा विश्वास डगमगा जाएगा।
तो ऐसी-ऐसी मूढ़ताओं पर भी विश्वास जारी रहा है जिनकी आप कल्पना नहीं
कर सकते। यूनान में अरस्तू के वक्त तक समझा जाता था कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। होने ही चाहिए, स्त्रियां कहीं पुरुषों के बराबर हो सकती हैं! यह हो ही नहीं सकता। वे तो हीन हैं, पुरुष से हीन हैं, इसलिए उनके दांत कम होने चाहिए। अरस्तू जैसा समझदार, विचारशील व्यक्ति, उसने भी अपनी किताब में लिखा कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। बड़ी हैरानी की बात है! उसकी खुद की दो औरतें थीं, एक भी नहीं। वह कभी भी बैठा कर गिनती करवा सकता था। लेकिन उसने किया नहीं। क्योंकि पुराना धर्म यह कहता था यूनान का कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं।
अरस्तू के मरने के एक हजार साल बाद तक भी यूनान में यही माना जाता रहा
कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। ऐसे स्त्रियां काफी हैं, बहुतायत से हैं, और अक्सर तो पुरुषों से थोड़ी ज्यादा हैं, कम नहीं हैं। और यूनान में तो बहुत थीं। क्योंकि जिन मुल्कों में लड़ाई चलती है, दंगे-फसाद होते हैं, वहां पुरुष कम हो जाते हैं, स्त्रियां ज्यादा हो जाती हैं। यूनान में तो संख्या कई दफा स्त्रियों की दुगुनी तक हो गई थी पुरुषों से। क्योंकि आए दिन तलवारबाजी थी। तो उस बेवकूफी में पुरुष मर जाते हैं, स्त्रियां बच जाती हैं। लेकिन किसी को यह नहीं सूझा कि जाकर वह स्त्रियों के दांत गिन ले। कोई ख्याल ही नहीं आया। संदेह पैदा नहीं हुआ न।
ऐसी हजारों तरह की मूढ़ताएं हजारों वर्ष तक चलती हैं। और हम क्यों डरते हैं उनको उघाड़ने में? उनको खोलने में? डर इसलिए पैदा होता है कि अगर पूर्वजों की एक बात गलत हो जाए, तो पूर्वजों की दूसरी बातें भी गड़बड़ हो

जाने का भय पैदा हो जाता है। और उस भय में फिर हमारे भीतर संदेह खड़ा होगा और हमको खोज करनी पड़ेगी, हम मुश्किल में पड़ जाएंगे।
लेकिन मैं आपसे कहूंः जिसका चित्त संदेह से नहीं भरता और जो संदेह की पीड़ा में नहीं पड़ता और जो संदेह की अग्नि में नहीं झुलसता, उसके भीतर विवेक कभी जाग्रत नहीं होता है। विवेक तो जाग्रत तब होता है, जब संदेह पीड़ा देने लगता है, कष्ट देने लगता है, संताप देने लगता है, एंग्.जायटी पैदा करने लगता है। जब संदेह चारों तरफ से प्राणों को छेदने लगता है और जब कोई उपाय नहीं रह जाता विश्वास करने का--कि ये वेद ईश्वर के बनाए हुए हैं, कि यह कुरान परमात्मा की भेजी हुई है, कि यह बाइबिल खुद ईश्वर के पुत्र की बनाई हुई है--जब इस पर कहीं कोई आसरा नहीं रह जाता और सब तरफ चित्त में संदेह खड़ा हो जाता है, सब जगह प्रश्नवाचक चिह्न खड़े हो जाते हैं, कहीं कोई सुरक्षा नहीं मालूम होती है, तो फिर प्राणों की जो बहुत रिजर्व फोर्स है, वह जो बहुत संरक्षित और केवल खतरे के लिए जरूरी है, वह शक्ति जागनी शुरू होती है और भीतर विवेक पैदा होता है।
विवेक के अतिरिक्त ईश्वर-प्रणीत कुछ भी नहीं है। बाकी सब शास्त्र मनुष्य के बनाए हुए हैं। और बाकी सब शास्त्र में वैसी ही कमियां और भूलें हैं जैसी मनुष्य में होनी स्वाभाविक हैं। एक भर शक्ति मनुष्य की बनाई हुई नहीं है। वह है विवेक। वह है प्राणों में सोई हुई विवेक की, जानने की, ज्ञान की क्षमता। वह मनुष्य की बनाई हुई नहीं है। वह ज्ञान की क्षमता मात्र तो परमात्मा की हो सकती है, बाकी कुछ परमात्मा का नहीं हो सकता। बाकी सब मनुष्य का निर्माण है, सोच-विचार, खोज-बीन है। और इसीलिए तो मनुष्य के सोच-विचार और खोज-बीन में बहुत विरोध और बहुत झगड़ा है।
यह जो भीतर सोई हुई प्राणों की विवेक-शक्ति है, इसे जागने के लिए पहला सूत्र हैः सम्यक रूप से संदेह। सम्यक रूप से संदेह मैं क्यों कह रहा हूं? अकेला संदेह भी कह सकता हूं। लेकिन मैं कह रहा हूंः राइट डाउट। मैं कह रहा हूंः सम्यक रूप से संदेह। यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि कहीं संदेह अविश्वास न बन जाए।
संदेह और अविश्वास में भेद है। बुनियादी भेद है। विश्वास के विरोध में होता है अविश्वास। संदेह विश्वास का विरोधी नहीं है। संदेह अविश्वास और विश्वास दोनों का विरोधी है। तीसरी बात है संदेह। अगर हम एक टरएंगल खींचें, एक त्रिभुज बनाएं, तो दो भुजाओं पर होंगे विश्वास और अविश्वास, तीसरे कोण पर होगा संदेह। संदेह बड़ी अलग बात है। संदेह अत्यंत वैज्ञानिक चित्त की प्राथमिक अवस्था है। अविश्वास नहीं। अविश्वास विश्वास का ही रूपांतरण है। अविश्वास विश्वास की ही प्रतिक्रिया, रिएक्शन है।
एक कोई मानता है, ईश्वर है; कोई मानता है, नहीं है। कोई मानता है, आत्मा है; कोई मानता है, नहीं है। कोई कहता है कि मोक्ष है; कोई कहता है, नहीं है। कोई कहता है, मृत्यु के बाद फिर जन्म है, फिर मृत्यु है; कोई कहता है, नहीं है। ये दोनों ही स्थितियां एक ही तरह की हैं, इनमें शुद्ध संदेह नहीं है। शुद्ध संदेह का अर्थ यह है कि न मैं विश्वास में पडूं और न अविश्वास में, मैं अपने चित्त को मुक्त रखूं। खोजूं, पूछूं, चेष्टा करूं जानने की और जब तक मेरे विवेक के समक्ष कोई चीज सत्य की भांति स्पष्ट न हो जाए, तब तक उसे न तो मानूं और न न मानूं, दोनों से अपने को मुक्त रखूं। संदेह का अर्थ हैः अविश्वास और विश्वास से मुक्ति। संदेह पहली स्थिति है। संदेह के बिना विवेक नहीं जगेगा।
दूसरा तत्व है विवेक के जागरण मेंः आत्म-निरीक्षण। संदेह की भूमि हो, आत्म-निरीक्षण की खाद देनी पड़े।
आत्म-निरीक्षण का क्या अर्थ है?
हम सारे लोग दूसरों का तो बहुत निरीक्षण करते हैं, स्वयं का निरीक्षण कभी कोई मुश्किल से करता होगा। हम प्रशंसा भी करते हैं और निंदा भी करते हैं, लेकिन प्रशंसा भी दूसरों की होती है और निंदा भी दूसरों की। आत्म-निरीक्षण हम करते नहीं, हमारा चित्त निरंतर दूसरों के संबंध में सोचने में संलग्न होता है। स्वयं के संबंध में विचार, स्वयं के संबंध में ऑब्जर्वेशन, निरीक्षण, स्वयं के बाबत भी तटस्थ खड़े होकर सोचने की वृत्ति,

मुश्किल से होती है। और जिसमें नहीं है ऐसी वृत्ति, वह करीब-करीब जिन बातों को दूसरों में निंदा करता है, करीब-करीब उन्हीं बातों को स्वयं में जीता है। जिन बातों के लिए दूसरों को कोसता है, कंडेमनेशन करता है, उन्हीं बातों को स्वयं में पालता है और पोसता है। और उसे पता भी नहीं चलता कि यह क्या हो रहा है। पता इसलिए नहीं चलता कि वह कभी खुद की तरफ लौट कर नहीं देखता। देखता रहता है दूसरों की तरफ, खुद की तरफ लौट कर नहीं देखता। और जो व्यक्ति खुद की तरफ लौट कर नहीं देखता, उसका विवेक कैसे जगेगा?
विवेक दूसरों की तरफ देखने से नहीं जगता। क्योंकि पहली तो बात यह है
कि जो व्यक्ति अभी खुद को ही देखने में समर्थ नहीं है, वह दूसरों को देखने में कैसे समर्थ हो सकेगा? जो व्यक्ति अभी अपने ही संबंध में निर्णय नहीं ले सकता, वह दूसरे के संबंध में निर्णय कैसे ले सकेगा? खुद के भीतर के प्राणों से भी जो परिचित नहीं हो सका है, वह दूसरे के बाहर से देख कर उसके भीतर से कैसे परिचित हो सकेगा?
दूसरे के बाहर जो दिखाई पड़ रहा है, वह दूसरे का अंतस्तल नहीं है। क्योंकि खुद हम अपने बाबत समझ लें, अपने बाबत हम अपने बाहर जो दिखला रहे हैं, वह क्या हमारा अंतःकरण है? वह क्या हमारा अंतस्तल है? जिससे हम कह रहे हैं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, जिससे हम कह रहे हैं कि मैं तुम्हारा आदर करता हूं, क्या सच में हमारे भीतर भी वही भाव है? वही आदर और प्रेम है? या कि हम धोखा दे रहे हैं? या कि हम चारों तरफ एक पाखंड का व्यक्तित्व खड़ा कर रहे हैं? एक अभिनय कर रहे हैं?
हमारे बाहर तो जो है, वह झूठा है, भीतर कुछ सच्चा है। लेकिन दूसरे के बाहर को हम सच्चा मान कर विचार करने लगते हैं और दूसरे के भीतर को तो हम देख नहीं सकते, झांक नहीं सकते। इसलिए दूसरे को जानने के पहले खुद को जानना बहुत जरूरी है। और बड़े मजे की बात है, दूसरे के संबंध में जानने की हमारी इतनी उत्सुकता क्यों है? दूसरों के दीवालों के छेद में से हम झांकने की कोशिश क्यों करते हैं? दूसरों के वस्त्र उठा कर देखने का हमारा प्रयोजन क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि अपने को देखने से बचने के लिए हम ये सब उपाय करते हों?
ऐसा ही है। अपने को देखने से बचना चाहते हैं, इसलिए दूसरों को उघाड़ते हैं और देखते हैं। और अपने को देखने से क्यों बचना चाहते हैं? बहुत पीड़ा होगी अपने को देखने से। इसलिए अपने को तो कभी नहीं देखते, अपने बाबत तो एक भ्रम खड़ा कर लेते हैं कि हम ऐसे हैं। और दूसरे को देखते हैं। और दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं निरंतर अपने चित्त में, अपनी वाणी में, अपने विचार में। क्यों? ताकि इस भांति हम खुद ऊंचे हो सकें। जब हम सारी दुनिया को नीचा देखने लगते हैं, तो अनजाने खुद ऊंचे हो जाते हैं। जो आदमी सब लोगों की बुराई देखने लगता है, वह एक बात में निश्चिंत हो जाता है कि वह खुद बुरा नहीं है।
बर्टेंड रसेल ने कभी एक दफा कहा कि अगर किसी घर में चोरी हो जाए, और सबसे पहले जो जोर-जोर से चिल्लाने लगे कि चोरी बहुत बुरी चीज है, पक्का समझ लेना कि उसके भीतर गहरा चोर है।
यह तो सच है बात। अगर यहां चोरी हो जाए तो जो आदमी चोरी की सबसे ज्यादा निंदा करने लगे, और जो चोरों को गाली देने लगे और बहुत शोरगुल मचाने लगे और दौड़-धूप करने लगे चोर को पकड़ने की, पक्का समझना कि वह आदमी चोर है। क्योंकि इस भांति वह अपने चारों तरफ एक हवा पैदा करता है कि आप एक भ्रम में आ जाएं, एक बात तो पक्की समझ लें कि इसने चोरी नहीं की है। जो चोरी की इतनी निंदा कर रहा है वह चोरी कैसे करेगा? जो चोरी के इतने विरोध में है वह चोर नहीं हो सकता।
हम जो भीतर होते हैं, उससे बिल्कुल उलटा वातावरण चारों तरफ खड़ा करने
की कोशिश करते हैं। यह स्थिति खुद के संबंध में अत्यंत आत्मवंचक हो जाती है। जिसे विवेक को जगाना हो, वह आत्मवंचना नहीं कर सकता, वह अपने से धोखा नहीं कर सकता। वह इसके पहले कि दूसरों के द्वार पर झांके, अपने द्वार की खोज करेगा।

मैंने सुना है, एक सुबह एक मनोचिकित्सक के द्वार पर एक आदमी भागा हुआ पहुंचा। उस आदमी की उम्र कोई पचास वर्ष होगी। उसने जाकर अंदर बहुत घबड़ाहट में कहा कि ऐसा मालूम होता है कि मेरे पिता का दिमाग खराब हो गया। मनोचिकित्सक ने कहाः क्या? कैसे तुम्हें पता चला?
उसने कहाः उनकी उम्र अस्सी वर्ष हो गई, वे दिन भर टब में बैठे रहते हैं, पानी में बैठे रहते हैं घंटों और गुड्डे-गुड्डियों से खेलते रहते हैं। अस्सी वर्ष की उम्र में क्या यह पागलपन का लक्षण नहीं है कि कोई आदमी बाथरूम में बैठा रहे, टब में बैठा रहे, गुड्डे-गुड्डियों से खेलता रहे? यह तो निश्चित ही पागलपन का लक्षण है।
उस मनोचिकित्सक ने कहा कि फिर भी यह कोई बहुत खतरनाक पागलपन नहीं है। इससे नुकसान क्या है? उनका दिल बहलता होगा, अस्सी वर्ष के आदमी को दिल बहलाने दो! तुम्हारा कोई हर्जा तो करते नहीं, किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचाते, कोई तोड़-फोड़ नहीं करते, किसी को वे मार-पीट नहीं करते, चुपचाप बाथरूम में बैठे रहते हैं, गुड्डियों से खेलते रहते हैं, खेलने दो!
वह बोलाः आप कहते हैं हर्जा नहीं है! उस आदमी की आंखों में आंसू आ गए
और उसने कहाः गुड्डियां मेरी हैं और उनकी वजह से मैं बिल्कुल भी नहीं बैठ पाता हूं टब में! वे सब गुड्डे-गुड्डी मेरे हैं और सब खराब किए दे रहे हैं बिल्कुल। जरूर उनका दिमाग खराब हो गया है।
इस आदमी को यह तो दिखाई पड़ा कि उनके पिता का दिमाग खराब हो गया है, लेकिन यह दिखाई नहीं पड़ा कि ये गुड्डे-गुड्डी मेरी हैं, तो मेरा दिमाग भी कोई बहुत अच्छा नहीं हो सकता। इसे यह तो बहुत जल्दी दिखाई पड़ गया कि कौन पागल है।
दुनिया में दूसरों का पागलपन देख लेना बहुत आसान है। और केवल वही आदमी पागल नहीं है जो अपना पागलपन देखने में समर्थ हो जाता है। इसे मैं फिर दोहराता हूंः केवल वही आदमी पागल नहीं है जो अपना पागलपन देखने में समर्थ हो जाता है। बाकी शेष सारे लोग पागल हैं जो दूसरों का पागलपन देखने में बड़े कुशल हैं।
गैर-पागल आदमी की, स्वस्थ आदमी की पहली पहचान यह है कि वह सबसे पहले अपने पागलपनों को पहचानता है, अपनी भूलों को पहचानता है, अपने जीवन के दोषों को देखता-पहचानता है। जो आदमी अपनी भूलों, अपने दोषों, अपनी विक्षिप्तताओं को पहचानने में समर्थ हो जाता है, उसने पहला कदम उठा लिया मुक्ति की ओर। वह उनसे कल मुक्त भी हो सकेगा।
आत्म-निरीक्षण जितना गहरा होता है, उतना ही भीतर चेतना विकसित होने लगती है। क्यों? क्योंकि आत्म-निरीक्षण अत्यंत दुरूह, अत्यंत आरडुअस बात है, बहुत तप की बात है, तपश्चर्या की बात है। खुद की भूलों को देखना बड़ी तपश्चर्या है। क्योंकि खुद की भूलों को देखने के लिए स्वयं से ही थोड़े दूर खड़े होने की साधना करनी होती है। स्वयं से थोड़ी दूर खड़े होने की साधना करनी पड़ती है। तभी तो हम देख सकते हैं, ऑब्जर्व कर सकते हैं, निरीक्षण कर सकते हैं। खुद से अपने को थोड़ा दूर करके देखने की जरूरत है। जैसे हम दूसरे लोगों को देखते हैं, ठीक उसी भांति खुद को भी देखने की जरूरत है। जब कोई व्यक्ति अपने भीतर स्वयं को इस भांति दूर से खड़े होकर देखने लगता है, तो वह जो देखने वाली शक्ति है, उसके निरंतर अयास से वह विकसित होती है, उसी का नाम विवेक है। वह जो साक्षी होने की शक्ति है, वह जो विटनेस होने की शक्ति है, वह जो ऑब्जर्वेशन की शक्ति है, निरीक्षण की शक्ति है, वही तो विवेक है। जब कोई अपने से दूर खड़े होकर देखने लगता है कि कहां-कहां मुझमें पागलपन, कहां-कहां मुझमें दोष, कहां-कहां मेरा जीवन भ्रांतियों से भरा, कहां-कहां मेरे जीवन में पाखंड, कहां-कहां मेरे जीवन में असत्य, कहां-कहां मेरे जीवन में हिंसा, कहां-कहां मेरे चित्त में अहंकार, जब कोई निरंतर इनके प्रति जागता है, देखता है, समझता है, तो उसके भीतर विवेक जगना शुरू होता है। इसी क्रम में उसके भीतर विवेक की शक्ति जागने लगती है। और बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि जैसे-जैसे विवेक जागता है, वैसे-वैसे उसके दोष अपने आप क्षीण होने लगते हैं। क्योंकि जहां विवेक का प्रकाश है, वहां

दोषों का अंधकार बहुत दिन नहीं टिक सकता है, वह हट जाएगा, वह टूट जाएगा, वह मिट जाएगा।
गुरजिएफ एक फकीर हुआ यूनान में। उसने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मेरा पिता मृत्यु-शय्या पर था। उसने मुझे अपने पास बुलाया, तब चौदह वर्ष की मेरी उम्र थी, मुझसे कान में उसने कहा कि अगर मैं कोई सलाह दूं तो तुम बुरा तो नहीं मानोगे?
बहुत समझदार आदमी रहा होगा वह। क्योंकि सलाह देने वाले यह कभी पूछते
ही नहीं कि बुरा मानोगे कि नहीं मानोगे? सलाह देने वाले मुफ्त सलाह बांटते हैं। और दुनिया में जो चीज सबसे ज्यादा दी जाती है और सबसे कम ली जाती है, वह सलाह ही है। उस बूढ़े आदमी ने, जिसकी नब्बे वर्ष उम्र थी, चौदह वर्ष के बच्चे से पूछा कि क्या मैं तुम्हें सलाह दूं तो तुम बुरा तो नहीं मानोगे? और अगर मैं तुम्हें सलाह दूं तो कभी तुम जीवन में मेरे प्रति रुष्ट तो नहीं रहोगे?
उस युवक ने कहा कि आप कैसी बात करते हैं? आप कहें, आपको मुझे क्या कहना है!
उस बूढ़े आदमी ने कहाः मेरे पास न तो संपत्ति है तुम्हें देने को, न मेरे पास और किसी तरह की यश और प्रतिष्ठा है। लेकिन जीवन भर अनुभव से मैंने एक बात पहचानी और जानी, वह मैं तुम्हें देना चाहता हूं। और वह यह है कि तुम खुद को खुद से जरा दूर रख कर देखना सीखना। अगर रास्ते पर तुम्हें कोई मिल जाए और तुम्हें गाली दे, तो जल्दी से उसकी गाली का उत्तर मत देना; घर लौट आना, दूर खड़े होकर देखना कि उसने जो गाली दी वह कहीं ठीक ही तो नहीं है? अगर वह ठीक हो, तो उसको जाकर धन्यवाद दे आना कि तुमने मुझ पर बड़ी कृपा की और एक बात मुझे बताई जिसका मुझे पता नहीं था। अगर वह ठीक न हो, तो उसकी चिंता छोड़ देना। क्योंकि जो बात ठीक नहीं है उससे तुम्हें प्रयोजन ही क्या?
गुरजिएफ ने लिखा हैः फिर मैंने जीवन भर--उसी रात पिता उसका मर गया--इस बात की फिकर की। और उसने लिखा है कि मेरे जीवन में फिर लड़ने का कोई मौका नहीं आया। गालियां तो मुझे लोगों ने बहुत बार दीं, लेकिन पहले मैंने उनसे कहा कि मित्र रुको, मैं जरा घर जाऊं, सोच-समझ कर आऊं, और फिर मैं आकर तुम्हें बताऊं। जब मैं घर गया और मैंने सोचा-समझा, तो मैंने पाया, कोई गाली इतनी बुरी नहीं हो सकती जितना बुरा मैं हूं। मैंने जाकर धन्यवाद दिया और कहा कि मित्र, बहुत-बहुत धन्यवाद, और सदा स्मरण रखना, और जब भी जरूरत पड़े और तुम्हारे मन में कोई गाली आ जाए, तो छिपाना मत, मुझे दे देना।
जैसे-जैसे व्यक्ति का आत्म-निरीक्षण गहरा होगा, वह कुछ और ही दिशा में अपने विवेक को जगता हुआ पाएगा।
लेकिन आत्म-निरीक्षण है बिल्कुल सोया हुआ हमारा। हम कभी देखते नहीं--
हम क्या कर रहे हैं? क्या हो रहे हैं? क्या चल रहा है? अगर कोई हमको बताए भी, तो हम लड़ने को खड़े हो जाते हैं। स्मरण रखना, अगर किसी गाली पर आप लड़ने को खड़े हो गए, तो पक्का समझ लेना कि आप उस गाली के योग्य थे, नहीं तो आप लड़ने को तैयार नहीं होते। आप लड़ने को तैयार नहीं होते। आपको यह फिकर पड़ गई फौरन कि मैं सिद्ध कर दूं कि यह गाली गलत है, इसीलिए कि आप बहुत भीतर जानते हैं कि यह गाली सही है और अगर मैंने सिद्ध न किया कि गलत है तो दुनिया को पता चल जाएगा।
तो जब भी आप यह सिद्ध करने की कोशिश में लगें कि फलां दोष मुझमें नहीं
है, तो बहुत शांति से समझ लेना, वह दोष जरूर आपमें होगा। नहीं तो आप उसे गलत सिद्ध करने की फिकर न करते। कोई फिकर आपमें पैदा न होती।
भिक्षु भीखण राजस्थान के एक गांव में थे। वहां कोई चार माह रुके, चतुर्मास होगा। रोज ही आसोजी नाम का एक आदमी उनको सुनने आता था। लेकिन रोज ही दिन भर की दुकान के बाद लौटता था, सांझ को उनको सुनता था, तो सो जाता था। बहुत कम लोग हैं जो सुनते वक्त जागते रहते हों, बहुत कठिन है। आंख खुली रखना एक बात है, जागना बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन वह आदमी आंखें भी बंद कर लेता था, सीधा-सादा आदमी होगा। आंखें खुली रख कर धोखा नहीं देता था कि हम सुन ही रहे हैं। बहुत दिन भीखण ने देखा कि यह तो सोता है निरंतर, सामने

ही बैठता था और। गांव का सबसे बड़ा धनपति था, इसलिए पीछे तो बैठ ही नहीं सकता था। सबसे ज्यादा धन उसी के पास था, इसलिए बैठता आगे ही था। पीछे तो कौन बैठता! आगे ही बैठता था और सामने ही सोता था। और भी साधु आए थे गांव में। लेकिन धनपति सोता है, यह साधु कैसे कहे? इसलिए साधु बरदाश्त करते थे। ये भीखण कुछ गड़बड़ रहे होंगे। इन्होंने टोका। और भी साधु आते थे, उनको भी सुनने जाता था; क्योंकि जो साधुओं को सुनने जाते हैं, वे किसी भी साधु को सुनने जाते हैं।
वह वैसे ही है, जैसे जो फिल्म देखने जाते हैं, वे किसी भी फिल्म को देखने जाते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे कोई बहुत भेद नहीं करते, वहां तीन घंटा गुजरता है, वापस लौट आते हैं। मैं तो अपने गांव में एक ऐसे आदमी को भी जानता था--क्योंकि मेरा गांव बहुत छोटा, उसमें मुश्किल से एक ही नाम कहे जाने को टाकीज--वे एक ही फिल्म को रोज देखते थे, उसी फिल्म को। वहां उनका तीन घंटा गुजर जाता था। ऐसे ही लोग मंदिरों में जाते हैं, ऐसे ही लोग मस्जिदों में जाते हैं। पुराने जमानों में मंदिरों-मस्जिदों में जाते थे, वही अब सिनेमाओं में जाने लगे हैं, उनमें कोई बहुत फर्क नहीं है।
वह भी बेचारा उनके सामने बैठा-बैठा सोता था। ऐसे फिल्म में सो जाओ तो कोई टोकने वाला नहीं होता। न तो मैनेजर आकर कहता है कि क्यों सो रहे हो? लेकिन ये साधु थोड़े गड़बड़ होते हैं, ये टोक देते हैं। भीखण ने उसको कहाः आसोजी सोते हो?
तो उसने जल्दी से आंख खोली, उसने कहा कि नहीं! कौन मानता है कि मैं सोता हूं?
फिर थोड़ी देर बात चली, फिर वह सो गया। क्योंकि सोने वाला आदमी जबरदस्ती कितनी देर जगा रहेगा! फिर भीखण ने बीच में कहाः आसोजी, सो गए? उसने आंख खोली, उसने कहा कि नहीं! आप यह क्या बार-बार बीच-बीच में लगाते हैं कि सो गए?
उसे गुस्सा आना स्वाभाविक था। क्योंकि कोई आदमी सोता हो और कोई उसको बार-बार बताए कि आप सो गए, तो गुस्सा आना बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन फिर थोड़ी देर में सो गया, फिर भीखण ने कहा--लेकिन अब की बार दूसरी बात कही--भीखण ने कहाः आसोजी, जीते हो?
आसोजी तो नींद में थे, उन्होंने समझा कि अब ये फिर पूछ रहे हैं, आसोजी सोते हो। उसने कहा कि नहीं, कौन कहता है?
भीखण ने कहाः अब तो पकड़ गए कि निश्चित सोते थे। क्योंकि मैंने पूछा, आसोजी जीते हो? और तुम कहते हो, कौन कहता है, बिल्कुल नहीं!
हम मानने को राजी नहीं होते। दूसरा बताए तब तो बहुत कठिन हो जाता है मानना। लेकिन जो आत्म-निरीक्षण करेगा, जो निरंतर अपने पर विचार करेगा, वह अनुगृहीत होगा; उसका जो बता दे कि तुम सोए हो, वह धन्यवाद करेगा उसका कि जरूर मैं सोया था, और तुम्हारी कृपा कि तुमने जगाया। अन्यथा कौन किसको जगाता है? किसको क्या प्रयोजन है? और न केवल वह दूसरों के द्वारा दोष दिए जाने पर, दिखाए जाने पर उनको पहचानेगा, बल्कि खुद निरंतर उनकी खोज करेगा, खुद निरंतर खोजेगा।
स्मरण रखिए, जो दोष हम छिपा लेते हैं, वह दोष धीरे-धीरे भीतर बड़ा होने लगता है। जैसे बीज को हम जमीन में दबा देते हैं, तो फिर बड़ा होता है, अंकुर आते हैं और पौधा निकलता है। और एक बीज से पौधा निकल कर फिर वह पौधा हजारों बीजों को पैदा कर देता है। ऐसे ही चित्त की भूमि में जिन दोषों को हम छिपा लेते हैं, वे बीज की तरह भीतर बढ़ने लगते हैं, बड़े होने लगते हैं, फिर उनमें अंकुर निकलने लगते हैं। और हम उनकी रक्षा करते हैं। अगर कोई बताए कि देखो, तुम्हारे भीतर फलां-फलां बीज अंकुरित हो रहा है! हम कहते हैंः क्या झूठ बात कह रहे हो? हम उसकी रक्षा करते हैं, बागुड़ लगाते हैं, व्यवस्था करते हैं, सब तरफ से दीवालें उठाते हैं, सुरक्षा करते हैं। फिर वह बड़ा होता है, एक बीज के हजार बीज हो जाते हैं।
जीवन से जिस चीज को नष्ट करना हो, उसे छिपाना सबसे खतरनाक बात है। उसे खोल देना सरलता से, सहजता से। उसे अपने सामने तो खोल ही लेना जरूरी है।

आत्म-निरीक्षण का अर्थ हैः जैसा मैं हूं, वैसा ही स्वयं को जानने की सतत चेष्टा।
आत्म-मूर्च्छा का अर्थ हैः जैसा मैं नहीं हूं, वैसा स्वयं को बताने की चेष्टा।
आत्म-निरीक्षण का अर्थ हैः जैसा मैं हूं, वैसा ही स्वयं को जानने की सतत चेष्टा।
हममें से कोई भी अपने आपको वैसा ही जानना नहीं चाहता है। हम कुछ और भांति अपने को दिखाना चाहते हैं, और भांति बताना चाहते हैं जैसे हम नहीं हैं। और हमारी संस्कृति और सयता ने इस धोखे के लिए खूब पोषण दिया है, बहुत पोषण दिया है।
लंदन में एक फोटोग्राफर ने अपनी दुकान पर एक तख्ती लगा रखी थी और लिख रखा था उसमें कि यहां तीन तरह के चित्र उतारे जाते हैं। एक तो जैसे आप हैं, लेकिन उसके पांच ही रुपये लगते हैं। दूसरे, जैसे आप सोचते हैं कि आप हैं, उसके दस रुपये लगते हैं। तीसरा, जैसा आप सोचते हैं कि भगवान को आपको बनाना चाहिए था, उसके पंद्रह रुपये लगते हैं।
एक गांव का आदमी पहली दफा पहुंचा, वह भी फोटो उतरवाना चाहता था। और गांव के आदमियों के सिवाय, गंवारों के सिवाय कोई फोटो उतरवाना चाहता है? वह भी उतरवाना चाहता था। वह गया, उस फोटोग्राफर की दुकान पर गया। उसने जाकर देखा कि वहां तीन तरह के फोटो उतरते हैं। वह बहुत हैरान हुआ! उसने कहाः हम तो सोचते थे फोटो एक ही तरह का होता है, क्योंकि हम तो एक ही तरह के हैं। तीन तरह के फोटो कैसे हो सकते हैं? उस गांव के सीधे-सादे आदमी ने उस फोटोग्राफर से पूछा कि मित्र, क्या पहले फोटो के अलावा दूसरे फोटो उतरवाने वाले भी यहां आते हैं?

उसने कहाः तुम पहले आदमी हो जो पहली फोटो को उतरवाने का विचार कर रहा है। अब तक तो यहां जो भी आता है, वह दूसरा उतरवाता है या तीसरा। दूसरा मजबूरी में उतरवाता है, पैसे कम हों तो। ऐसे तो तीसरा ही उतरवाता है। पहला फोटो तो कोई कहता ही नहीं कि उतारो, कि जैसा मैं हूं वैसा ही उतार दो, ऐसा तो कोई उतरवाना ही नहीं चाहता। और अगर कभी किसी का भूल-चूक से उतर जाए, तो वह नाराज होता है कि यह तो बिल्कुल मेरे जैसा नहीं मालूम होता, यह फोटो तो बिल्कुल गड़बड़ है। यह क्या आप बताए, यह फोटो तो मेरे जैसा है ही नहीं बिल्कुल। तो उसने कहा कि अगर कोई उतरवाना भी चाहता है तो भी हम पांच रुपये में ही दूसरा वाला फोटो उतार देते हैं। तभी वह खुश होता है।
तो उस आदमी ने कहाः लेकिन मैं तो अपना ही फोटो उतरवाने आया हूं, किसी
और का नहीं; मुझे तो वही फोटो चाहिए जैसा मैं हूं, बुरा या भला, जैसा मैं हूं वही मेरा चित्र है।
आत्म-निरीक्षण का अर्थ हैः पहले तरह के चित्र को उतरवाने की सतत चेष्टा। हम जैसे हैं, वैसा हमको स्वयं को जानना चाहिए। क्यों? इसलिए कि जीवन, जीवन के विज्ञान का यह अत्यंत रहस्यमय सूत्र है कि जो व्यक्ति जैसा है अगर वैसा ही अपने को जानने लगे, तो उसके वैसे हो जाने में बहुत देर नहीं रह जाती जैसा वह होना चाहता है। नहीं रह जाती देर, क्योंकि जब हमें दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं, तो हम उनसे मुक्त होने लगते हैं। और जब बीमारियां हमारी आंखों में आती हैं, तो हम स्वस्थ होने की चेष्टा करने लगते हैं। और जब अंधकार-खंड हमें अपने चित्त में मालूम होने लगते हैं, तो हम वहां दीये जलाने लगते हैं।
लेकिन कोई भी क्रांति के लिए और कोई भी विवेक जागरण के लिए अत्यंत अनिवार्य और जरूरी है कि मैं जैसा हूं वैसा अपने को जानने में लग जाऊं। इसलिए मैंने कहाः आत्म-निरीक्षण। आत्म-निरीक्षण दूसरा सूत्र है, तो ही विवेक जगेगा, नहीं तो नहीं जगेगा।
और तीसरा सूत्र हैः मूर्च्छा-परित्याग।
बहुत कुछ हम छोड़ते हैं जिंदगी में। लोग कहते हैं, त्याग करें--धन छोड़ें; कोई कहता है, लोभ छोड़ें; कोई कहता है, क्रोध छोड़ें। मैं कहता हूंः

छोड़ ही नहीं सकेंगे, कितना ही छोड़ें। धन छोड़ दें कितना ही, छोड़ ही नहीं सकेंगे।
एक संन्यासी के पास मैं था, वे मुझसे कहे कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मारी है।
मैंने उनसे पूछाः यह लात कब मारी?
उन्होंने कहाः कोई बीस साल हुए।
मैंने कहाः लात ठीक से लग नहीं पाई। नहीं तो बीस साल तक स्मृति कैसे बनी रहती? लात थोड़ी दूर पड़ी, धन वहीं का वहीं रखा हुआ है।
जब उन पर लाखों रुपये थे, तो वे अकड़ कर चलते रहे होंगे कि मेरे पास लाखों रुपये हैं। अब भी अकड़ कर चल रहे हैं कि मैंने लाखों पर लात मार दी! वह रुपये से जो भ्रम पैदा होता था, वह मौजूद है। कोई रुपया नहीं छोड़ सकता। मूर्च्छित चित्त धन छोड़ देगा तो धन के छोड़ने को पकड़ लेगा; भोग छोड़ देगा तो त्याग को पकड़ लेगा; गृहस्थी छोड़ देगा तो संन्यास को पकड़ लेगा; लेकिन पकड़ जारी रहेगी। क्योंकि मूर्च्छित चित्त मूर्च्छित है, उसके छोड़ने से कोई फर्क नहीं पड़ता। मूर्च्छित चित्त लोभ नहीं छोड़ सकता।
एक गांव मैं गया, एक संन्यासी वहां बोलते थे। उन्होंने लोगों को समझाया कि जब तक तुम लोभ न छोड़ोगे, तब तक तुमको मोक्ष नहीं मिल सकता। मैंने उनसे पूछा कि अगर इन्होंने इस आशा से लोभ छोड़ भी दिया कि मोक्ष पाना है, तो यह लोभ का विस्तार हुआ या लोभ का अंत हुआ? इस आशा से लोभ छोड़ देना कि लोभ छोड़ने से मोक्ष मिल जाएगा, यह तो लोभ का विस्तार हुआ, यह लोभ का छोड़ना नहीं हुआ। मोक्ष पाने को, ईश्वर पाने को या स्वर्ग पाने को अगर कोई लोभ छोड़ता है, तो यह तो लोभ का विस्तार है। यह तो लोभ के लिए ही लोभ छोड़ता है, इससे लोभ मिटता नहीं है।
हमारा चित्त जो है वह अगर मूर्च्छित है, तो कुछ भी नहीं छोड़ सकता। और अगर मूर्च्छित नहीं है, तो कुछ भी पकड़ नहीं सकता। इसलिए बहुत केंद्रीय सूत्र कुछ और छोड़ने का नहीं, केंद्रीय सूत्र हैः मूर्च्छा-परित्याग।
चित्त से बेहोशी और मूर्च्छा छूटनी चाहिए, अमूर्च्छित जीवन-व्यवहार होना चाहिए, जागा हुआ जीवन-व्यवहार होना चाहिए।
आप कहेंगेः हम जागे हुए ही तो जीवन-व्यवहार करते हैं।
मैं कहूंगाः नहीं, हम बिल्कुल मूर्च्छित जीवन-व्यवहार करते हैं।
अगर मैं जोर से आपको धक्का दे दूं, आप क्रोध से भर जाएंगे। और मैं आपसे पूछूं कि यह क्रोध आप होशपूर्वक कर रहे हैं या बेहोशी में कर रहे हैं? क्योंकि क्रोध करने के घड़ी भर बाद पश्चात्ताप शुरू होता है। घड़ी भर बाद आपको लगता है कि यह मैंने कैसे किया? घड़ी भर बाद आपको लगता है कि यह तो मुझे नहीं करना था। घड़ी भर बाद आपको लगता है कि यह कैसी भूल मुझसे हो गई! तो आप घड़ी भर पहले कहां थे जब भूल हुई थी? जब घड़ी भर बाद पछताते हैं, तो घड़ी भर पहले आप कहां थे? जरूर आप अनुपस्थित रहे होंगे, एब्सेंट थे, आप मौजूद नहीं थे। जब क्रोध आपको पकड़ता है, आप अनुपस्थित होते हैं, आप मौजूद ही नहीं होते।
मैं आपको निवेदन करता हूंः अगर आप मौजूद हो जाएं, तो क्रोध उसी क्षण विलीन हो जाएगा, दोनों चीजें एक साथ नहीं खड़ी हो सकतीं। आप और क्रोध, दोनों साथ नहीं हो सकते। कभी नहीं हुआ ऐसा, न हो सकता है। जैसे ही आप होश से भरेंगे, आप पाएंगे कि क्रोध गया।
मेरे एक मित्र हैं, उन्हें बड़ा क्रोध आता था। वे बड़े परेशान थे, मुझसे पूछेः इसके लिए क्या करूं?
मैंने कहाः कुछ करें न। खीसे में एक कागज पर लिख कर रख लें कि "अब मुझे क्रोध आ रहा है", और जब भी क्रोध आए, उसे फौरन निकाल कर पढ़ लें और वापस खीसे में रख दें, और कुछ भी न करें।
वे बोलेः इससे क्या होगा?
मैंने कहाः मुझसे यह मत पूछें, दो-तीन महीने बाद आएं।
वे दो-तीन महीने बाद आए, वे बोलेः बड़ी हैरानी की बात है। खीसे की तरफ हाथ ही जाता है कि क्रोध क्षीण होने लगता है। क्योंकि मुझे तत्क्षण ख्याल आ जाता है कि क्रोध आ रहा है। जिस क्रोध के लिए मैं पछताया हूं बहुत बार,

दुखी हुआ हूं, पीड़ित हुआ हूं, इस बात का होश आते ही कि मुझे आ रहा है, वह क्षीण होने लगता है।
अगर हम जीवन के प्रति सतत जागरूक हो जाएं और जो भी हो रहा है उसके प्रति पूरे होश से भर जाएं, तो जीवन में जो भी बुरा है, वह असंभव हो जाएगा। क्योंकि बुरे के आगमन का द्वार मूर्च्छा है, बेहोशी है। बुरे को छोड़ा नहीं जा सकता, कोई छोड़ नहीं सकता बुरी बातों को। लेकिन अगर होश आ जाए, तो बुरे को पकड़ा नहीं जा सकता, कोई पकड़ नहीं सकता बुरी बात को।
इसलिए केंद्रीय जीवन की जो क्रांति है, वह मूर्च्छा के आस-पास घूमती है--मूर्च्छा या अमूर्च्छा। दो ही तरह के लोग होते हैं--मूर्च्छित या अमूर्च्छित, सोए हुए या जागे हुए। तो जागने की कोशिश करें निरंतर। जीवन चौबीस घंटे मौका देता है, जब आप सोते हैं, उस वक्त जागें। आज से ही इसे शुरू करें, क्योंकि कल के लिए जो छोड़ता है वह फिर सोने का एक काम कर रहा है। तो वह कहता है, कल से शुरू करेंगे। वह फिर नींद की बातें कर रहा है। क्योंकि कल का कोई पक्का भरोसा नहीं। वह नींद में है फिर, अगर वह मानता है कि कल भी होगा। अगर वह मानता है कि मैं कल भी रहूंगा, तो वह नींद में है, सपना देख रहा है। कल का कोई पक्का नहीं है कि आप रहेंगे या नहीं रहेंगे।
इसलिए जिसे जागरण शुरू करना है, उसे इसी क्षण शुरू करना पड़ेगा। छोटी- छोटी चीजों में जागरूक होकर देखें, होशपूर्वक करके देखें उन्हीं चीजों को। जरा कोशिश करें, कभी क्रोध को होशपूर्वक करके देखें। और अगर आप सफल हो जाएं, तो आप बड़े अदभुत आदमी हैं। अब तक दुनिया में कोई सफल नहीं हो सका है। होशपूर्वक क्रोध नहीं किया जा सकता, होशपूर्वक किसी को दुख नहीं पहुंचाया जा सकता, होशपूर्वक हिंसा नहीं की जा सकती। होशपूर्वक, जिन-जिन चीजों को हम पाप कहते हैं, वह कोई भी नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं तो पाप की ही यह परिभाषा करता हूं कि जो बेहोशी में किया जा सके वह पाप है और जो बेहोशी में न किया जा सके वह पुण्य है।
तीसरा सूत्र हैः अमूर्च्छित जीवन-व्यवहार।
अमूर्च्छित जीवन-व्यवहार तीसरा सूत्र है। पहले दो सूत्र मैंने कहेः संदेह की भूमि, आत्म-निरीक्षण की खाद और अमूर्च्छित जीवन-व्यवहार की वर्षा। अगर ये तीन बातें जीवन में हों, तो विवेक के बीज सबके भीतर मौजूद हैं, वे अंकुरित हो जाएंगे। और विवेक जाग्रत हो जाए, तो एक आत्मानुशासन पैदा होता है, एक डिसिप्लिन पैदा होती है, एक अनुशासन पैदा होता है जो स्वयं के भीतर से आता है, बाहर से नहीं।
एक अनुशासन है जो बाहर से आता है, वह झूठा है। एक अनुशासन है जो भीतर
से जगता है, एक आचरण है जो भीतर से जगता है, वह अदभुत है, उसका सौंदर्य अदभुत है। जो अनुशासन बाहर से आता है, वह कुरूप कर देता है व्यक्तित्व को, क्रिपिल्ड कर देता है, पंगु कर देता है। उससे ज्यादा अग्लीनेस और कुछ भी नहीं है, उससे ज्यादा कुरूप स्थिति और कोई भी नहीं है। लेकिन जो अनुशासन भीतर से आता है--इन तीन सूत्रों के आधार पर जो विवेक जागता है और अनुशासन आता है--वह व्यक्तित्व को सुंदर कर जाता है, प्राणों को सौंदर्य से भर देता है, संगीत से भर देता है। और फिर जीवन में एक सहज चर्या उत्पन्न होती है, अत्यंत सहज चर्या उत्पन्न होती है। हम क्षण-क्षण जीए जाते हैं होशपूर्वक, विवेकपूर्वक, और जो ठीक है वही हमसे होता है, जो ठीक नहीं है वह होता ही नहीं। अशुभ को रोकना नहीं पड़ता, शुभ को लाना नहीं पड़ता। शुभ आता है, अशुभ आता ही नहीं।
एक छोटी सी कहानी और फिर मैं चर्चा पूरी करूं। और फिर हम ध्यान के लिए बैठें।
बुद्ध के पास एक राजकुमार दीक्षित हो गया। दीक्षा के दूसरे ही दिन किसी श्राविका के घर उसे भिक्षा लेने बुद्ध ने भेज दिया। वह वहां गया। रास्ते में दो-तीन घटनाएं घटीं लौटते आते में, उनसे बहुत परेशान हो गया। रास्ते में उसके मन में ख्याल आया कि मुझे जो भोजन प्रिय हैं, वे तो अब नहीं मिलेंगे। लेकिन श्राविका के घर जाकर पाया कि वही भोजन थाली में हैं जो उसे बहुत प्रीतिकर हैं। वह बहुत हैरान हुआ। फिर सोचा कि संयोग होगा, को- इंसिडेंस है एक, जो मुझे पसंद है वही आज बना होगा।

वह भोजन करता है तभी उसे ख्याल आया कि रोज तो भोजन के बाद मैं विश्राम करता था दो घड़ी, आज तो फिर धूप में वापस लौटना है। लेकिन तभी उस श्राविका ने कहा कि भिक्षु, बड़ी अनुकंपा होगी अगर भोजन के बाद दो घड़ी विश्राम करो। बहुत हैरान हुआ। जब वह सोचता था यह तभी उसने यह कहा था! फिर भी सोचा कि संयोग की ही बात होगी कि मेरे मन में भी बात आई और उसके मन में भी सहज बात आई कि भोजन के बाद भिक्षु विश्राम कर ले।
चटाई बिछा दी गई, वह लेट गया। लेटते ही उसे ख्याल आया कि आज न तो अपना कोई साया है, न कोई छप्पर है अपना, न अपना कोई बिछौना है; अब तो आकाश छप्पर है, जमीन बिछौना है। यह सोचता था, वह श्राविका लौटती थी, उसने पीछे से कहाः भंते! ऐसा क्यों सोचते हैं? न तो किसी की शय्या है, न किसी का साया है।
अब संयोग मानना कठिन था, अब तो बात स्पष्ट थी। वह उठ कर बैठ गया और उसने कहा कि मैं बड़ी हैरानी में हूं! क्या मेरे विचार तुम तक पहुंच जाते हैं? क्या मेरा अंतःकरण तुम पढ़ लेती हो?
उस श्राविका ने कहाः निश्चित ही। पहले तो, सबसे पहले स्वयं के विचारों का निरीक्षण शुरू किया था। अब तो हालत उलटी हो गई, स्वयं के विचार तो निरीक्षण करते-करते क्षीण हो गए और विलीन हो गए, मन हो गया निर्विचार, अब तो जो निकट होता है उसके विचार भी निरीक्षण में आ जाते हैं।
वह भिक्षु घबड़ा कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मुझे आज्ञा दें, मैं जाऊं! उसके हाथ-पैर कंपने लगे।
उस श्राविका ने कहाः इतने घबड़ाते क्यों हैं? इसमें घबड़ाने की क्या बात है?
लेकिन भिक्षु फिर रुका नहीं। वह वापस लौटा, उसने बुद्ध से कहाः क्षमा करें, उस द्वार पर दुबारा भिक्षा मांगने मैं न जा सकूंगा।
बुद्ध ने कहाः कुछ गलती हुई? वहां कोई भूल हुई?
उस भिक्षु ने कहाः न तो भूल हुई, न कोई गलती। बहुत आदर-सम्मान और जो भोजन मुझे प्रिय था वह मिला। लेकिन वह श्राविका, वह युवती दूसरे के मन के विचारों को पढ़ लेती है। यह तो बड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि उस सुंदर युवती को देख कर मेरे मन में तो कामवासना भी उठी, विकार भी उठा था, वह भी पढ़ लिया गया होगा। अब मैं कैसे वहां जाऊं? कैसे उसके सामने खड़ा होऊंगा? मैं नहीं जा सकूंगा, मुझे क्षमा करें!
बुद्ध ने कहाः वहीं जाना पड़ेगा। अगर ऐसी क्षमा मांगनी थी तो भिक्षु नहीं होना था। जान कर वहां भेजा है। और जब तक मैं न रोकूंगा, तब तक वहीं जाना पड़ेगा। महीने दो महीने, वर्ष दो वर्ष, निरंतर यही तुम्हारी साधना होगी। लेकिन होशपूर्वक जाना, भीतर जागे हुए जाना और देखते हुए जाना कि कौन से विचार उठते हैं, कौन सी वासनाएं उठती हैं, और कुछ भी मत करना। लड़ना मत! जागे हुए जाना, देखते हुए जाना भीतर कि क्या उठता है, क्या नहीं उठता।
वह दूसरे दिन भी वहीं गया। सोच लें उसकी जगह आप ही जा रहे हैं, और वह श्राविका आपका मन पढ़ लेती है, और वह बहुत सुंदर है, बहुत आकर्षक है, बहुत सम्मोहक है, और वह मन पढ़ लेती है आपका। हां, मन न पढ़ती होती, या आपको पता न होता, तो फिर मन में आप कुछ भी करते। आज क्या करेंगे? आज आप ही जा रहे हैं उसकी जगह भिक्षा मांगने, रास्ते पर आप हैं। वह भिक्षु बहुत खतरे में है, अपने मन को देख रहा है, जागा हुआ है, आज पहली दफा जिंदगी में वह जागा हुआ चल रहा है सड़क पर। जैसे-जैसे उस श्राविका का घर करीब आने लगा, उसका होश बढ़ने लगा, भीतर जैसे एक दीया जलने लगा और चीजें साफ दिखाई पड़ने लगीं और विचार घूमते हुए मालूम होने लगे। जैसे उसकी सीढ़ियां चढ़ा, एक सन्नाटा छा गया भीतर, होश परिपूर्ण जग गया। अपना पैर भी उठाता है तो उसे मालूम पड़ रहा है, श्वास भी आती-जाती है तो उसके बोध में है। जरा सा भी कंपन विचार का भीतर होता है, लहर उठती है कोई वासना की, वह उसको दिखाई पड़ रही है। वह घर के भीतर प्रविष्ट हुआ, मन में और भी गहरा शांत हो गया, वह बिल्कुल जागा हुआ है। जैसे किसी घर में दीया जल रहा हो और एक-एक चीज, कोना-कोना प्रकाशित हो रहा हो। वह भोजन को बैठा, उसने भोजन किया, वह उठा, वह वापस लौटा।
वह उस दिन नाचता हुआ वापस लौटा। बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा और उसने कहाः अदभुत हुई बात। जैसे-जैसे मैं उसके निकट पहुंचा और जैसे-जैसे मैं

जागा हुआ हो गया, वैसे-वैसे मैंने पाया कि विचार तो विलीन हो गए, कामनाएं तो क्षीण हो गईं। और मैं जब उसके घर में गया तो मेरे भीतर पूर्ण सन्नाटा था, वहां कोई विचार नहीं था, कोई वासना नहीं थी, वहां कुछ भी नहीं था, मन बिल्कुल शांत और निर्मल दर्पण की भांति था।
बुद्ध ने कहाः इसी बात के लिए वहां भेजा था, कल से वहां जाने की जरूरत नहीं। अब जीवन में इसी भांति जीओ, जैसे तुम्हारे विचार सारे लोग पढ़ रहे हों। अब जीवन में इसी भांति चलो, जैसे जो भी तुम्हारे सामने है, वह जानता है, तुम्हारे भीतर देख रहा है। इस भांति भीतर चलो और भीतर जागे रहो। जैसे- जैसे जागरण बढ़ेगा, वैसे-वैसे विचार, वासनाएं क्षीण होती चली जाएंगी। जिस दिन जागरण पूर्ण होगा उस दिन तुम्हारे जीवन में कोई कालिमा, कोई कलुष रह जाने वाला नहीं है। उस दिन एक आत्म-क्रांति हो जाती है।
इस स्थिति के जागने को, इस चैतन्य के जागने को मैं कह रहा हूं--विवेक
का जागरण।
तीन सूत्र मैंने कहे, उन पर विचार करें। संदेह को आने दें, संदेह से भयभीत न हों, सम्यक संदेह की भूमि बनने दें। आत्म-निरीक्षण करें, खुद के जीवन में आंखों को गड़ाएं, खुद के जीवन में खोजें, कुछ छिपाएं न खुद के जीवन में, सब उघाड़ लें, अपने सामने पूरी तरह नग्न हो जाएं। और तीसरी बातः अमूर्च्छित जीवन-व्यवहार की दिशा में कुछ प्रयोग करें। होश साधें और मूर्च्छा छोड़ें। फिर जागेगा विवेक। और जिस दिन विवेक जागेगा, उस दिन जानना कि जीवन के सबसे बड़े सौभाग्य का क्षण निकट आ गया है।
कल हम तीसरी बात करेंगे सुबह। दो बातें हमने कींः श्रद्धा से मुक्ति
और विवेक का जागरण। और कल हम बात करेंगेः समाधि का अवतरण, समाधि कैसे उतर आए, उसकी चर्चा कल होगी।
ये दो बातें जो अभी हुई हैं, इन पर जो भी प्रश्न होंगे, उनकी हम रात चर्चा कर लेंगे।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। थोड़े-थोड़े फासले पर हो जाएं।

साक्षी की साधना
सातवां प्रवचन

प्रेम है परम सौंदर्य

बहुत से प्रश्न मेरे समक्ष हैं।
सबसे पहले तो यह पूछा गया है कि मेरी बातें अव्यावहारिक मालूम होती हैं। ठीक प्रतीत होती हैं, लेकिन अव्यावहारिक मालूम होती हैं।

यह ठीक से समझ लेना जरूरी है कि मनुष्य के इतिहास में जो-जो हमें अव्यावहारिक मालूम पड़ा है, वही कल्याणप्रद सिद्ध हुआ है। और जिसे हम व्यावहारिक समझते हैं, उसने ही हमें आश्चर्यजनक रूप से दुख में, हिंसा में और पीड़ा में डाला है। निश्चित ही, जो आप कर रहे हैं, वह आपको व्यावहारिक मालूम होता होगा, प्रैक्टिकल मालूम होता होगा। लेकिन उसका परिणाम क्या है आपके जीवन में? व्यावहारिक जो आपको मालूम पड़ता है, आप कर रहे हैं, लेकिन उसका परिणाम क्या है? उसका परिणाम तो सिवाय दुख और चिंता के कुछ भी नहीं। निश्चित ही उससे भिन्न कोई भी बात एकदम से अव्यावहारिक मालूम होगी। इसलिए नहीं कि वह अव्यावहारिक है, बल्कि इसलिए कि जिसे आप व्यावहारिक समझते रहे हैं, वह उससे भिन्न और विपरीत है, अपरिचित है। और कोई भी अज्ञात जीवन-दिशा में प्रवेश करने के पूर्व परिचित भूमि छोड़नी पड़ती है। जिस परिचित को हम जानते हैं, ज्ञात और नोन, उसको छोड़ना पड़ता है, तो ही अज्ञात में प्रवेश होता है। निश्चित ही थोड़ा अव्यावहारिक होने को कभी न कभी तैयार होना चाहिए।
जैसे उदाहरण के लिए, यह बात बिल्कुल ही व्यावहारिक मालूम होती है कि कोई मुझे गाली दे, तो मैं दुगुने वजन की गाली उसे दूं। यह बात व्यावहारिक मालूम होती है, कोई मुझे ईंट मारे, तो मैं पत्थर से जवाब दूं। क्राइस्ट ने जब लोगों को कहा कि तुम अपना बायां गाल भी उनके सामने कर देना जो दाएं पर चोट करें, तो बात बिल्कुल अव्यावहारिक लगेगी ही।
लेकिन ईंट के जवाब में पत्थर से मारना, इस अव्यावहारिक बात पर ही तीन हजार वर्ष में साढ़े चार हजार युद्ध हुए हैं। तीन हजार वर्षों के मनुष्य-जाति के इतिहास में साढ़े चार हजार युद्ध इस व्यावहारिक बात पर हुए हैं कि तुम ईंट का जवाब पत्थर से देना, और जो तुम्हारी एक आंख फोड़े, तुम दोनों फोड़ देना। सोचें थोड़ा सा, अगर तीन हजार वर्षों में साढ़े चार हजार बार मनुष्य-जाति पागल हो जाती हो, इस मनुष्य-जाति की व्यावहारिकता में कुछ न कुछ बुनियादी भूल होनी चाहिए। और यह पागलपन कुछ थोड़ा नहीं है, पिछले दो महायुद्धों में दस करोड़ लोगों की हत्या की है हमने। फिर भी हम कहते हैं कि हम जो सोचते हैं वह व्यावहारिक है। और अब तो हम उस समय के करीब आ रहे हैं कि हो सकता है पूरी मनुष्य-जाति समाप्त हो जाए, लेकिन फिर भी हम कहेंगे कि हम जो सोचते हैं वह व्यावहारिक है। सारा जीवन नरक हो गया है, लेकिन हम कहते हैं कि हम व्यावहारिक आधारों पर नरक में खड़े हैं। और जो कोई भी बात इस नरक से बाहर निकालने की हो, वह अव्यावहारिक मालूम होती है। जरूर होगी, होनी ही चाहिए। अगर वह आपको अव्यावहारिक मालूम न होती, तो आपने कभी का उसे कर लिया होता और जीवन बदल गया होता।
इसलिए कृपा करके अपनी व्यावहारिकता पर थोड़ा संदेह करें। आपकी व्यावहारिकता घातक है, आपके जीवन में और सारी जाति के जीवन में। थोड़ा उस पर शक करें, थोड़ा विचार करें कि वह व्यावहारिकता कहां ले आई है?
जरूर क्राइस्ट की बात बिल्कुल अव्यावहारिक मालूम होती है। क्राइस्ट
ने कहाः उन्हें क्षमा कर देना जो तुम्हें चोट करें। बिल्कुल अव्यावहारिक बात है। क्राइस्ट को जिस दिन सूली दी गई, वे सूली पर लटकाए गए, लटकाने वाले लोगों ने कहा कि कुछ अंतिम बात कहनी हो तो कहो! तो उन्होंने कहाः हे परम पिता! इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं!
यह तो नहीं कहना था। भगवान से प्रार्थना करनी थी कि जला कर इन सबको खाक कर देना और सातवें नरक में डालना और अग्नि में चढ़ाना और कड़ाहियों में

डालना और इनको सताना दुष्टों को। लेकिन उन्होंने बड़ी अव्यावहारिक बात कही कि इन्हें माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं! इन्हें अपने करने का भी कोई पता नहीं है, होश नहीं है। जरूर यह बात अव्यावहारिक लगती है। लेकिन अव्यावहारिक होने से कोई बात न तो गलत होती है और न वस्तुतः जीवन में न उतारने योग्य हो जाती है।
तो मेरा निवेदन हैः अगर कोई बात ठीक लगती हो और अव्यावहारिक मालूम होती हो, तो यही समझना ज्यादा उचित होगा कि जिसे हम व्यावहारिक समझते रहे हैं वह हमारी समझ भूल है। रह गई बात यह कि नये प्रयोग तो जीवन में शुरू करते वक्त अजनबी होंगे, लेकिन यदि उन्हें कोई करेगा, तो वे क्रमशः परिचित होते जाते हैं। और ठीक उलटी बात घटती है।
एक छोटी सी घटना कहूं।
चंपारन में गांधी थे। किसी अंग्रेज चाय बगीचे के मालिक ने... गांधी ने वहां कुछ आंदोलन चलाया... एक चाय बगीचे के मालिक अंग्रेज ने किसी गुंडे को कहाः पांच हजार रुपये देंगे, गांधी को मार डालो। अदालत में मुकदमे से घबड़ाना मत, हमारी अदालतें हैं, उसमें भी हम बचा लेंगे।
यह खबर गांधी के मित्रों को लगी। उन्होंने गांधी को जाकर कहा कि ऐसी- ऐसी खबर है। रोज सुबह चार बजे उठ कर आप अंधेरे में घूमने जाते हैं, ठीक नहीं। कल से इतने जल्दी न जाएं, सूरज निकल आए तब जाएं। कोई भी खतरा हो सकता है।
रोज गांधी चार बजे उठते थे, उस दिन तीन बजे ही उठ आए। मित्र सोते थे, चार बजे के ख्याल में थे कि उठेंगे तब वे भी उठ आएंगे। गांधी तीन बजे उठे और उस आदमी के घर पहुंच गए, जिसके बाबत यह खबर थी कि वह पांच हजार रुपये देकर मरवाना चाहता है। तीन बजे रात गांधी को देख कर उसे विश्वास ही नहीं आया, दो-चार दफे उसने आंख मींड़ी होंगी, साफ की होंगी कि अंधेरे में सपना तो नहीं देखता रात में, कहां गांधी सामने खड़े हैं! गांधी ने जाकर कहा कि तुम्हारी बड़ी कृपा है, क्योंकि इस शरीर के लिए मर जाने पर पांच हजार देने को कोई भी राजी नहीं होगा, आदमी के शरीर की कीमत बहुत कम है।
शायद आपको पता न हो, दुनिया में किसी भी जानवर की बजाय आदमी के शरीर की कीमत बहुत कम है। एक जानवर का शरीर बिकता है, तो उससे कुछ पैसा मिल सकता है, आदमी के शरीर में कुछ भी नहीं है। हिसाब लगाया जाए, तो मुश्किल से कोई साढ़े चार, पांच रुपये का सामान निकलता है आदमी के शरीर में से, इससे ज्यादा का नहीं। अब थोड़ा जमाना महंगा है, तो साढ़े सात का, आठ का निकलता होगा, इससे ज्यादा का नहीं।
तो गांधी ने उनको कहा कि पांच हजार बहुत हैं, मुझे इतना दाम देने को कोई राजी नहीं होगा। और फिर मुझे जरूरत भी है हरिजन फंड में, तो ये पांच हजार रुपये मुझको दे दें और गोली मार लें! और यहां कोई भी मौजूद नहीं है, इससे कोई सवाल भी नहीं उठेगा, कोई झंझट भी नहीं उठेगी, कोई परेशानी भी खड़ी नहीं होगी।
वह आदमी तो घबड़ा गया, यह विश्वास करना संभव नहीं हुआ, ऐसी अव्यावहारिक बातों पर कोई विश्वास करता है! तो बहुत घबड़ा गया, क्या करे, क्या न करे, उसकी समझ में न आया, सिवाय इसके कि गांधी के पैर छुए। उसने गांधी के पैर छुए और कहा कि मैं अब तक सोचता था कि यह जीसस क्राइस्ट की सारी घटना काल्पनिक है। आपने आज मेरे द्वार पर उपस्थित होकर स्पष्ट कर दिया कि क्राइस्ट भी हुआ होगा, और फांसी पर लटके हुए उसने कहा होगा कि क्षमा कर दें इनको, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं! आपने मुझे क्रिश्चियन बना दिया।
गांधी तो वापस लौट आए, लेकिन वह आदमी बदल गया, वह दूसरा आदमी हो गया।
निश्चित ही कोई भी व्यावहारिक आदमी इस तरह का काम करने को राजी नहीं होगा।
लेकिन दुनिया उन लोगों से आगे बढ़ती है, जो थोड़े से अव्यावहारिक होते हैं।
और उन लोगों से तो रोज गड्ढे में गिरती है, जिनको हम व्यावहारिक कहते हैं।
आपकी बड़ी कृपा होगी, अपने पर भी और दूसरों पर भी, अगर आप अपनी थोड़ी व्यावहारिकता से हटें और थोड़े अव्यावहारिक होने की भी हिम्मत करें।

स्मरण रखें, अव्यावहारिक होने की थोड़ी सी भी चेष्टा जीवन में क्रांति ला सकती है।
तो मैं जो कह रहा हूं, ऐसे तो जीवन के मूलभूत सूत्रों से संबंधित है, अव्यावहारिक उसमें कुछ भी नहीं है। जो भी करेगा, वह पाएगा, उससे ज्यादा सम्यक व्यवहार और कोई भी नहीं हो सकता। लेकिन हम बहुत होशियार लोग हैं, हम जो करते हैं, उससे न हटने के लिए हजार बहाने खोजते हैं। और सबसे बड़ा बहाना यह होता है कि हम किसी बात को कह दें कि बात तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन अव्यावहारिक है।
कहीं ठीक बातें भी अव्यावहारिक होती हैं? बड़ी हैरानी की बात है! अगर ठीक बातें अव्यावहारिक होती हैं, तो फिर गलत बातें व्यावहारिक होती होंगी। तब तो फिर ठीक और अव्यावहारिक बातें ही चुनना उचित है बजाय गलत और व्यावहारिक बातों के। क्योंकि चुनाव हमेशा ठीक और गलत के बीच है। जो आपको ठीक मालूम होता हो, उसे चुनने का साहस होना चाहिए। थोड़ी तकलीफ भी होगी ठीक को चुनने में, थोड़ी असुविधा भी होगी। लेकिन जो सत्य जीवन के लिए थोड़ी असुविधा और तकलीफ भी उठाने को राजी न हो, जो इतना भी मूल्य न चुकाना चाहता हो, उसका जीवन सत्य नहीं हो सकता, असत्य ही रहेगा।
तो इसलिए मेरी कोई भी बात अव्यावहारिक मालूम होती हो, उसे थोड़ा सोचें, समझें, विचारें, थोड़ा प्रयोग करें। नहीं पाएंगे कि वह अव्यावहारिक है। क्योंकि अव्यावहारिक बातें करने से फायदा भी क्या है? अर्थ भी क्या है? प्रयोजन भी क्या है? मेरी तरफ से मैं कोई अव्यावहारिक बात आपसे नहीं कह रहा हूं। आपकी तरफ से अव्यावहारिक दिखाई पड़ती हो, तो थोड़ा विचार करें, थोड़ा प्रयोग करें, देखें। प्रयोग करते ही पता चलेगा कि हम जो कर रहे थे, वही अव्यावहारिक था।

और भी कुछ प्रश्न पूछे हैं। ऐसे तो एक ही प्रश्न ऐसा होता है कि उसे और गहरे में जाया जाए, तो वह लंबा हो। लेकिन फिर सब प्रश्नों के उत्तर संभव नहीं होंगे।
कल या आज सुबह मैंने कहा कि जिन्होंने कहा है, स्त्री नरक का द्वार है, उन्होंने गलत कहा है। तो किसी ने पूछा है कि हम तो ऐसा ही अनुभव करते हैं कि किसी स्त्री के चक्कर में पड़ गए कि फिर नरक का दरवाजा खुला। और फिर जन्म-मरण का सिलसिला शुरू हो जाता है। तो आप यह किस आधार पर कहते हैं कि स्त्री नरक का द्वार नहीं है?

यह उन्होंने बड़ी सीधी और साफ बात पूछी है। लेकिन वे यह भी तो सोचें कि
जो स्त्री आपके चक्कर में पड़ गई है, उसका नरक का दरवाजा आपने खोल दिया कि नहीं? आप ही स्त्री के चक्कर में पड़े हैं, यह बड़ी कमजोर बात होगी, स्त्री भी आपके चक्कर में पड़ गई है।
लेकिन इस बात को आप चक्कर में पड़ना क्यों समझते हैं? इस बात को चक्कर में पड़ना समझते हैं, शायद इसीलिए नरक का द्वार खुल जाता है।
हम जीवन को सहजता से लेते ही नहीं, हमारा चित्त बहुत जटिल हो गया है और
हम जीवन को बड़ी दुरूहता से लेते हैं, बड़ी कठिनाई से लेते हैं। हमने जीवन की सारी निसर्गता को, सारी सहज स्वाभाविकता को झूठे सिद्धांतों, झूठी मान्यताओं से इस भांति दबा रखा है कि हम अदभुत रूप से मूर्खतापूर्ण चिंतन में उतर गए हैं और सारे जीवन को खराब किया हुआ है।
मैं एक घर में मेहमान था। उस घर की गृहिणी ने मुझसे कहा कि मैं पति को बहुत सम्मान देती हूं, लेकिन फिर भी रोज कलह हो जाती है। आदर करती हूं, जैसा मुझे सिखाया है कि परमात्मा समझो पति को, वैसे ही समझने की कोशिश करती हूं। लेकिन फिर भी चौबीस घंटे कलह चलती है, बहुत मुश्किल हो गया है, नारकीय जीवन हो गया है।
मैंने उन महिला को कहा कि शायद तुम्हें यह पता न हो कि इस नारकीयता में उन्हीं लोगों का हाथ है, जो नरक-स्वर्ग की बहुत बातें करते हैं।
वे बोलींः कैसे?

मैंने उनको कहा कि हम बहुत छोटे से बच्चों को भी सेक्स के प्रति घृणा सिखाते हैं, कंडेमनेशन सिखाते हैं, निंदा सिखाते हैं, सेक्स को एक पाप बतलाते हैं। बीस वर्ष की युवती हो जाती है, तब वह विवाहित होती है; या बीस वर्ष, बाईस वर्ष का युवक हो जाता है, तब वह विवाहित होता है। बीस वर्ष तक जिस लड़की ने काम की वृत्ति को पाप और घृणित समझा हो, जब विवाह के बाद पति उसके निकट आए, तो यह आदमी उसे पापी मालूम पड़े, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। और इस आदमी के प्रति उसके मन में अनादर और घृणा का भाव आए, यह भी आश्चर्यजनक नहीं है। जिस देश में सेक्स के प्रति निंदा का भाव हो, उस देश में पत्नी पति का आदर नहीं कर सकती और न पति पत्नी का आदर कर सकता है। दोनों के मन में घृणा है, तीव्र घृणा। और किस बात के प्रति घृणा है?
काम की शक्ति समस्त सृजन का मूल है, सारा जीवन उसी से विकसित होता है, उसी केंद्र से। पौधे और पशु और पक्षी और फूल और मनुष्य, सभी उसी से पैदा होते हैं। अगर परमात्मा की कोई भी शक्ति काम कर रही है विश्व के निर्माण में, तो वह काम की शक्ति है, वह सेक्स की शक्ति है, वह सेक्स एनर्जी है। जो भी सृष्टि हो रही है, जो भी सृजन हो रहा है, वह उससे हो रहा है। उस मूल शक्ति को जब हम निंदा के भाव से देखते हैं, तो जीवन में कुंठा पैदा हो जाए, दुख पैदा हो जाए, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। और जब हम उसे निंदा के भाव से देखते हैं, घबड़ाहट से देखते हैं, परेशानी से देखते हैं, तो उससे लड़ते भी हैं और वह वृत्ति हमारे प्राणों के केंद्र पर काम भी करती है, तो हम उससे आकर्षित भी होते हैं, उससे भागते भी हैं, उसके निकट भी जाते हैं, उससे दूर भी होना चाहते हैं और इस खींच-तान में, इस कांफ्लिक्ट में अगर जीवन नरक बन जाता हो, तो न तो इसमें स्त्री का कोई कसूर है, न पुरुष का कोई कसूर है।
जीवन में जो निसर्ग है, जो प्रकृति है, उसे हमने सहजता से लेना ही छोड़ दिया। हमने उसे सहजता से लिया ही नहीं। और बड़े आश्चर्य की बात है, अगर हम उसे सहजता से ले सकें, और अगर हम--पति पत्नी को प्रेम दे सके, पत्नी पति को प्रेम दे सके, अबाध, अनकंडीशनल; किसी शर्त के कारण नहीं, किसी बाधा के कारण नहीं, सहज और उन्मुक्त प्रेम दे सके, तो सबसे जो महत्वपूर्ण बात है, वह यह है कि जितना प्रेम गहरा और घना होगा, उतना ही सेक्स, काम का संबंध विलीन होता चला जाएगा। काम की सारी शक्ति प्रेम में परिवर्तित हो सकती है। और किसी चीज में कभी परिवर्तित नहीं होती। और जो लोग सेक्स से लड़ाई शुरू कर देते हैं, उनका जीवन अत्यधिक कामुक हो जाता है, अत्यधिक मानसिक व्यभिचार से भर जाता है। मन में व्यभिचार करते हैं, ऊपर से डरते हैं, घबड़ाते हैं, लड़ते हैं। और तब निरंतर एक नरक पैदा हो जाए तो इसमें आश्चर्य कौन सा है!
न तो पत्नी नरक पैदा करती है, न बच्चे नरक पैदा करते हैं, न पति नरक पैदा करता है, कोई नरक पैदा नहीं करता। जीवन को देखने का हमारा ढंग अगर बुनियादी रूप से गलत है, तो नरक पैदा हो जाता है। नरक पैदा होता है जीवन को देखने के ढंग से। और हम जिस तरह के देखने के आदी हो जाते हैं, फिर जीवन वैसा ही हो जाता है। और जब जीवन को हम गलत ढंग से देखते हैं और वह गलत होता चला जाता है, घबड़ाहट बढ़ती चली जाती है, बेचैनी बढ़ती चली जाती है, तो हर आदमी दूसरे पर दोष देता है, अपने पर तो दोष नहीं देता। पति पत्नी पर दोष देता है, पत्नी पति पर दोष देती है। और यह दोष देने की, दूसरे पर थोपने की प्रवृत्ति इतनी जघन्य है, इतनी अपराधपूर्ण है, जिसका कोई हिसाब नहीं। और तब निंदा का एक आदान-प्रदान चलता है जिसमें कोई हल नहीं हो सकता, समाधान नहीं हो सकता। तो आप गालियां दे रहे हैं स्त्रियों को, स्त्रियां शास्त्र लिखेंगी
तो वे भी आपको गालियां देंगी। अभी उन्होंने लिखे नहीं हैं, अभी उन्होंने कोई शास्त्र तैयार नहीं किए, अभी वे आपके ही शास्त्र पढ़ती हैं और उन्हीं को मानती हैं, तो इसलिए आपकी बातों में वे भी सहमत हैं। लेकिन वह दिन दूर नहीं जब स्त्रियां शास्त्र लिखेंगी और वे उसमें लिखेंगी कि ये सब पुरुषों के कारण सारा जगत नष्ट हो गया, सारा आवागमन चल रहा है और यह सारा का सारा नरक का द्वार यह पुरुष ही है। और जब स्त्री और पुरुष एक-दूसरे को नरक का द्वार समझ लें, तो दुनिया अगर नरक बन जाए--तो और क्या बनेगी? और क्या बनेगी फिर दुनिया?

हम जिंदगी को जैसा लेना शुरू करते हैं, वैसी जिंदगी हो जाती है। हम जैसा जिंदगी को देखना शुरू करते हैं, वैसी जिंदगी हो जाती है।
मेरी दृष्टि यह है कि जो आदमी वस्तुतः सरल और शांत होना चाहता है, वह जीवन की जो प्रकृति है, वह जो नेचर है, वह जो निसर्ग है, उसको अत्यंत धन्यता से स्वीकार करेगा, अत्यंत धन्यता से, अत्यंत थैंकफुल होगा, धन्यवाद से भरा होगा। कहां है गलत? कहां है कुछ गलत? कुछ भी गलत नहीं है। फूल पैदा होते हैं बीज से। कभी आपने जाकर यह कहा कि यह बीज नारकीय है, इससे फूल पैदा होते हैं? नहीं, आपने कभी नहीं कहा। और आपको पता नहीं है कि फूल से भी बीज उसी तरह पैदा होते हैं जिस तरह मनुष्य पैदा होता है। उसी तरह सेक्स वहां भी काम कर रहा है फूलों में भी।
लेकिन हम अजीब लोग हैं! हम जाएंगे तो फूल को कहेंगे बहुत सुंदर। और तितलियां उड़ रही हैं और फूलों पर से पराग ले जा रही हैं और दूसरे फूलों तक पहुंचा रही हैं। वे सब जन्म के बीजांकुर हैं। और फूल उड़ रहे हैं हवाओं में, उनका पराग उड़ रहा है और दूसरे फूलों तक जा रहा है, वे सब बीज हैं, वह सब सेक्सुअल एक्टिविटी है। लेकिन हम फूलों के लिए प्रसन्न हैं और तितलियों के लिए गीत लिखते हैं; और फूलों के लिए गीत लिखते हैं; और मनुष्य के जीवन में जब बच्चे का जन्म होता है, तो जिस अदभुत व्यवस्था से बच्चे का जन्म होता है, उसकी निंदा करते हैं।
आपको पता है कि जब भी प्रेम से कोई स्त्री और पुरुष का मिलन होता है,
तो उस क्षण वे दोनों मिट जाते हैं और उनके दोनों के भीतर परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति काम करने लगती है और एक बच्चे का जन्म होता है, एक नया जीवन पैदा होता है। इससे बड़ी मिस्टी, इससे बड़ा कोई रहस्य नहीं है। लेकिन इस सबसे बड़े रहस्य को--जहां से जीवन के अंकुर बढ़ते हैं, बड़े होते हैं, जहां से जीवन फैलता है--न मालूम किन नासमझों ने कुंठित किया हुआ है, निंदित किया हुआ है और निंदा भर दी है इस बात के प्रति। और जब निंदा हमारे मन में होगी, तो स्वाभाविक है कि बच्चे विकृत पैदा होंगे।
इस बात को आप समझ लें! दुनिया में मनुष्य-जाति का जो पतन हो रहा है, वह
इस बात से हो रहा है कि जब मां-बाप दोनों का हृदय काम के संबंध के प्रति, मैथुन के प्रति घृणा से भरा हुआ हो, तो उन दोनों से जो बच्चे पैदा होंगे, वे पवित्रता में पैदा नहीं हो सकते हैं। वे बच्चे कंसीव ही नहीं होते पवित्रता में।
मैं तो मानता हूं कि अगर जीवन के बाबत हमारी समझ गहरी होगी, तो हम सेक्स के प्रति उतनी ही पवित्रता की धारणा और दृष्टि रखेंगे, जैसे हम मंदिर में प्रार्थना के प्रति रखते हैं, उससे भी ज्यादा। उससे भी ज्यादा इसलिए कि मंदिर में हो सकता है पत्थर की मूर्ति हो, परमात्मा न हो, लेकिन सेक्स के संबंध में, मैथुन में तो परमात्मा की स्पष्ट शक्ति काम कर रही है, जीवन का जन्म हो रहा है। पत्नी के पास पति वैसे जाएगा, जैसे उसे मंदिर के पास जाना चाहिए। पत्नी पति के पास वैसे जानी चाहिए, जैसे अत्यंत प्रार्थनापूर्ण हृदय से भरी हुई। अगर पत्नी और पति के बीच का संबंध अत्यंत प्रार्थना, पवित्रता और ध्यान से भरा हुआ हो, तो जो बच्चे पैदा होंगे, वे कुछ और ही तरह के पैदा होंगे। उस पवित्रता से पवित्रता का जन्म होगा, उस प्रेम और प्रार्थना से कुछ और तरह की आत्माएं विकसित होंगी। लेकिन इस घृणित संबंध से जो भी पैदा होगा वह बहुत श्रेष्ठ नहीं हो सकता। मनुष्य-जाति का पतन इसलिए हुआ है। मनुष्य-जाति रोज पतित होती जा रही है। और उसके पतन के पीछे यह कारण नहीं है कि भौतिकवाद है, और पश्चिम के वैज्ञानिक हैं, और ये हवाई जहाज बनाने वाले, मोटर बनाने वाले लोग हैं, और अच्छे कपड़े बनाने वाले लोग हैं। ये लोग नहीं हैं पतन के पीछे, न ये फिल्में हैं पतन के पीछे और न कोई और है पतन के पीछे। पतन के पीछे सेक्स के प्रति हमारा जो निंदा का भाव है, वह मनुष्य-जाति को बीजों से नष्ट कर रहा है, उसके भीतर से, जन्म जहां से शुरू होता है वहां से विकृत और कुरूप कर रहा है। दोनों की भावनाएं नये बच्चे को निर्मित करती हैं। अगर दोनों की भावनाएं ऐसी कुंठित हैं, एक-दूसरे को नरक समझ रहे हैं, कलह समझ रहे हैं, और मजबूरी में, जबरदस्ती में एक-दूसरे से मिल रहे हैं, तो स्वाभाविक है कि जो पैदा

होगा, वह कोई श्रेष्ठ नहीं हो सकता, वह सुंदर नहीं हो सकता, वह सत्य और शिव नहीं हो सकता।
सेक्स के संबंध में मेरी अत्यंत आदरपूर्ण, अत्यंत पवित्रता की भावना है, उससे ज्यादा पवित्र कुछ भी नहीं है। हम मां को आदर देते हैं, लेकिन हमको पता नहीं; हम पिता को आदर देते हैं, लेकिन हमें पता नहीं; मां और पिता से भी गहरे में जो सृजन का मूल है वह कौन है? और मां को आप कैसे आदर देंगे जब आप सेक्स की निंदा करेंगे? और पिता को कैसे आदर देंगे? और बहुत गहरे में जब आप सृजन को ही निंदा कर रहे हैं, तो स्रष्टा को कैसे आदर देंगे? यह मेरी समझ में नहीं आता कि यह कौन सा तर्क है? कौन सा गणित है? कहते हैं, स्रष्टा को हम आदर देंगे, परमात्मा को, सृजन का जो मूलस्रोत है उसको आदर देंगे, तो फिर सृजन की इस मूल-क्रिया को कैसे अनादर करेंगे आप?
मेरी दृष्टि में सृजन का मूलस्रोत अनादर के योग्य नहीं, अत्यंत आदर
के योग्य है। एक और ही तरह का दांपत्य जीवन विकसित होना चाहिए। यह दांपत्य जीवन बिल्कुल रुग्ण और गलत है। और इसे गलत करने में तथाकथित धार्मिक साधु- संतों के उपदेशों का हाथ है। और एक खतरनाक शड्यंत्र कोई दो-तीन हजार वर्ष से चल रहा है मनुष्य-जाति को अदभुत रूप से विकृत करने में। और उनके हाथों से चल रहा है जिनसे हम सोचते हैं कि जीवन ऊंचा उठेगा। उनकी ही बातें और उनकी खतरनाक और घातक बातें जीवन को नीचे ले जा रही हैं।
क्या इसका यह अर्थ है कि मैं आपसे यह कह रहा हूं कि आप सब भांति सेक्स में डूब जाएं?
नहीं, यह मैं आपसे नहीं कह रहा हूं। मैं तो आपसे यह कह रहा हूं कि सृजन
का जो मूल केंद्र है उसके प्रति अनादर और निंदा का भाव न रखें। फिर क्या होगा? जब आप अत्यंत प्रेम और पवित्रता से उस केंद्र को देखना शुरू करेंगे, उस वृत्ति को, तो आप खुद हैरान हो जाएंगे। अगर एक पति अपनी पत्नी को अत्यंत आदर और प्रेम से देखना शुरू करे, नरक का द्वार न समझे, और वैसा ही पत्नी न समझे, और जिस संबंध के कारण वे एक-दूसरे का नरक बन गए हैं उस संबंध को प्रेम और आदर और सम्मान से स्वीकार करे, तो आप बहुत हैरान हो जाएंगे, जैसे-जैसे यह प्रेम गहरा होगा और यह पवित्रता गहरी होगी और यह प्रार्थना गहरी होगी, वैसे-वैसे सेक्स की जो सृजनात्मक शक्ति है, वह और ऊपर उठ कर प्रकट होनी शुरू हो जाएगी, वह नये सृजन के रूप ले लेगी। हो सकता है आपसे फिर बच्चे ही पैदा न हों, एक गीत पैदा हो, कविता पैदा हो, एक मूर्ति बने, सेवा निकले, सत्य का जन्म हो, सौंदर्य का जन्म हो। आपसे कुछ और नये तल पर सृजन शुरू होगा। आपका जीवन सृजनात्मक और क्रिएटिव हो जाएगा।
जब कोई व्यक्ति जीवन में श्रेष्ठतर सृजन के मार्ग खोज लेता है तो उसके भीतर से अपने आप सृजन की शक्ति नये-नये द्वारों से प्रकट होने लगती है। और जिन्हें हम बच्चों का जन्म कहते हैं, उस द्वार से विलीन हो जाती है। एक टरंसफार्मेशन होता है, एक परिवर्तन हो जाता है, एक बिल्कुल ही नया परिवर्तन हो जाता है। इसलिए जिन लोगों के जीवन में सृजन के नये द्वार होते हैं, प्रेम के नये द्वार होते हैं, प्रार्थना और पवित्रता की नई दिशाएं खुल जाती हैं, उन लोगों के जीवन में अनायास ही ब्रह्मचर्य का प्रवेश हो जाता है। ब्रह्मचर्य ठोक-ठोक कर लाना नहीं पड़ता। और जो ठोक-ठोक कर लाया जाता हो, और जबरदस्ती लाया जाता हो, वह ब्रह्मचर्य झूठा है, उस ब्रह्मचर्य में कोई भी अर्थ नहीं है। और उस तरह के ब्रह्मचर्य से स्वस्थ, सामान्य काम का जीवन, सेक्स का जीवन ज्यादा उचित और योग्य है।
इन बातों को सुनेंगे, समझेंगे। आग्रह मेरा नहीं है कि मान लेंगे, क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वह तो हजारों वर्ष से जो कहा गया है उससे इतना भिन्न और विरोधी है कि मैं यह अपेक्षा नहीं कर सकता कि वह एकदम से आपकी समझ में भी आ जाएगा। लेकिन आज नहीं कल मनुष्य-जाति को समझना होगा, क्योंकि कुछ भूल हुई है और कहीं कोई बुनियादी रुग्णता हमको पकड़ ली है।
यह मैं आपसे कहूं कि सेक्स को छोड़ कर कोई व्यक्ति ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता। हां, जो व्यक्ति सृजन के नये द्वार खोज लेता है, वह अनायास ही ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है।

यह चित्त की दशा कैसे विकसित हो, उसके लिए मैं सारी बात कर रहा हूं।
ध्यान है। आज मैंने कुछ तीन सूत्र कहे हैं, कल कुछ कहा है, कल कुछ और आपसे कहूंगा। अगर इन सारे सूत्रों पर चित्त शांत और सरल होता जाए, तो अदभुत रूप से आपके जीवन से सेक्स विलीन हो जाएगा।
इसका यह अर्थ नहीं है कि आपके जीवन से समस्त सृजन विलीन हो जाएगा। नहीं, आपके जीवन में सृजन के नये द्वार खुल जाएंगे। नये मार्ग, नये आयाम खुल जाएंगे। आपसे बहुत सृजन हो सकेगा, बहुत कुछ चीजें आपसे पैदा हो सकेंगी। लेकिन यह इस भांति नहीं हो सकेगा जिस भांति हम सोचते रहे हैं।

इसी संबंध में एक प्रश्न और पूछा हुआ है कि विवेकानंद ने या किसी ने कहा है कि वीर्य को संरक्षित करो, उससे ओज पैदा होगा।

ये जो इस तरह की जो बातें हमें शिक्षा में दी गई हैं, ये भी बहुत आश्चर्यजनक रूप से गलत हैं। जीवन में ओज का विकास हो, तो वीर्य अपने आप संरक्षित होता है, लेकिन वीर्य के संरक्षण से ओज का विकास नहीं होता। वीर्य के संरक्षण से विक्षिप्तता आ सकती है, ओज नहीं; पागलपन आ सकता है, ओज नहीं। लेकिन ओज का विकास हो जीवन में, तो वीर्य अपने आप संरक्षित होता है। इसलिए जोर इस बात पर जहां भी दिया जाता हो कि वीर्य को संरक्षित करो,
यह घातक शिक्षा है। और इसका कुल परिणाम इतना हो सकता है कि ओज तो पैदा न हो, और जीवन अत्यंत कुंठित और कुरूप और दमित हो जाए, सप्रेस्ड हो जाए। जिन कौमों ने इस तरह की बातें सोची हैं, जो कि उलटी हैं। मुझे दिखाई यह पड़ता है, जैसे कि... यह सब ऐसा ही मामला है जैसे मैं आपसे कहूं कि इस घर में बहुत अंधेरा है, अंधेरे को निकाल बाहर करो तो दीया अपने आप जल जाएगा। कोई ऐसा कहे, तो हम कहेंगे, यह बड़ी गड़बड़ बातें कह रहा है। अंधेरे को तो बाहर निकाला ही नहीं जा सकता। अगर हम अंधेरे को बाहर निकालने लगेंगे, तो हम टूट जाएंगे, अंधेरा तो वहीं रहेगा। अंधेरा निकाल कर दीया नहीं जलता; हां, दीया जल जाए तो अंधेरा अपने आप बाहर निकल जाता है। अंधेरे को निकालने से दीया नहीं जलता, दीये के जलने से अंधेरा पाया ही नहीं जाता है।
तो मैं आपसे यह कह रहा हूंः ओज को जलाओ, ओज को जगाओ, वीर्य अपने आप संरक्षित हो जाएगा।
लेकिन हम फिकर करते हैं वीर्य को संरक्षित करने की। और वीर्य-संरक्षण में आप क्या करेंगे? जिस व्यक्ति के जीवन में ओज ही नहीं जगा, जिस व्यक्ति के जीवन में कोई आंतरिक शांति की और प्रकाश की ज्योति नहीं जगी, वह क्या करेगा?
वह करेगा यह कि उसके भीतर जितनी भी काम की भावनाएं होंगी, उनको दबाएगा, लड़ेगा उनसे, उनको जबरदस्ती रोकेगा। इस रोकने में, दबाने में उसका चित्त विकृत होगा, खंडित होगा। इस दबाने में घबड़ाहट और भय पैदा होगा। इस दबाने में निरंतर डर होगा कि कब यह दमन छूट जाए, कब कहीं यह संयम थोड़ा सा शिथिल हो जाए, तो मुश्किल खड़ी हो जाए, विस्फोट हो जाए, चीजें टूट जाएं। और यह विस्फोट होगा। और इस विस्फोट को बचाने के वह जो भी उपाय करेगा, उसमें उसका जीवन नष्ट होगा, और कुछ भी नहीं होगा।
मैं पढ़ता था, एक घटना पढ़ता था। एक महिला एक होटल में आकर ठहरी। वह ब्रह्मचारिणी थी, कोई पचास वर्ष उसकी उम्र हो गई थी। उसने धर्म की शिक्षा में अपने जीवन को संयमित किया था। वह सातवें मंजिल पर ठहरी और थोड़ी ही देर बाद नीचे उसने मैनेजर को फोन किया कि एक आदमी यहां आकर मेरे साथ बहुत बुरा दुर्व्यवहार कर रहा है। वह मेरे सामने बिल्कुल ही करीब-करीब उघाड़ा खड़ा हुआ है।
मैनेजर घबड़ा गया कि कौन आदमी उसके पास पहुंच गया? वहां क्या हो गया? अकेला जाना उसने भी ठीक नहीं समझा। वह दो पुलिस के आदमियों को लेकर भागा हुआ ऊपर पहुंचा। वह महिला वहां अकेली थी। उसने पूछाः वह दूसरा आदमी कहां है?
उसने कहाः आप देखते नहीं, वह सामने!

लेकिन सामने तो खिड़की थी, और कोई आधा मील तक कोई दूसरा मकान भी नहीं था। मैनेजर ने कहाः कोई हमें दिखाई नहीं पड़ता, कहां है?
उसने कहाः वह सामने वाले मकान में देखिए।
आधा मील दूर एक मकान था, वहां तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। उस मैनेजर ने कहाः हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
वह हंसी, उसने अपनी टेबल पर से दूरबीन उठाई और कहाः दूरबीन से देखिए,
वह आदमी छत पर बिल्कुल उघाड़ा खड़ा हुआ है।
मैनेजर हैरान हुआ कि यह कैसी पागल औरत है! उसने नीचे खबर की कि एक आदमी मेरे साथ बहुत दुर्व्यवहार कर रहा है!
यह जो स्त्री है, इसने मन में सेक्स की भावनाओं को निरंतर दबाया होगा,
तो अब यह दूरबीन लगा-लगा कर, दूरबीन लगा-लगा कर देख रही है कि कौन-कौन इसके साथ दुर्व्यवहार कर रहा है, कौन-कौन इसके संयम को तोड़ने की कोशिश कर रहा है, कौन-कौन इसे नरक के रास्ते पर ले जाने के लिए चेष्टारत है। दूर मकान पर कोई आदमी व्यायाम कर रहा था अपनी छत पर। वह आदमी उघाड़ा होकर हाथ-पैर हिला रहा है इसको देख कर ही, यह अपनी दूरबीन से देख कर समझ रही है।
ये दमित चित्त हैं, ये कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध चित्त नहीं हैं। और ऐसे दमित चित्त बड़े खतरनाक हैं। और ऐसे दमित चित्त ही सेक्स के संबंध में जो निंदा का प्रचार करते हैं, वही आमजन पकड़ लेते हैं और दोहराते हैं। और यही चिल्लाते रहते हैं कि फलां नरक है, ढिकां नरक है, यह बात बुरी है, वह बात बुरी है। इनको भारी चिंता लगी रहती है, भारी चिंता। और इनकी चिंता बड़ी आश्चर्यजनक है! इनको तो चिंता होनी ही नहीं चाहिए।
अभी दिल्ली में हिंदुस्तान के बहुत से बड़े साधु इकट्ठे हुए और उन्होंने कहा कि अश्लील पोस्टर नहीं लगने चाहिए, अश्लील पोस्टर दीवालों पर नहीं होने चाहिए, अश्लील फिल्में नहीं होनी चाहिए, अश्लील उपन्यास नहीं होने चाहिए। मैंने उनसे पूछा कि आप इनको पढ़ते कैसे हैं? इन पोस्टरों को देखते कैसे हैं? साधु होकर आपको इनसे प्रयोजन कहां है? ये आपको दिखाई कैसे पड़ जाते हैं? और आपको इनकी चिंता इतनी क्यों है?
जरूर इनको आपसे ज्यादा दिखाई पड़ते होंगे। जब एक साधु सड़क से निकलता होगा, तो जो फिल्म का पोस्टर लगा है, शायद आपने न भी देखा हो, उसको जरूर दिखाई पड़ता है, वह दूरबीन लगा कर देखता है। देखना बिल्कुल स्वाभाविक है। उसने चित्त में जिन-जिन वृत्तियों को दबा कर रखा है, वही-वही उखड़-उखड़ कर उसके सामने आ जाती हैं।
आपने सुना होगा, साधु-संन्यासी जब बड़ी तपश्चर्या करते हैं, तो स्वर्ग
की अप्सराएं आकर उनको डिगाती हैं।
आप पागल हो गए हैं! स्वर्ग की अप्सराओं ने कोई धंधा खोल रखा है कि इनको डिगाने आएंगी! और यह क्या पागलपन है? नहीं, कोई अप्सराएं नहीं आतीं। इनके चित्त में ही दमित जो वासनाएं हैं, जब चित्त शिथिल होता है और मन कमजोर होता है, वे ही वासनाएं अप्सराएं बन कर खड़ी हो जाती हैं। कोई वहां है नहीं। अगर आप जाओगे तो आपको कोई अप्सराएं न दिखाई पड़ेंगी। लेकिन वे मरे जा रहे हैं, आंख दबा-दबा कर डरे जा रहे हैं, अप्सराएं नाच रही हैं उनके आस-पास। ये अप्सराएं रुग्ण चित्त से पैदा हुई कल्पनाएं हैं, ये कहीं कोई स्वर्ग वगैरह से आतीं नहीं। नहीं तो स्वर्ग में किसने धंधा खोल रखा होगा यह सब काम को करने का? और किसको प्रयोजन है कि इनको डिगाए? इनकी तपश्चर्या से कौन परेशान है? लेकिन कथाएं यह कहती हैं कि इंद्र का आसन डांवाडोल हो जाता है इनकी तपश्चर्या से, तो वे अपनी अप्सराएं भेजते हैं इनको बिगाड़ने के लिए, बर्बाद करने के लिए। ये बिल्कुल ही पागल चित्त से पैदा हुई आकृतियां हैं, ये आकृतियां कहीं हैं नहीं। लेकिन इन्होंने जो-जो दबाया है, वह इनके सामने रूप लेकर खड़ा हो जाता है, अति दमित स्थिति में चीजें रूप लेकर खड़ी होने लगती हैं।
यह हजारों साल से चलता रहा है। और हमने इसका कोई ख्याल नहीं किया कि
यह बात क्या है? नहीं तो जो व्यक्ति शांति से, प्रेम से और आनंद से भर गया है, जिसके चित्त में काम की वासना परिवर्तित, रूपांतरित होकर प्रेम की अभिव्यक्ति बन गई है, उसे न तो कोई अप्सराएं आने का सवाल है, न उसके सपनों

में स्त्रियों के खड़े होने का सवाल है, न अगर वह स्त्री हो तो दूर छतों पर दूरबीन से देखने की कोई जरूरत है कि वहां कोई पुरुष दुर्व्यवहार कर रहा है। चित्त जैसे-जैसे शांत होता चला जाएगा, ये सारी विकृतियां विलीन हो जाएंगी।
एक बात, जैसे ही प्रेम गहरा होगा, वैसे ही सेक्स विलीन हो जाएगा। जितना गहरा हृदय में प्रेम होगा, उतना ही सेक्स विलीन हो जाएगा। और जितना हृदय में गहरा प्रेम होगा, जीवन उतने ही ओज से भर जाएगा। प्रेम के अतिरिक्त और कोई ओज नहीं है, प्रेम के अतिरिक्त और कोई तेजस्विता नहीं है, प्रेम के अतिरिक्त और कोई सौंदर्य नहीं है, प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी परमात्मा का नहीं है।
लेकिन ये जो तथाकथित ब्रह्मचारी और ये वीर्य के संरक्षण करने वाले और
ये सब जो बातें हैं, ये सारे के सारे लोग प्रेम से बहुत भयभीत हैं, ये प्रेम से बहुत डरे हुए हैं। और जहां भय है, वहां ओज क्या होगा? जहां भय है, वहां ओज कैसे होगा? ओज तो वहां होता है जहां फियरलेसनेस है, जहां अभय है। इनकी स्थिति तो बड़ी कमजोर है। इनकी स्थिति तो बड़ी कमजोर है। और ये जिन चीजों से लड़ रहे हैं, जिन चीजों को दबा रहे हैं, वे ही चीजें इनके जीवन का संघर्ष बन गई हैं, वे ही इनके जीवन के प्राणों को सोखे जा रही हैं।
मैं सैकड़ों साधुओं को जानता हूं, जब वे मुझसे सबके सामने मिलते हैं,
तो आत्मा-परमात्मा की बातें पूछते हैं--कि आत्मा है या नहीं? परमात्मा है या नहीं? ईश्वर ने दुनिया बनाई या नहीं? लेकिन जब वे मुझे अकेले में, एकांत में मिलते हैं, तो सिवाय सेक्स के और कोई दूसरी बात नहीं पूछते। जब वे सबके सामने बातें पूछते हैं, तो आत्मा-परमात्मा की; जब अकेले में पूछते हैं तो कहते हैं, यह सेक्स के साथ क्या किया जाए? यह तो हमारे प्राण खाए जा रहा है, यह तो निरंतर हमको सताए हुए है।
यह स्वाभाविक है। इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह होगा, यह होना निश्चित है। जीवन सरलता से विकसित होता है, दमन से, सप्रेशन से नहीं। जिस चीज को भी हम दबा लेते हैं, वही चीज घातक रोगाणु की तरह भीतर इकट्ठी होने लगती है। आज नहीं कल उसका विस्फोट होगा और चित्त दिक्कत में पड़ जाएगा।
मैं एक छोटी सी कहानी निरंतर कहता रहा हूं, वह मैं आपसे कहूं। फिर उसके बाद मैं दूसरा प्रश्न लूं।
दो भिक्षु, कोरिया की कहानी है, दो भिक्षु एक नदी को पार कर रहे हैं, पहाड़ी नदी को। एक युवती नदी के किनारे खड़ी है, उसे भी नदी पार होना है। लेकिन युवती अकेली है, पहाड़ी नदी है अपरिचित और बिना सहारे के उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही है कि वह पार हो जाए। वृद्ध भिक्षु आगे-आगे आया है, उसके मन में हुआ कि मैं इसे हाथ का सहारा दे दूं और नदी पार करा दूं। उसने कोई तीस वर्ष से किसी स्त्री का स्पर्श नहीं किया है, अपने को दूर-दूर रखा है, दीवालें खड़ी कर रखी हैं, निरंतर दूर भागता रहा है। उसके मन में ख्याल आया, हाथ का सहारा दे दूं। कोई सत्तर वर्ष की उसकी उम्र है। लेकिन यह ख्याल ही मन में आते से कि हाथ का सहारा दे दूं और कल्पना में ही हाथ का हाथ से स्पर्श होते ही उसके मन में तो तीस साल से सोई हुई वासना जाग पड़ी, जिसको मंत्रों से दबाया हुआ था, जप करके दबाया हुआ था, वह मौजूद है, वह जा नहीं सकती कहीं, वह जाग उठी, उसे एक तरह का रस मालूम हुआ। तभी वह घबड़ा भी गया, उसे याद आया अपने संयम, अपने वैराग्य का कि मैं यह क्या कर रहा हूं! तीस साल की तपश्चर्या, जरा सा हाथ छूकर नष्ट हो जाएगी!
और ऐसी तपश्चर्या का मूल्य भी कितना है जो एक स्त्री के हाथ छूने से नष्ट हो जाए? और ऐसी तपश्चर्या कहीं मोक्ष ले जाएगी? कैसे पागलपन का मन है?
लेकिन उसने सोचा कि यह तो बड़ा सब गड़बड़ हो जाएगा। उसने आंखें बंद कीं
और वह नदी पार होने लगा। उस युवती को तो पता भी नहीं है कि साधु बेचारा स्वर्ग से नरक तक पहुंच गया इतने जल्दी, मोक्ष छिना जा रहा है, आवागमन का मार्ग फिर से खुला जा रहा है। उसे पता भी नहीं, वह अपने किनारे खड़ी है। यह

तो इन्होंने अपने मन में ही सब हिसाब-किताब लगाया है। वह आंख बंद किए नदी पार करने लगा।
लेकिन आंख बंद करने से कुछ होता है? आंख बंद करने से स्त्री और भी सुंदर हो जाती है। खुली आंख से देखने पर स्त्री में क्या सौंदर्य है? या पुरुष में क्या सौंदर्य है? और आंख अगर और भी गहरी हो, तो सिवाय हड्डी और मांस के क्या रह जाएगा? और अगर आंख और भी एक्सरे वाली हो, तब तो बहुत घबड़ाहट हो जाएगी। लेकिन आंख अगर बंद हो, तो फिर बहुत सुंदर हो जाता है, सब बहुत सुंदर हो जाता है। बंद आंख में सब सपने हो जाते हैं। जो स्त्री कभी इतनी सुंदर नहीं, बंद आंख में बहुत अलौकिक रूपसी होकर प्रकट होने लगती है, अप्सरा बन जाती है सामान्य स्त्री आंख बंद करते से।
तो मैं कहता हूंः आंख खोलो और स्त्री को ठीक से देख लो, तो मुक्त हो सकते हो। आंख बंद किया तब तो स्त्री से छुटकारा मुश्किल है, या स्त्री के लिए कहूं तो पुरुष से छुटकारा मुश्किल है।
वह आंख बंद करके बढ़ा, स्त्री और भी सुंदर होकर प्रकट होने लगी। एक साधारण सी गांव की लड़की थी जो वहां खड़ी थी। उसका मन बार-बार डोलने लगा कि पीछे जाऊं, सहारा दे ही क्यों न दूं! इसमें क्या बिगड़ने वाला है? और यहां कोई देखने वाला भी तो नहीं! कोई गुरु को भी खबर करने वाला नहीं है, कोई खास बात भी नहीं है। लेकिन फिर मन में दोहरा द्वंद्व खड़ा हो गया कि तीस साल की तपश्चर्या है, जरा सी बात में खत्म कर रहा हूं। अरे यह असार संसार है, इसकी बातों में पड़ना नहीं चाहिए। यह तो सब, यही तो नरक का द्वार है, सोचा होगा, इसी में तो चक्कर हो जाएगा।
वह किसी तरह नदी पार हुआ। वह उस पार पहुंचा, बहुत थका-मांदा था, क्योंकि जो चित्त इतनी कांफ्लिक्ट में पड़ जाए, इतनी दुविधा में, द्वंद्व में, वह थक ही जाता है। तभी उसे ख्याल आया कि उसके पीछे ही पीछे थोड़ी दूर पर उसका युवक साथी भी आ रहा है, एक दूसरा भिक्षु। वह अभी अनजान है, अनुभवी भी नहीं है, कहीं वह भी इसी दया के झंझट में न पड़ जाए जिसमें मैं पड़ा, कहीं उसे भी दया न आ जाए इस युवती पर, उसे नदी पार कराने का ख्याल न सोचने लगे। उसने पीछे लौट कर देखा, देख कर हैरान हो गया! वह युवक भिक्षु उस लड़की को कंधे पर लिए उतर रहा है! उसके प्राणों में तो आग लग गई। आग के कई कारण थे। एक तो कारण था कि वह खुद वंचित रह गया उस लड़की को कंधे पर लेने से, बुनियादी तो यही था। दूसरा उपदेश देने से वंचित रह गया। तीसरा चित्त में बहुत क्रोध आया कि मुझसे बिना आज्ञा लिए मेरी मौजूदगी में और यह युवक क्या कर रहा है? सभी बूढ़ों को आता है। युवक को कुछ न करने देंगे वे बिना आज्ञा लिए। और सभी वृद्धजनों को एक ईर्ष्या पकड़नी शुरू होती है युवकों से, क्योंकि युवक जो कर रहे हैं, उसमें से बहुत कुछ वे नहीं कर पाए और न कुछ करने की स्थिति में अब हो गए।
बहुत कठिनाई हो गई उसे। अब कोई विकल्प भी न रहा। लेकिन उसने सोचा कि
आज जाकर गुरु से कहूंगा और इसको या तो निकाल कर बाहर करवाऊंगा आश्रम से, यह तो हद्द पाप की बात हो गई! इतनी देर से खुद उसी पाप को करने का विचार करता था, वह भूल गया। यह तो हद्द पाप की बात हो गई! गुस्से में आगे-आगे चला, पीछे- पीछे वह युवक भी आया। दोनों द्वार पर मिले। उस बूढ़े आदमी ने कहा कि सुनते हो, यह बरदाश्त के बाहर है। बात छिपाई नहीं जा सकती, मुझे गुरु से कहना ही होगा, नियम उल्लंघन हुआ है, भिक्षु जीवन का नियम खंडन हुआ है। तुमने उस लड़की को कंधे पर क्यों उठाया?
उस युवक ने कहाः मैं बहुत आश्चर्य में हूं। मैं तो उस लड़की को कोई दो मील पीछे कंधे से उतार भी आया, आप उसे अब भी कंधे पर लिए हुए हैं! उस युवक ने कहाः मैं उसे कंधे से उतार भी आया, आप उसे अब भी कंधे पर लिए हुए हैं। और कंधे से केवल वही उतार सकता है, जिसने कभी लिया ही न हो। स्मरण रखें, कंधे से केवल वही उतार सकता है, जिसने कभी कंधे पर लिया ही न हो। और केवल इतने से कि हमने कंधे पर नहीं लिया है, इस भ्रम में कोई न रहे कि वह कंधे पर नहीं है।
जैसे-जैसे चित्त दमन करता है, वैसे-वैसे चीजें सिर पर चढ़ती चली जाती हैं। चीजों को सहजता से लें, चीजों को सहजता से जानें, चीजों के प्रति

अत्यंत स्वाभाविक रूप से जागरूक हों, तो कोई कारण नहीं है कि जीवन धीरे- धीरे सभी बंधनों से मुक्त हो जाए और एक परम मुक्ति की अवस्था चेतना को उपलब्ध हो सके। लेकिन जिन लोगों ने दमन किया है, वे कभी मुक्त नहीं हो सकते हैं। दमन ही उनका बंधन बन जाता है।
तो मैं तो आपसे कहूंगा, निवेदन करूंगा, जीवन को बहुत सहजता से लें, उसके निसर्ग को बहुत सहजता से स्वीकार करें। और जीवन को देखें आंख खोल कर। आंख बंद करके कभी कोई देख नहीं सकता। पूरी आंख खोल कर देखें। और जो चीज जितनी आकर्षक मालूम होती है, उतने निकटता से उसका निरीक्षण करें। आप पाएंगे, आकर्षण विलीन हो गया। अगर स्त्रियां आकर्षक मालूम होती हों पुरुषों को, तो स्त्रियों से भागें न। अगर स्त्रियों को पुरुष आकर्षक मालूम होते हों, तो पुरुषों से भागें न। भागने से तो आकर्षण सदा के लिए स्थायी हो जाएगा। आकर्षण भीतर एक फोड़े की तरह बैठ जाएगा।
मैं देखता हूं कि जिन चीजों को हम उनकी पूरी नग्नता में और पूरी सत्यता में जान लेते हैं, उनसे हम मुक्त हो जाते हैं। तो जिस जीवन के बंधन से सच में ही मुक्त होना हो, उस बंधन को उसकी पूरी सच्चाई में और सहजता में देखें और जानें और मन में कोई दुविधा और द्वेष और द्वंद्व खड़ा न करें। जरूर जीवन के अनुभव से, निरीक्षण से, बोध से, अमूर्च्छित होकर देखने और समझने से, एक वक्त आपके जीवन में आएगा जिसमें स्त्री और पुरुष के बंधन और फासले टूट जाएंगे और विलीन हो जाएंगे और उस आत्मा का दर्शन होगा जो न स्त्री है और न पुरुष है। देह से दृष्टि उठ सकती है। लेकिन जितना दबाएंगे, उतना देह से दृष्टि बंध जाएगी। जितना रोकेंगे, उतना बंधेंगे; जितना भागेंगे, उतना भयभीत होंगे; जितने भयभीत होंगे, उतनी ही छायाएं पीछा करेंगी, जो कि अगर रुक जाएं, तो पीछा नहीं करतीं, ठहर जाएं, वे भी आपके पीछे दौड़ना बंद कर देती हैं। खुली आंख से देखें, तो पता चलता है, शैडोज, छायाएं हैं, उनमें कोई भी प्राण जैसा तत्व नहीं। न भय का कोई कारण है, न भागने का कोई कारण है। जो पलायन करता है, वह बंधता चला जाता है; जो चित्त का परिवर्तन करता है, वह मुक्त हो जाता है।
तो इस पर सोचें। अन्यथा जो हो रहा है अनेक-अनेक लोगों के जीवन में जो दुख, वह आपके जीवन में भी होगा और जो नरक वे पैदा कर रहे हैं अपनी ही गलत दृष्टियों से, वह आप भी पैदा कर लेंगे। नरक कहीं है नहीं, हर आदमी अपना पैदा करता है।
एक फकीर हुआ, उसका एक शिष्य बहुत बार उसके पीछे पड़ गया कि आप नरक-स्वर्ग की बहुत बातें करते हैं, कभी मुझे भी तो दिखलाइए!
वह फकीर टालता रहा। लेकिन जब नहीं माना युवक, तो उसने कहाः आज तुम आ ही जाओ, आज अमावस की रात है, आज मैं तुम्हें दिखला ही दूं।
वह युवक आया, उसे एक कोठरी में उसने बंद किया और कहाः आंख बंद कर लो, मैं बाहर बैठा रहूंगा और कहूंगा कि जाओ, नरक पहुंच जाओ! तुम नरक में पहुंच जाओगे, गौर से देख लेना वहां क्या दिखाई पड़ता है। फिर मैं तुम्हें वापस लौटाऊंगा, कहूंगा, वापस लौट आओ। फिर आज्ञा दूंगा, स्वर्ग में चले जाओ! तुम स्वर्ग पहुंच जाओगे, स्वर्ग को भी देख लेना। उसने युवक को बिठाया और कहा कि देखो, आंख बंद कर लो अंधेरे में। उसने आंख बंद कर लीं। उसने कहाः जाओ, नरक में पहुंच जाओ। फिर उसने कहाः वापस लौट आओ। और कहाः स्वर्ग में पहुंच जाओ। फिर थोड़ी देर बाद उसने कहाः वापस लौट आओ, आंखें खोलो, मुझे बताओ कि क्या देखा?
उसने कहाः मैं तो बड़ा मुश्किल में हो गया, न तो नरक में मुझे कुछ दिखाई पड़ा और न स्वर्ग में मुझे कुछ दिखाई पड़ा। और आप तो कहते थे कि नरक में आग की लपटें जल रही हैं और स्वर्ग में कल्पवृक्ष खड़े हैं जिनके नीचे सब कामनाएं पूरी हो रही हैं, वह तो मुझे कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा।
तो वह फकीर हंसने लगा, उसने कहा कि वह तो तब दिखाई पड़ेगा, जो तुम अपने साथ ले जाओगे वही दिखाई पड़ेगा। अगर तुम नरक अपने साथ ले जाओगे तो तुम्हें नरक दिखाई पड़ेगा, अपने साथ स्वर्ग ले जाओगे तो स्वर्ग दिखाई पड़ेगा। अभी तुम कोरे कागज हो, अभी तुम्हारे पास न नरक है, न स्वर्ग, तो दिखाई क्या पड़ेगा? उस फकीर ने कहा कि वह तो तुम्हें अपने साथ ले जाना पड़ेगा, जो वहां

देखना है उसे। अगर नरक की कड़ाहियां देखनी हैं जलती हुई आग की, तो अपने साथ ले जानी पड़ेंगी; और अगर स्वर्ग के फूल और सुगंध देखनी है, तो वह भी अपने साथ ले जानी पड़ेगी।
स्वर्ग और नरक मन की अवस्थाएं हैं और हम उन्हें निर्मित करते हैं। हम उनमें जाते नहीं, हम उन्हें बनाते हैं, वे हमारे साथ हैं, वे कहीं दूर नहीं हैं, कोई ज्योग्रॉफिकल, कोई भूगोल में कहीं नरक और स्वर्ग नहीं हैं। स्वर्ग है कहीं तो साइकोलाजिकल है, मानसिक है, अंतःकरण में है। तो अगर आपको इस तरह के स्वर्ग-नरक दिखाई पड़ते हों दुनिया में, तो आप समझ लेना कि आप उनको बना रहे हैं। यही जमीन है, ये ही लोग हैं, यही सब कुछ है, ये ही चांद-तारे हैं। जो आदमी ठीक से देखने में समर्थ हो जाता है, उसे यहां स्वर्ग उपलब्ध हो जाता है, यहीं परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं, यहीं वह मुक्त हो जाता है। और जो आदमी गलत ढंग से देखने की आदत में ग्रसित हो जाता है, यही फूल, यही जमीन, यही चांद-तारे, यही लोग नरक हो जाते हैं और यहीं वह गहरे बंधन में पड़ जाता है।

और बहुत से प्रश्न हैं, उनकी मैं बाद में बात करूं। कल बात कर लूंगा। अभी तो हमें रात्रि के ध्यान के लिए बैठना पड़ेगा।
यहां मैंने जान कर उधर से तकलीफ दी और यहां बुलाया कुछ कारणों से।
एक तो इस कारण से कि वहां आस-पास प्रकृति की कोई ध्वनि नहीं है जहां हम बैठते थे। यहां बहुत ध्वनियां हैं, यहां बहुत छोटी-छोटी आवाजें गूंज रही हैं। तो ध्यान के लिए वहां बहुत कम आवाजें थीं। जब मन शांत होने लगे तब तो वहां भी बहुत सी धीमी ध्वनियां सुनाई पड़ सकती हैं। लेकिन जब तक न हो, तब तक यहां बहुत बड़ा म्यूजिक, बहुत बड़ा संगीत चारों तरफ है। यह संगीत बहुत गहरे में ले जाएगा।
फिर वहां हम एक पंडाल के नीचे बैठते थे, जो आदमियों के द्वारा ठोंका
और खींचा गया है। और आदमियों ने सब तरह के पंडाल खींचे हैं, शास्त्रों के, धर्मों के और उनके नीचे हम बैठे हैं। उससे भी मुझे जरा घबड़ाहट हो रही थी। यहां हम परमात्मा के पंडाल के नीचे बैठेंगे। यहां आदमी का खींचा हुआ कुछ भी नहीं है। ऊपर दरख्त हैं, और ऊपर आकाश है, और ऊपर चांद है, और बड़ी दुनिया है और विराट पंडाल है, उसके निकट हम होंगे। जब हम छोटी-छोटी दीवालों में बंद होते हैं, तो मन भी सिकुड़ जाता है और छोटा हो जाता है। जितने विस्तार पर हम होंगे, उतना मन विस्तीर्ण होता है और यात्रा करता है। अगर कोई व्यक्ति रोज थोड़ी देर आंख खोल कर आकाश को ही देखता रहे, तो उसकी आत्मा बड़ी होने लगेगी। लेकिन हम तो आदमियों के छोटे-छोटे छप्परों को देखते हैं और उन्हीं में जीते हैं।
लंदन में पीछे एक सर्वे हुआ, और वहां के बच्चों से पूछा गया, तो पता चला, पंद्रह लाख बच्चे ऐसे हैं लंदन में जिन्होंने खेत नहीं देखा। दस लाख ऐसे बच्चे हैं जिन्होंने गाय नहीं देखी। इन बच्चों के जीवन में क्या होगा? इन बच्चों का जीवन तो विकृत हो जाएगा। जिन्होंने गाय नहीं देखी, जिन्होंने खेत नहीं देखे, जिन बच्चों ने सिर्फ मकान देखे हैं, सड़कें देखी हैं, भागती हुई मोटरें और धुआं देखा है और टेनें देखी हैं, यही सब देखा है, तो इनका चित्त मनुष्य की निर्मित जो दुनिया है उससे ऊपर नहीं उठ सकता।
तो इसलिए मैंने चाहा कि वहां से हम यहां आएं। यहां ऊपर दरख्त हैं, चांदनी है और बहुत अदभुत दुनिया है। और फिर यह चारों तरफ प्राण की गूंजती हुई आवाज है। तो यहां ध्यान में जाना बहुत, बहुत सरलता से, बहुत अदभुत रूप से हो सकेगा। हम जिनके करीब रहते हैं वैसे ही हो जाते हैं। अगर आप फूलों के करीब बहुत दिन रहें, तो फूलों की गंध आपमें प्रविष्ट हो जाएगी। अगर आप दरख्तों के पास बहुत दिन रहें, तो आपका चित्त भी उन्हीं जैसा मौन होने लगेगा। अगर आप सागर के किनारे बैठें, तो वैसे ही विस्तार तरंगें आपके हृदय को भी छुएंगी। अगर आप झरनों के पास बैठे हैं, तो झरने आपमें प्रविष्ट हो जाएंगे। हम जिन चीजों के करीब रहते हैं निरंतर, वे चीजें हममें प्रविष्ट होने लगती हैं।

लेकिन हम निरंतर मनुष्यों के निकट रहते हैं और मनुष्य जो सोचते हैं उसे ही सुनते हैं, मनुष्य जो विचार करते हैं उसी को जानते हैं। और मनुष्य क्या विचार करते हैं? वे या तो सुबह से अखबार पढ़ते हैं और चुनावों की बातें करते हैं, या हड़तालों की बातें करते हैं, या अनशनों की बातें करते हैं, या कहां दंगा-फसाद हो गया उसकी बात करते हैं, या कहां हिंदू धर्म खतरे में है या कहां मुसलमान धर्म खतरे में है उसकी बातें करते हैं, या ताश खेलते हैं, या शराब पीते हैं, या जुआ खेलते हैं, या विवाद करते हैं, इस तरह के कुछ काम हैं। मनुष्य के पास जितने ज्यादा हम रहते हैं, उतने ही हम छोटे होते चले जाते हैं। लेकिन हमें अपना छोटा होना पता नहीं चलता, क्योंकि हमारे चारों तरफ भी उसी तरह के छोटे लोग रहते हैं और हमें यह तृप्ति रहती है कि और लोग भी तो ऐसे ही हैं।
यह जो हमारे मनुष्य को छोड़ कर चारों तरफ फैला हुआ विराट विश्व है, इस विराट विश्व ने अभी भी परमात्मा से संबंध नहीं छोड़ा है। ये पौधे अब भी परमात्मा के हमसे ज्यादा निकट हैं, ये चांद-तारे अब भी ज्यादा निकट हैं, ये छोटे-छोटे कीड़ों की झंकार अब भी हमसे ज्यादा निकट है, अब भी यह पहाड़ियों की साइलेंस और सन्नाटा हमसे ज्यादा निकट है परमात्मा के। मनुष्य सर्वाधिक अपने ही द्वारा निर्मित कोलाहल में बंद हो गया है। मनुष्य को हटा दें जमीन से, अब भी साइलेंस है, अब भी अदभुत सन्नाटा है, अदभुत संगीत है। तो इसलिए मैंने चाहा कि इधर हम होंगे और थोड़ी देर इस शांति में और सन्नाटे में बैठेंगे।
ध्यान के लिए तो मैंने आपको कहा, बहुत सरल सी बात है। अभी हम सब लोग थोड़े-थोड़े एक-दूसरे से दूर बैठें। इस रात का पूरा उपयोग करें। कुछ हो सकता है, भीतर कुछ पैदा हो सकता है। थोड़ा-थोड़ा दूर बैठें, न तो सर्दी की फिकर करें और न किसी और चीज की। थोड़े फासलों पर बैठ जाएं और इस रात का जो भी फायदा मन को मिल सकता है उसे मिलने दें।
देखें, एक-दूसरे को न छुएं। आदमी आदमी से थोड़ा बचें, आदमी बड़ा खतरनाक प्राणी है, थोड़ा सा मोह छोड़ें उसके फासले का। जरा थोड़ा सा हट जाएं। देखें, थोड़ा हटें, यहां तो काफी भीड़-भाड़ किए बैठे हैं। इतने भी नहीं हटेंगे तो मैं इतनी जो बातें कर रहा हूं उसमें कहां हटेंगे, मुश्किल है। थोड़ा जमीन ही नहीं छोड़ते!

साक्षी की साधना
आठवां प्रवचन

समाधि का आगमन

श्रद्धा से मुक्ति और विवेक का जागरण, इस संबंध में थोड़ी सी बातें हमने कीं। श्रद्धा से मुक्त होते ही चित्त स्वतंत्र होता है, विवेक जागरण के लिए भूमिका बनती है। बिना श्रद्धा से मुक्त हुए विवेक जाग्रत होने का कोईर् भी कारण नहीं है। विवेक जाग्रत हो, तो अत्यंत प्रखर, अत्यंत तेजस्वी बुद्धिमत्ता का जन्म होता है। विचार का, अत्यंत विचारपूर्ण जीवन-दृष्टि का प्रारंभ होता है। उसके बिना समाधि को उपलब्ध करना संभव नहीं है।
आज के तीसरे चरण में, समाधि का आगमन कैसे हो, उस संबंध में हम विचार करेंगे।
समाधि साधी नहीं जा सकती, लेकिन उसका आगमन हो सकता है। यह तो पहली बात है, जो जान लेनी जरूरी है। समाधि साधी नहीं जा सकती, उसका आगमन हो सकता है। जैसे हम घर के भीतर सूर्य के प्रकाश को गठरियों में बांध कर नहीं ला सकते, लेकिन अगर द्वार खुला छोड़ दें तो प्रकाश आ सकता है। लाया नहीं जा सकता, आ सकता है। तो समाधि के आगमन में हमें जो करना है, वह द्वार खोलने जैसा काम है। अत्यंत नकारात्मक है, निगेटिव है। सिर्फ बाधाएं हटा देने की जरूरत है, समाधि आएगी।
एक छोटी सी घटना से इस बात को मैं समझाने की कोशिश करूं।
रवींद्रनाथ एक बजरे पर यात्रा करते थे। बहुत जीवन की रात्रियां उन्होंने नदियों पर और बजरों में व्यतीत कीं। शायद यही कारण होगा कि उनके काव्य में जो निसर्ग की ध्वनि है, वह बहुत कम काव्यों में होती है। जो सरिताओं की कल-कल और शीतल-स्वच्छ हवाओं की जो छाप उनके गीतों पर है, वह मुश्किल से होती है। क्योंकि अधिक लोग तो बंद कमरों में गीत लिखते हैं, तो उन गीतों में भी वैसा बंदीगृह स्वभाव छिपा होता है। या मिट्टी के तेल से जलती लालटेन के किनारे बैठ कर लिखते हैं, तो वह साहित्य में भी घासलेट की बास आ जाती हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है।
रवींद्रनाथ ने जीवन का बहुत अधिक समय निसर्ग के अनुकूल व्यतीत किया।
वे चांद की रातें थीं और वे बजरे पर थे। एक छोटी सी मोमबत्ती को जला कर देर तक कोई शास्त्र पढ़ते रहे, फिर दो बजे के करीब रात मोमबत्ती बुझाई, लेटने को बिस्तर पर हुए, तो लेट नहीं सके, उठ आए। बजरे के बाहर, नाव पर निकल आए, और उन्होंने एक गीत उस रात लिखा, और उस गीत में उन्होंने यह कहा कि मुझे इस सत्य का आज तक पता भी नहीं था। मैं भीतर बजरे की कोठरी में मोमबत्ती जलाए बैठा था और बाहर पूर्णिमा का चांद था। लेकिन पूर्णिमा की रोशनी बाहर रुकी रही। बजरे की खिड़कियों और द्वारों से उसने प्रवेश न किया, वह छोटी सी मोमबत्ती का प्रकाश बाधा बना हुआ था। जैसे ही मैंने मोमबत्ती बुझाई, मोमबत्ती के बुझते ही चांद की अपूर्व किरणें चारों तरफ रंध्र-रंध्र से बजरे में प्रविष्ट हो गईं, द्वार से, खिड़कियों से, सब तरफ से चांद भीतर आ गया। और तब रवींद्रनाथ ने कहा कि मैंने जाना कि मेरी छोटी सी मोमबत्ती का पीला सा प्रकाश बड़ी बाधा बना था। द्वार पर चांद की रोशनी खड़ी थी, लेकिन द्वार पर ही ठिठकी खड़ी रही, भीतर प्रवेश न कर सकी। मोमबत्ती के बुझते ही भीतर आ गई।
हमारे भीतर कुछ बाधाएं हैं, जो परमात्मा के प्रकाश को बाहर रोके हुए खड़ी हैं। द्वार पर रुका है प्रकाश। समाधि का आनंद निकट है चारों तरफ, लेकिन हममें कुछ बाधाएं हैं, जो उसे रोके हैं। उसे लाना नहीं है, उसे लाया नहीं जा सकता, केवल बाधाएं अलग कर देनी हैं, वह आ जाएगा अपने से और सहज। और जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है--प्रेम या परमात्मा, या सौंदर्य का बोध, या सत्य की अनुभूति--वह कोई भी लाई नहीं जा सकती, सिर्फ बाधाएं हम अलग कर दें, वह आ जाती है। क्योंकि जिसे भी हम लाएंगे वह हमसे बड़ा नहीं हो सकता।
इसे स्मरण रखें! मनुष्य का चित्त जिस चीज को भी ला सकता है, वह मनुष्य
के चित्त से बड़ी नहीं हो सकती, उससे क्षुद्र होगी। और मनुष्य का चित्त ही बहुत क्षुद्र है, तो वह जो लाएगा वह अति क्षुद्र होगा। मनुष्य जो भी लाएगा

और बनाएगा वह अति क्षुद्र होगा। क्योंकि मनुष्य ही तो बनाएगा उसे और लाएगा।
समाधि या परमात्मा की अनुभूति मनुष्य की लाई हुई अनुभूति नहीं।
मनुष्य क्या कर सकता है?
मनुष्य केवल द्वार दे सकता है। मनुष्य केवल मार्ग छोड़ सकता है। मनुष्य केवल बाधाएं अलग कर सकता है। जो हिंडरेंसेज हैं, उन्हें अलग कर सकता है। फिर कुछ आएगा, जो मनुष्य से ज्यादा विराटतर है, जो मनुष्य से विशाल है, जो मनुष्य से बहुत बड़ा है, मनुष्य का बहुत अतिक्रमण कर जाता है। तो एक बात प्राथमिक रूप से समाधि के संबंध में जान लेनी जरूरी है कि समाधि साधी नहीं जा सकती, आ सकती है। मनुष्य का मन कुछ भी ऐसा नहीं कर सकता कि वह समाधि को पा ले। हां, जो बाधाएं हैं, उन्हें अलग करके प्रतीक्षा कर सकता है। बाधाएं हटते ही द्वार खुल जाता है, प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ती। इसलिए समाधि की सारी साधना निगेटिव है, नकारात्मक है। कुछ चीजें हटा देनी हैं, कुछ चीजें मार्ग से हटा देनी हैं, रास्ता साफ कर देना है। फिर कोई आएगा, फिर कोई आएगा, कुछ होगा। और वह कुछ फिर हमारे हाथ का नहीं होगा, हमसे बहुत बड़ा होगा। हमें बहा ले जाएगा, हम मिट जाएंगे उसमें।
यह प्राथमिक रूप से समझ लेना जरूरी है। अन्यथा साधक, धर्म की दिशा में जाने वाले लोग इसी ख्याल में होते हैं कि वे साधेंगे, वे साध लेंगे--समाधि साध लेंगे, यह कर लेंगे, वह कर लेंगे, परमात्मा का दर्शन कर लेंगे। ये सारी की सारी बातें अत्यंत अहंकारग्रस्त हैं--कि मैं मोक्ष को पा लूंगा, मैं परमात्मा को पा लूंगा, मैं योग साध लूंगा, मैं ध्यान साध लूंगा--ये सब अहंकारग्रस्त हैं। ये बहुत नासमझी की बातें हैं।
यह तो समझ में भी आ सकता है कि आप एक मकान बना लेंगे, एक दुकान खोल लेंगे, आप किसी राज्य के मंत्री हो जाएंगे या कुछ और हो जाएंगे। यह तो समझ में भी आ सकता है, क्योंकि ये सब बातें अत्यंत क्षुद्र हैं। मनुष्य का मन इन्हें करने में समर्थ है। लेकिन जब कोई मनुष्य ऐसा सोचने लगता है कि मैं परमात्मा को पा लूंगा, मैं मोक्ष पा लूंगा, मैं आत्मा को साध लूंगा, तब वह भूल में पड़ जाता है। वह अपने से बहुत बड़ी बातों को अपने द्वारा किए जाने की कामना कर रहा है, कल्पना कर रहा है। वह भूल में है। वे बातें जरूर हो सकती हैं, वे बातें हो सकती हैं, उसके द्वारा नहीं, बल्कि उसके हट जाने पर। उसके कारण नहीं, बल्कि उसके विलीन हो जाने पर। उसकी शक्ति से नहीं, बल्कि उसकी शून्यता से।
यह बहुत-बहुत समझ लेने जैसी बात है। नहीं तो धर्म की साधना में जो बुनियादी भूल हो जाती है आधारभूत, वह यहीं हो जाती है। और इसीलिए जिसे हम संन्यासी कहें, साधु कहें, वह बहुत अहंकारग्रस्त होता चला जाता है। क्योंकि आप तो मकान ही बनाते हैं, तो आपका अहंकार कितना बड़ा होगा? आप तो राज्य ही जीतते हैं, आपका अहंकार कितना बड़ा होगा? वह परमात्मा की विजय पर निकला हुआ है, उसका आक्रमण बहुत बड़ा है। वह ईश्वर को जीतने चला है, स्वर्ग को जीतने चला है, मोक्ष को जीतने चला है, उसका अहंकार बहुत प्रबल है। इसलिए संन्यासी में दंभ का होना बहुत स्वाभाविक है। उसका बहुत ईगोइस्ट होना बहुत स्वाभाविक है। यह स्वाभाविक है कि उसका दंभ बहुत बड़ा हो। आप तो संसार को जीतने चले हैं, वह तो सत्य को ही जीतने चला है। और आप तो असार संसार को जीत रहे हैं, वह सार संसार को जीत रहा है। और आप तो साधारण से क्षुद्र पदार्थ की दुनिया में खोज कर रहे हैं, वह परमात्मा की ही विजय के लिए निकला हुआ है।
यह जो विजय की यात्रा है, यह भ्रांत है। परमात्मा की विजय नहीं की जा सकती, और परमात्मा पर कोई आक्रमण भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि आक्रमण करने वाला और विजय की कामना करने वाला चित्त इतना क्षुद्र है, आक्रमण का भाव ही इतना क्षुद्र है, विजय की कामना ही इतनी क्षुद्र है--और वह भी परमात्मा की विजय की कामना! मोक्ष को जीत लेने की कामना!
महावीर के पास उस समय का एक बहुत बड़ा राजा श्रेणिक मिलने गया। श्रेणिक ने कहा कि मैंने बहुत राज्य जीते, मैंने राज्य की बड़ी सीमाएं कीं। मैंने बहुत धन जीता। आज अकूत धन है मेरे पास, उसका कोई हिसाब नहीं। हिसाब

लगाने की सुविधा और समय भी नहीं, क्योंकि इतना धन है, इतना अकूत कि अगर मैं हिसाब लगाने बैठूं, तो मेरा जीवन उसी में व्यतीत हो जाए, इसलिए कोई हिसाब का कारण भी नहीं है। लेकिन सब मैंने जीता। अभी-अभी मैं सुनता हूं कि बिना आत्मा को पाए कुछ भी नहीं हो सकेगा। तो अब मैं आत्मा को भी जीतना चाहता हूं। उसने महावीर से जाकर कहाः अब मैं आत्मा को भी जीतना चाहता हूं। अगर कोई परमात्मा है, तो मैं उसको भी जीतना चाहता हूं।
महावीर ने कहाः तुम लौट जाओ! क्योंकि जो जीतने का भाव लेकर इस दिशा में आता है, उसकी हार सुनिश्चित है। क्योंकि जीतने का भाव अहंकार का भाव है। यहां तो वह जीतता है जो हारने को तैयार होता है।
दो तरह की दुनिया हैं। एक जो हम जिस दुनिया को जानते हैं, पदार्थ की, वहां वह जीतता है जो जीतता है। एक और दुनिया भी है, वहां वह जीतता है जो हारता है।
समाधि तो हारने से मिलती है, जीतने से नहीं मिलती। जैसे-जैसे आप हारते जाएंगे, वैसे-वैसे मिलती चली जाएगी। जिस दिन आप बिल्कुल नहीं होंगे, उस दिन वह उपलब्ध हो जाएगी।
तो पहली बात तो यह जान लेनी जरूरी है कि आप साध नहीं सकते हैं सत्य को
और समाधि को। हां, अपने को विलीन कर सकते हैं और मिटा सकते हैं। कोई बूंद सागर को पा नहीं सकती, लेकिन बूंद सागर में अपने को खो सकती है। और खोते ही सागर हो जाती है। लेकिन कोई बूंद अगर इस ख्याल में हो कि वह सागर को जीत लेगी, तो गलती में है। सागर के जीतने के ख्याल में केवल ताप में उड़ जाएगी और भस्म हो जाएगी। लेकिन अगर कोई बूंद सागर में खोने के लिए तैयार हो जाए और राजी हो जाए, मिटने को राजी हो जाए, तो सागर में गिरते ही, मिटते ही सागर हो जाती है। ऐसे सागर मिट कर पा लिया जाता है। सत्य को पाने की दिशा भी मिट कर पाने की दिशा है। वह आपका अचीवमेंट नहीं है, आपकी उपलब्धि नहीं है, आपकी मृत्यु है, आपका मिटना है।
इसलिए समाधि को मैं कहता हूंः स्वयं अपने हाथों स्वीकार किया गया मिटना। स्वयं अपने हाथों अपनी मृत्यु का अंगीकार। स्वयं अपने हाथों अपनी बूंद को खो देने की तैयारी।
किन सूत्रों से हम मिट सकते हैं? तो उन्हीं सूत्रों की बात करेंगे। वे
ही सूत्र समाधि के आगमन के लिए द्वार खोल देंगे, मार्ग बन जाएंगे। किन सूत्रों से हम खुद मिट सकते हैं? अगर परमात्मा को होने देना है, तो मिटना पड़ेगा। इस ख्याल में मत रहें कि आप परमात्मा से मिल सकेंगे। जब तक आप हैं, तब तक मिलना नहीं हो सकता। जब तक आप हैं, तब तक आप ही रहेंगे, परमात्मा नहीं हो सकता। जिस दिन आप नहीं हैं, जिस दिन आप अनुपस्थित हैं, उस दिन परमात्मा है।
कबीर ने कहा है कि उसकी गली बड़ी संकरी है, वहां दो नहीं समा सकते हैं। उसकी गली बहुत संकरी है, वहां दो नहीं समा सकते हैं। या तो वह और या आप। रूमी ने एक गीत लिखा है, एक सूफी गीत है। एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के द्वार पर जाकर दरवाजे खटखटाए। पीछे से पूछा किसी नेः कौन है? तो उसने कहाः मैं हूं, तुम्हारा प्रेमी। फिर भीतर से कोई आवाज नहीं आई। उसने बहुत द्वार खटखटाए, बहुत चिल्लाया और उसने कहाः क्या हो गया है? इतनी चुप्पी क्यों? ऐसा मालूम होता है घर सूना है। भीतर से आवाज आईः जो अभी यह कहता है कि मैं हूं, उसके लिए प्रेम के द्वार खुलने असंभव हैं। क्योंकि "मैं" ही तो प्रेम के द्वार बंद किए हुए है।
तो वह प्रेमी वापस लौट गया। कई चांद आए और गए, कई रातें और दिन आए और बीते, और वह "मैं" कैसे मिट जाए, इसकी खोज करता रहा। और वर्षों के बीतने के बाद फिर उस द्वार पर आया। और उसने फिर सांकल खटखटाई। पीछे से वही प्रश्नः कौन है? हमेशा प्रेम के मंदिर में यही पूछा गया हैः कौन है? और हमेशा परमात्मा के भीतर से भी आवाज आती हैः कौन है? उस मकान से भी आवाज आईः कौन है? उसने अब की बार कहाः अब तो कोई भी नहीं, अब तो तुम ही हो। और वे द्वार खुल गए। वे द्वार शायद खुले ही थे, मैं की अंधी आंखें उन्हें नहीं खुला हुआ देख पाती थीं। वे द्वार खुल गए।

जिस दिन व्यक्ति समर्थ हो जाता है इस बात को जानने में कि मैं नहीं हूं, उसी दिन समाधि प्रविष्ट हो जाती है, द्वार खुल जाते हैं, मार्ग निष्कंटक हो जाता है। बाधाएं हैं हमारी खड़ी की हुई। एक-एक बाधा को खिसका देना होगा, एक-एक बाधा को हटा देना होगा। फिर तो आप पाएंगे कि समाधि शायद बाहर भी नहीं थी, वह भीतर ही थी। मौजूद ही था सत्य, परमात्मा मौजूद ही था, लेकिन हमारी ही बाधाओं के कारण दिखाई नहीं पड़ता था।
कौन-कौन सी बाधाएं हैं? कैसे-कैसे वे बाधाएं दूर हो जाएं?
तीन सूत्रों की मैं चर्चा करना चाहूंगा।
पहला सूत्र हैः सहज जीवन।
हमारा जीवन बहुत असहज है, बहुत कृत्रिम, बहुत आर्टिफीशियल, बहुत झूठा, बहुत मिथ्या, बहुत वंचक, बहुत डिसेप्टिव। ऐसा नहीं कि हम किसी और को धोखा देते होंगे, हम अपने को ही धोखा दिए चले जाते हैं। धोखा देते-देते हम उस स्थिति में पहुंच जाते हैं कि यह भी तय करना मुश्किल हो जाता है कि हमने कभी धोखा दिया था। धोखा भी निरंतर दिया जाए, निरंतर दिया जाए, तो मुश्किल हो जाता है।
एक आदमी ने हत्या की थी। और उस पर मुकदमा चला, और वह पकड़ा गया। लेकिन उसके पक्ष के वकील ने बड़ी तगड़ी दलीलें कीं उसके पक्ष में, उसके बचाने में। महीनों वह मुकदमा चला और आखिर में वह आदमी बच गया। वह हत्यारा छूट गया। छूट जाने के बाद उस वकील ने उस हत्यारे से अपने घर पर जाकर पूछाः क्या मित्र, अब तुम सच कह सकोगे कि तुमने हत्या की थी या नहीं?
उसने कहाः पहले तो मेरा ख्याल था कि मैंने की थी, लेकिन आपकी दलीलें सुनते-सुनते मुझे शक हो गया। अब मैं संदिग्ध हूं कि मैंने की या नहीं की! और अगर दो-चार महीने यह मुकदमा और चलता तो पक्का हो जाता कि मैंने नहीं की है। पहले तो मुझे ख्याल था कि मैंने की है, लेकिन आपकी बातें और दलीलें सुनते-सुनते मुझे संदेह पैदा हो गया कि मैंने की या नहीं की है!
जीवन भर जो बातें हम दूसरों को दिखलाते रहते हैं, धीरे-धीरे खुद को यह विश्वास पड़ जाता है कि हम वैसे हैं और जीवन बिल्कुल कृत्रिम और झूठा हो जाता है। हमारा प्रेम झूठा, हमारा चरित्र झूठा, हमारा व्यक्तित्व झूठा, हमारा मन झूठा, हमारे प्राण झूठे, तो इतने असहज व्यक्तित्व के कारण तो बाधा खड़ी हो जाती है। सब झूठा जहां है, वहां एकदम बाधा खड़ी हो जाती है। सत्य क्या है हमारे व्यक्तित्व में? सहज क्या है हमारे व्यक्तित्व में? असहज सब कुछ है हमारा; जो हम बोलते हैं वह असहज है, हम चलते हैं वह असहज है। कभी ख्याल किया? अगर रास्ते पर आप अकेले चले जाते हैं, तो आप और ढंग से चलते हैं; उस तरफ से चार लोग आ जाएं, तो आप दूसरे ढंग से चलने लगते हैं। कभी ख्याल किया इस बात पर? अपने बाथरूम में जब आप अकेले होते हैं, तो आप दूसरे आदमी होते हैं; और अपने बैठकखाने में जब बैठे होते हैं, तो बिल्कुल दूसरे आदमी होते हैं। कभी ख्याल किया इस बात पर?
कैसा यह हमारा व्यक्तित्व है? हम लोगों की आंखों को देख कर उसे बदलते हैं। और वे चार आदमी अगर बहुत बड़े आदमी हों, तो आप और बदल जाते हैं। हमारा सब हिसाब बदल जाता है, हमारा पूरा व्यक्तित्व! जैसे हमने कई तरह के मुखौटे बना रखे हैं अपने भीतर, और जब जैसी जरूरत होती है उसको पहन लेते हैं। धीरे- धीरे मुखौटों में खोते-खोते हम यह भूल ही जाते हैं कि हमारा कोई अपना चेहरा भी है, निपट हमारा चेहरा, जो हमने किसी की अपेक्षा में खड़ा नहीं किया है। जो हमने किसी की अपेक्षा में खड़ा नहीं किया है, जो हमारा ही चेहरा है, पता है आपको? आपका ओरिजिनल फेस, आपका वस्तुतः जैसा चेहरा है, पता नहीं है आपको। आपने बहुत चेहरे बनाए हैं, हमने बहुत चेहरे बनाए हैं, और हर आदमी की अपेक्षा में चेहरा बदल जाता है। सुबह कुछ होते हैं, घड़ी भर बाद कुछ, दोपहर कुछ, रात्रि कुछ; पत्नी के सामने कुछ, मित्र के सामने कुछ, पुत्र के सामने कुछ, पिता के सामने कुछ, नौकर के सामने कुछ, मालिक के सामने कुछ, चौबीस घंटे इतना जो कृत्रिम व्यवहार चलता है और अभिनय चलता है--और जीवन भर--तो गहरी पर्तें खड़ी हो जाती हैं। उसमें एक चीज खो जाती है, ओरिजिनल फेस खो जाता है। वह जो मौलिक व्यक्तित्व है, वह खो जाता है और झूठे व्यक्तित्व चारों तरफ खड़े हो जाते हैं।

ये झूठे व्यक्तित्व, ये जो फॉल्स पर्सनैलिटीज हैं, ये झूठे व्यक्तित्व सबसे बड़ी बाधा हैं परमात्मा के निकट आने में।
एक आदमी सुबह से उठ कर मंदिर चला जाता है, उस वक्त उसका चेहरा देखा? मंदिर में खड़े हुए उसे पहचाना? क्या यह वही आदमी है जो दुकान पर अभी मिला था? दफ्तर में अभी मिला था? आफिस में अभी मिला था? यह वही आदमी है यह जो चर्च में खड़ा है हाथ जोड़े?
लियो टॉल्सटॉय एक दफा सुबह-सुबह, सर्दी के दिन थे, एक चर्च में गया। तो रूस का एक बड़ा विचारशील व्यक्ति था। अंधेरा था और एक गांव का सबसे बड़ा धनपति वहां खड़ा हुआ परमात्मा के सामने कनफेशन कर रहा था। वह अपने पापों का अपराध स्वीकार कर रहा था। और वह कह रहा था कि मैं बहुत बेईमान हूं, मैं बहुत चोर हूं, मैंने बहुत पाप किए हैं। परमात्मा, मुझे क्षमा कर! टॉल्सटॉय ने अंधेरे में खड़े हुए ये बातें सुन लीं। फिर वह आदमी बाहर निकला, टॉल्सटॉय उसके पीछे हो लिया। सुबह होने लगी थी और सूरज निकल रहा था और बीच चौरस्ते पर जाकर टॉल्सटॉय चिल्लाया कि रुको! जो बातें तुमने चर्च में कही हैं, मैं सब लोगों को बता दूं?
उस आदमी ने कहा कि जबान बंद रखना, नहीं तो सांझ होने के पहले हवालात के अंदर बंद हो जाओगे!
लेकिन टॉल्सटॉय ने कहा कि तुम अभी चर्च में कहते थे कि मैं पापी हूं, मैं बेईमान हूं?
उसने कहाः बस, बंद! मुझे पता नहीं था कि तुम वहां मौजूद हो। मैं तो समझा, अकेला परमात्मा है। जो बातें परमात्मा के सामने कही हैं, वे लोगों के सामने कहने की नहीं हैं। और उसने कहा कि अगर इस बात को आगे बढ़ाया, तो मानहानि का मुकदमा चलेगा और कठिनाई में पड़ जाओगे।
टॉल्सटॉय ने लौट कर अपनी डायरी में लिखा कि आज मुझे पता चल गया कि परमात्मा से अकेले में जो बातें कही जाती हैं, वे सबके सामने नहीं कही जा सकती हैं।
ऐसे हमारे चेहरे हैं। ऐसे चेहरों को लेकर क्या हम सोचते हैं कि हम साक्षात कर सकेंगे सत्य का कभी? सत्य का साक्षात तो बहुत दूर, हम खुद ही सत्य नहीं हैं, तो सत्य का साक्षात कैसे होगा?
सत्य के साक्षात के लिए स्वयं का व्यक्तित्व तो सत्य होना ही चाहिए।
हम जैसे हैं--जैसे हैं, बुरे और भले, छोटे और बड़े, जैसे भी हम हैं, हमें अपने वैसे होने को जानना चाहिए। और हमें, उस जैसे हम हैं, उस सहज केंद्र पर ही जीने को आवर्तित करना चाहिए, तो जीवन में सहजता होगी, कपट विलीन होगा। कौन सी कठिनाई है कि हम सहज नहीं हो पाते हैं? कौन सी कठिनाई है? कौन
सी बात रोकती है हमें कि हम सहज नहीं हो पाते? जरूर कोई बात रोकती है, अन्यथा सारी मनुष्य-जाति क्यों असहज होती? कोई बात रोकती है। वह बात हैः विशिष्ट होने का ख्याल रोकता है। समबडी होने का ख्याल रोकता है। कुछ होने का ख्याल रोकता है। हर आदमी को यह वहम है कि वह विशिष्ट है। और इस वहम की पूर्ति के लिए वह विशिष्ट रूप खड़े करता है। और इस वहम की, इस भ्रम की पूर्ति के लिए वह विशिष्ट होने की कोशिश करता है। इस सत्य को निरंतर जानते हुए भी कि जो विशिष्ट थे वे, और जो साधारण थे वे, जो सामान्यजन थे वे, और जो अति असाधारणजन थे वे, वे सब मिट्टी में धूल-धूसरित हो जाते हैं। वे सब मिट्टी में गिर जाते हैं और विलीन हो जाते हैं।
लेकिन हरेक को यह ख्याल है कि वह विशिष्ट हो जाए। और विशिष्ट होने से
जो टेंशन और तनाव पैदा होता है जीवन में, वह असहज कर देता है। फिर हम जो नहीं होते, उसे दिखलाने की कोशिश करने लगते हैं। जो हममें नहीं होता, वह हम अभिव्यक्त करने लगते हैं। जो हमारे भीतर नहीं होता, उसे हम बाहर से ओढ़ लेते हैं।
हम जैसे हैं वैसे को स्वीकार नहीं कर पाते, क्योंकि हम कुछ और दिखलाने
की कोशिश से और प्रेरणा से भरे हुए हैं। लेकिन जो भी आंख खोल कर देखेगा, वह पाएगा, वह एक बात पाएगा, और वह बात बड़ी सीधी है, और वह यह है कि जो व्यक्ति जैसा है और जो है, उससे अन्यथा न तो वह हो सकता है, न कभी होने की संभावना है। दिखने की कोशिश कर सकता है और भ्रम में रह सकता है, लेकिन हो नहीं

सकता। गुलाब का फूल गुलाब का फूल है और चंपा का फूल चंपा का फूल है। और कोई कारण नहीं है कि चंपा का फूल गुलाब का फूल दिखने की कोशिश करे। और कोई कारण नहीं है कि नीम का वृक्ष आम का वृक्ष बनने की कोशिश करे। छोटे पौधे हैं और बड़े पौधे हैं, छोटे तारे हैं और बड़े तारे हैं। सारे जगत में जो जहां है और जैसा है, अगर वह अपने वहां होने को और वैसे होने को सहज भाव से स्वीकार कर ले, उसके जीवन में एक क्रांति हो जाएगी। और फिर कुछ होगा। और उसके भीतर फिर कुछ विकसित होगा। लेकिन फिर वह उसके अहंकार के केंद्र पर विकसित नहीं होगा, फिर जैसे परमात्मा ही उसके भीतर काम करने लगेगा और कुछ होता चला जाएगा।
अभी तो हम अहंकार के केंद्र पर कुछ होने की कोशिश करते हैं। और अहंकार
के केंद्र पर हम जो भी होने की कोशिश करेंगे, वह एक झूठे व्यक्तित्व से ज्यादा नहीं हो सकता है। स्मरण रखें, अहंकार से प्रेरित होकर जो भी होगा, वह एक झूठा व्यक्तित्व का निर्माण होगा; और अहंकार शून्य होकर जो भी होगा, वह एक बहुत आत्यंतिक रूप से आत्मिक निर्माण होगा।
तो पहली बात, अहंकार के केंद्र पर कुछ होने की कोशिश भ्रांत है। सिकंदर वही करता है, नेपोलियन वही करता है, राजनीतिज्ञ वही करता है, धनपति वही करता है; जिसको हम कहते हैं सच्चरित्र और चरित्रवान, सज्जन, साधु, वह भी वही करता है। अहंकार के केंद्र पर वह सारी कोशिश करता है।
कल ही किसी ने मुझसे कहा कि मैं बहुत अच्छा आदमी होना चाहता हूं।
मैंने कहाः क्यों लेकिन? आखिर तुम्हारी कौन सी जरूरत पड़ गई बहुत अच्छा आदमी होने की? एक आदमी बहुत धनी होना चाहता है, तो हम कहते हैं, यह पागल है। लेकिन एक आदमी कहता है कि मैं बहुत अच्छा आदमी होना चाहता हूं, महात्मा होना चाहता हूं। तो हम कहते हैं, यह बड़ा ऊंचा आदमी है। यह दौड़ बिल्कुल एक सी है, दोनों का केंद्र अहंकार है। दोनों जैसे हैं सहज और सामान्य, वैसे होने को स्वीकार नहीं करते हैं।
एक बहुत अच्छे वस्त्र पहन कर खड़ा हो जाना चाहता है, एक बहुत अच्छा चरित्र ओढ़ कर खड़ा हो जाना चाहता है। लेकिन क्यों? दूसरों को नीचा दिखाने के लिए? दूसरों को पीछे छोड़ने के लिए? दूसरों को दुख देने के लिए?
अहंकार का सारा सुख दूसरों को दुख देने पर खड़ा होता है। एक आदमी बड़ा मकान बना लेता है। इससे थोड़े ही खुश होता है कि मैंने बड़ा मकान बनाया। इससे खुश होता है कि मैंने दूसरों के मकान छोटे कर दिए। अभी उसके बड़े मकान के बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो जाने दें, वह दुखी हो जाएगा। मकान उसका वही है, लेकिन दुख कैसे आ गया? किसी और ने उसके मकान को छोटा कर दिया। आप बहुत अच्छे कपड़े पहन कर थोड़े ही सुखी होते हैं। नहीं, दूसरों के कपड़ों को दरिद्र बना कर, नीचा बना कर सुखी हो जाते हैं।
दुनिया में इतनी दरिद्रता क्यों है? इतना दुख क्यों है? क्योंकि हर आदमी दूसरे को बिना दुखी किए सुखी होने का कोई उपाय ही नहीं जानता है। और अहंकार जो कुछ भी करेगा--एक सज्जन है, साधु-चरित्र व्यक्ति है, उसका भी जो सुख है वह सज्जनता और साधु-चरित्रता का नहीं है, वह दूसरों को दुर्जन और असाधु सिद्ध करके मजा ले रहा है। अगर सारे लोग उसी जैसे साधु हो जाएं, वह बड़ी परेशानी में और कष्ट में पड़ जाएगा। उसका सारा सुख और सारा मजा इस बात में है कि वह दूसरों को नीचे दिखा पा रहा है। किसी भी वजह से वह दूसरों को नीचे दिखा पा रहा है, लोगों को नीचा कर पा रहा है।
अहंकार एक ही सुख जानता है, दूसरों को नीचे करने का सुख। आत्मा एक ही सुख जानती है--अहंकार एक ही सुख जानता है, दूसरों को नीचा करने का सुख-- आत्मा एक ही सुख जानती है, किसी को नीचे-ऊपर करने का सुख नहीं जानती, बल्कि स्वयं के भीतर जो भी छिपा है, उसे प्रकट और अभिव्यक्त करने का सुख। लेकिन आत्मा के केंद्र पर गति और आत्मा के केंद्र पर विकास तभी हो सकता है जब अहंकार के केंद्र पर हमारी गति और विकास बंद हो जाए। हम सब उसी केंद्र पर दौड़े चले जाते हैं, इस बात की बिना फिकर किए, आंखें खोले बिना कि कितने लोग उस तल पर दौड़ते हैं लेकिन कहां पहुंचते हैं? कहां पहुंचते हैं? और मनुष्य के अहंकार के लिए कारण भी कहां है? कौन सा कारण है मनुष्य के अहंकार के लिए? लेकिन मनुष्य बड़ा अहंकारी है।

बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा कि क्या आप यह मानते हैं कि जमीन सूरज का चक्कर लगाती है?
बर्नार्ड शॉ ने कहाः यह मैं कभी मान ही नहीं सकता।
पूछने वाले ने कहाः आपके मानने, न मानने का कहां सवाल है! यह तो सिद्ध
है और प्रमाणित है कि जमीन सूरज का चक्कर लगाती है।
उसने कहाः जरूर इसमें कुछ गलती होगी। बर्नार्ड शॉ जिस जमीन पर रहता
है वह कहीं सूरज का चक्कर लगा सकती है! सूरज ही जमीन का चक्कर लगाता होगा। बात तो उसने बड़े व्यंग्य में कही, लेकिन कही तो मतलब की है। मनुष्य से पूछिए, मनुष्य की किताबों में लिखा है कि मनुष्य जो है परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति है। यह किसने तुम्हें बताया? या खुद तुम्हीं कहे चले जा रहे हो? सारे पशु-पक्षियों से ऊपर यही है, भगवान ने इनके लिए विशेष रूप से बनाया है। कौन तुमको कहता है?
अभी कल ही मैं कह रहा था कि एक पति ने जाकर अपने मित्रों को कहा कि मेरी स्त्री से ज्यादा सुंदर और कोई भी नहीं है।
उन मित्रों ने पूछाः किसने तुम्हें बताया?
उसने कहाः मेरी स्त्री ने ही बताया।
उस पर लोग हंसे। लेकिन मनुष्य निरंतर हजारों वर्ष से यह दोहरा रहा है
कि हम सर्वश्रेष्ठ कृति हैं परमात्मा की। और कोई इस पर हंसता नहीं। क्योंकि हम सभी मनुष्य इसमें सहमत हैं। हम सभी इसमें सहमत हैं।
किसने यह कहा आपसे? कौन बता गया यह आपको?
मनुष्य के अहंकार की सीमा नहीं है। शक्ति क्षुद्र है और ना-कुछ है। एक श्वास आती है और लौट कर न आए, तो हमारा वश नहीं है। लेकिन नहीं। जरा सा ताप बढ़ जाए, तो हम समाप्त हो जाएंगे। जरा सी शीत बढ़ जाए, तो हम समाप्त हो जाएंगे। कब जमीन टूट जाए, कब सूरज ठंडा हो जाए, हम समाप्त हो जाएंगे। और हमारे समाप्त होने की इस विराट विश्व में कहीं भी कोई सूचना नहीं निकलेगी, कोई अखबार में खबर नहीं छपेगी। कहीं कोई पता नहीं चलेगा कि एक पृथ्वी पर मनुष्यों की एक छोटी सी जाति थी, वह समाप्त हो गई। कहीं कोई खबर भी पता नहीं चलेगी। ये तीन अरब आदमी यहां ठंडे हो जाएं, तो यह जो विराट जगत है, जिसकी सीमाओं का भी हमें कोई पता नहीं, इसमें कहीं कोई लहर भी कंपित नहीं होगी, कहीं कोई संवेदना की सभा भी नहीं होगी, कहीं कोई शोक-प्रस्ताव भी नहीं होंगे, कहीं कुछ भी नहीं होगा, पता भी नहीं चलेगा।
हमें पता चलता है जब कोई घर में एक चींटी मर जाती है? हमें पता चलता है
जब कि कोई घास का एक पौधा सूख जाता है? इससे ज्यादा और कुछ भी पता नहीं चलेगा पूरी मनुष्य-जाति समाप्त हो जाए तो भी। आज है भी, तो भी कहीं कोई पता नहीं है। वहां तो इटरनल साइलेंस है चारों तरफ। और जहां तक हमारी आंखें बढ़ती हैं, और जहां तक देखने की हमारी क्षमता बढ़ती है, हम पाते हैं कि हम कितने छोटे हैं।
एक वक्त था कि हम बहुत बड़े थे। जैसे-जैसे हमारी समझ बढ़ी है, हम छोटे होते चले गए हैं। जमीन तो कुछ भी नहीं है, आदमी तो कुछ है ही नहीं। जमीन से बड़ा, साठ हजार गुना बड़ा सूरज है। और सूरज सबसे छोटा सूरज है इस सारे जगत में। ऐसे कोई दो करोड़ सूरज हम पता लगा सके हैं। उनके पार भी अनंत विस्तार है। और उनके पार भी कितने सूरज होंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। और सीमा कहीं होगी, यह तो असंभव है, क्योंकि सीमा तो तभी हो सकती है जब दूसरी दुनिया शुरू हो जाए आगे। सीमा से तो हमेशा दूसरी चीज शुरू हो जाती है। जहां आपका घर समाप्त होता है, दूसरे का घर शुरू हो जाता है। जहां आपका खेत समाप्त होता है, दूसरे का खेत शुरू हो जाता है। सीमा तो हमेशा दो के बीच होती है, इसलिए इस विश्व की कोई सीमा तो हो नहीं सकती, नहीं तो दूसरा विश्व शुरू हो जाएगा। दूसरा समाप्त होगा, तीसरा शुरू हो जाएगा। उससे कोई मतलब हल नहीं होगा।
विश्व की कोई सीमा तो हो नहीं सकती। यह जो असीम जगत है, जिसमें ये छोटे-छोटे से बिंदु हैं--पृथ्वी के, सूरज के, और इनके बीच अनंत खड्ड हैं, खाइयां हैं, जहां कुछ भी नहीं है, वहां एक छोटा सा मनुष्य है, जिसके अहंकार का हिसाब नहीं। जो अपने झंडे ऊंचे किए जाता है डंडों पर लगा-लगा कर। और

चिल्लाता है, और उन झंडों के लिए मरता है और मारता है। और जिसके दंभ की कोई सीमा नहीं है।
दंभ के लिए कोई भी कारण नहीं है। एक पत्ते के लिए कोई कारण नहीं है, एक बूंद के लिए कोई कारण नहीं है। आपके लिए, मेरे लिए भी कोई कारण नहीं है। अगर हम आंख खोल कर देखेंगे, तो हम पाएंगेः अहंकार के लिए कोई भी तो कारण नहीं है। कोई भी तो कारण नहीं है। लेकिन जीवन भर हम अहंकार के लिए कारण खोजते हैं। और शक्ति हमारी इतनी अल्प है, कि न जीवन पर कोई वश है, न मृत्यु पर कोई वश है। चीजें हमारे भीतर होती हैं, लेकिन हम भ्रमवश कहते हैं कि मैं कर रहा हूं।
किसी से आपको प्रेम हो जाता है, तो आप कहते हैं कि मैं प्रेम कर रहा हूं। कभी किसी ने प्रेम किया है? प्रेम हुआ है। क्रोध आपको आ जाता है, आप कहते हैं कि मैं क्रोध कर रहा हूं। कभी किसी ने क्रोध किया है? क्रोध हुआ है। आप कहते हैं, मेरा जन्म-दिन! आपका कोई जन्म-दिन है? आपने कोई तय किया था? आपसे किसी ने पूछा था? कोई किसी का जन्म-दिन नहीं, कोई किसी का मृत्यु- दिवस नहीं; जीवन आता है और जाता है। जैसे सागर पर लहरें उठती हैं और विलीन हो जाती हैं। अगर लहरों को भी पता हो, तो उठने को वे कहेंगी जन्म-दिन और गिरने को कहेंगी मृत्यु-दिवस। जो जरा ज्यादा ऊंची उठ जाएंगी, वे संगमरमर की कब्रें बनवाएंगी। जो जरा और ज्यादा ऊंची उठ जाएंगी, वे अपनी आत्मकथाएं लिखेंगी। जो जरा और ज्यादा ऊंची उठ जाएंगी, उनके नाम पर झगड़े होने शुरू हो जाएंगे कि ये भगवान की विशेष अवतार थीं। लेकिन लहरों से ज्यादा जीवन में और कुछ भी नहीं है। पत्ते आते हैं और पतझड़ में झड़ जाते हैं। और मनुष्य पैदा होता है और विलीन हो जाता है।
अगर जीवन को आंख खोल कर देखेंगे, बिना किसी पूर्वाग्रह के--और मनुष्य
के बहुत पूर्वाग्रह हैं, न मालूम क्या-क्या अपने को समझे हुए हम बैठे हैं-- अगर हम थोड़ा आंख खोल कर और निष्पक्ष होकर देखेंगे, तो पाएंगे, अहंकार के लिए तो कोई भी कारण नहीं है। मेरे भीतर भी जीवन ने एक शाखा को विकसित किया है, किसी भी दिन खींच लेगा। आपके भीतर भी जीवन ने एक पंखुड़ी खोली है, किसी भी दिन बंद हो जाएगी, कुम्हला जाएगी और गिर जाएगी।
आप कहां हैं? जीवन है! लाइफ फोर्स है! आप कहां हैं? मैं कहां हूं? एक-
एक पत्ते को होश आ जाए तो वह चिल्लाने लगे कि मैं कुछ हूं। और जो पत्ता ऊपर की शाखा पर खिला है, वह नीचे की शाखा वाले से कहे कि तू शूद्र है और हम ब्राह्मण हैं, या कि हम क्षत्रिय हैं, या कुछ और हैं, पागलपन कई तरह के हैं। लेकिन नीचे की शाखा पर जो पत्ता खिला है, वह भी उसी तरह परमात्मा से खिल रहा है जैसे ऊपर की शाखा पर। और परमात्मा के जगत में कोई ऊपर की और नीचे की शाखा नहीं है, क्योंकि ऊपर और नीचे वहां हो सकता है जहां विश्व की सीमा हो। जहां कोई सीमा नहीं, वहां कोई ऊपर और नीचे कैसे हो सकता है? सीमा हो तो कोई ऊपर और नीचे हो सकता है, लेकिन जहां सीमा न हो वहां ऊपर-नीचे नापिएगा कैसे कि कौन नीचे, कौन ऊपर? कहीं कोई ऊपर सीमा हो, आपके घर का ऊपर छप्पर है, तो आप एक छोटी कुर्सी रखते हैं और एक बड़ी कुर्सी, तो नापने का उपाय है। छप्पर से जो कुर्सी करीब है वह ऊंची, जो कुर्सी दूर है वह नीची। लेकिन जहां कोई छप्पर न हो, वहां कौन नीचे है? कौन पीछे है? कौन आगे है? जहां ओर-छोर न हो, वहां कोई आगे नहीं है, कोई पीछे नहीं है, कोई नीचे नहीं है, कोई ऊपर नहीं है। ये सारी ऊपर-नीचे की कल्पनाएं हमारी कल्पनाएं हैं जो हम जबरदस्ती थोपे हुए हैं।
एक कंकड़ भी वैसी ही परमात्मा की अभिव्यक्ति है, वैसी ही अनूठी। एक पक्षी भी वैसी ही अनूठी कृति है। एक पौधे में भी वैसा ही अनूठा व्यक्तित्व उठा है, जैसा आप में या किसी और में, या कृष्ण में, या राम में, या बुद्ध में, या महावीर में। कोई ऊंचा-नीचा नहीं है। लाइफ फोर्स, जीवन की शक्ति अनंत-अनंत रूपों में अभिव्यक्त होती है, विलीन होती है, अभिव्यक्त होती है, लहरें उठती हैं और जाती हैं। इसमें आप कहां हैं? मैं कहां हूं?
लेकिन हम बहुत घनीभूत रूप से होकर बैठ गए हैं कि हम हैं, मैं हूं। और
यह मेरा होना हमें असहज किए जाता है, हमें जीवन की सहजता को स्वीकार नहीं करने देता।

एक फकीर हुआ नानइन। जापान में हुआ कोई हजार वर्ष पहले। जापान का बादशाह उससे मिलने गया। वह अपनी बगिया में बाहर गड्ढे खोद रहा था। बादशाह ने सोचा था कोई बहुत विशिष्ट महापुरुष होगा, जिसके सिर के चारों तरफ प्रकाश का आवृत बना होगा। साधु-संतों के बना रहता है। पहले से ही फोटोग्राफर को कह रखते हैं, बना देना। पुराने दिनों में फोटोग्राफर तो होते नहीं थे, चित्रकार होते थे, वे बना देते थे। तो उसने सोचा था कि इतना महापुरुष है, तो कोई प्रकाश चारों तरफ इसके मुखमंडल के आवृत बना होगा। जाकर गड्ढा खोदते आदमी से उसने पूछा कि महात्मा नानइन से मिलना चाहता हूं।
तो उसने कहाः यहां तो कोई महात्मा रहते ही नहीं; एक नानइन नाम का आदमी रहता है।
तो उसने कहाः तू बहुत अशिष्ट मालूम होता है। कहां है वह?
तो उसने कहा कि महात्मा का तो मुझे कोई पता नहीं, नानइन का मुझे पता है, कहिए तो बता दूं?
उसने कहाः कहां है?
तो उसने कहाः मैं ही हूं।
राजा हैरान हुआ! समझा कि यह पागल है, यह क्या नानइन होगा जो गड्ढा खोद रहा है दरवाजे के बाहर बैठा हुआ! और कहता है, यहां कोई महात्मा रहते ही नहीं, मुझे तो पता ही नहीं, मैं तो यहां कई साल से रहता हूं। यहां तो एक नानइन नाम का आदमी रहता है।
लेकिन राजा के वजीर ने कहा कि मैं एक दफा और देख कर गया था, यही आदमी मालूम होता है। वह तो एक लंगोटी सी लगाए हुए गड्ढा खोद रहा है। राजा बड़ा हैरान हुआ! उसने सोचा मन में कि यह तो उचित नहीं कि ऐसे आदमी से मिलने और मैं आया। लेकिन अब आ ही गया हूं तो इससे थोड़ी-बहुत बात कर लूं। तो उसने उस नानइन से पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है?
उसने कहाः साधना! यह शब्द मैंने सुना ही नहीं। मैंने कभी कुछ साधना की नहीं। आप गलती से कहीं आ गए। और कहीं जाइए। किसी साधु के पास जाइए, मैं क्या साधना वगैरह!
फिर भी आप करते क्या हैं?
उसने कहाः जब मुझे भूख लगती है, मैं खाना खाने की कोशिश करता हूं; और
जब नींद आ जाती है, तो सो जाता हूं; जब नींद खुल जाती है, तो उठ जाता हूं। और तो मैंने कुछ किया नहीं।
उस राजा ने कहा कि यह तो हम भी करते हैं।
नानइन ने कहा कि जहां तक मैं समझता हूं, यह आप नहीं करते होंगे। नहीं
तो मेरे पास क्यों आते? यह आप नहीं करते होंगे। नहीं तो मेरे पास आने का कोई कारण नहीं था।
जिसने जीवन को इतनी सरलता से लिया हो कि भूख लगे तो खाना ले, नींद आए
तो सो जाए, नींद खुल जाए तो उठ आए। और जिसने जीवन पर जबरदस्ती थोपा न हो कुछ, जो इतना सहज हो गया हो। क्योंकि थोपने का कृत्य अहंकार का कृत्य है। वह कहता है, ब्रह्ममुहूर्त में उठना, चाहे नींद खुले, चाहे न खुले। अहंकार का कृत्य है। वह कहता है, इतना खाना, इतना मत खाना, यह उपवास करना, वह उपवास करना, यह मंत्र पढ़ना, यह किताब पढ़ना, इस तरह उठना, यह टीका लगाना, इस तरह का माला पहनना, यह सब वह...
जीवन की सहजता को स्वीकार नहीं करता अहंकार, उसमें फर्क लाता है, काट-छांट लाता है। जीवन जैसा अपने से विकसित होता है सहज, उसे वह स्वीकार नहीं करता। और इसलिए फिर एक क्रिपिल्ड और अग्ली, एक पंगु और कुरूप व्यक्तित्व का जन्म होता है, जिसे हमने चारों तरफ से ठोंक-ठोंक कर बिठाया, चारों तरफ से जबरदस्ती जिसको हमने बांधा और एक ढांचे में खड़ा किया। फिर अशांति होती है, दुख होता है। तो फिर हम शांति की खोज में हिमालय जाते हैं। फिर दुख होता है, तो हम सोचते हैं, कोई गुरु के आशीर्वाद से ठीक हो जाए। लेकिन हम यह नहीं देखते कि जीवन असहज होता है, इसलिए दुख और अशांति होती है।
कोई पौधा दुखी नहीं है और कोई पक्षी दुखी नहीं है। मनुष्य बहुत दुखी है। मनुष्य ने जीवन के ऊपर ढांचे थोपने शुरू किए हैं, हजार तरह के ढांचे

थोपता है। और अपने को जिस तरह का वह बांधने का, सम्हालने का सब तरफ से प्रयास करता है। उसके सब प्रयास, जीवंत जो शक्ति है उसके भीतर, उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं, और उस जीवन की धारा को प्रतिरोध देने लगते हैं।
एक नदी बहती है, तो बही चली जाती है। जहां मार्ग मिलता है, जहां ढलान होती है, बही चली जाती है। अगर नदियों को ख्याल आ जाए कि किस रास्ते पर बहना चाहिए, किस ढंग से बहना चाहिए, किस मिट्टी के करीब से बहना चाहिए, किस पहाड़ से दूर रहना चाहिए, और कौन सा काम करना चाहिए, नहीं करना चाहिए; फिर कोई नदी सागर तक नहीं पहुंच सकेगी। फिर कोई नदी सागर तक नहीं पहुंच सकेगी। लेकिन सभी नदियां सागर तक पहुंच जाती हैं। जहां उनकी जीवंत गति ले जाती है, चुपचाप चली जाती हैं।
जिस व्यक्ति को परमात्मा के सागर तक पहुंचना हो, उसे सरिताओं की भांति हो जाना चाहिए। पटरियों पर दौड़ती हुई रेलगाड़ियों की भांति नहीं, कि पटरियां पहले बिछा दीं और फिर रेलगाड़ी उस पर चला दिए। नहीं, सरिताओं की भांति, जिनका कोई मार्ग निर्णीत नहीं, और जिनकी जीवंत शक्ति जहां मार्ग पाती है बही चली जाती है, अत्यंत सहजता से।
लेकिन हम सब लोगों का जीवन रेलगाड़ियों की भांति है जो बिछी हुई पटरियों पर दौड़ रहे हैं। बिछी हुई पटरियों पर जो व्यक्ति दौड़ रहा है वह असहज हो जाएगा। लेकिन मेरी बात सुन कर घबड़ाहट होगी कि अगर हम बिल्कुल सहज हो गए, तब तो पशु हो जाएंगे। अगर हम बिल्कुल सहज हो गए, तो फिर तो सब गड़बड़ हो जाएगा, फिर हम मनुष्य कैसे रहेंगे? निश्चित ही, अगर बिल्कुल सहज हो जाएं, तो मनुष्य तो नहीं रह जाएंगे, लेकिन पशु नहीं होंगे, परमात्मा हो जाएंगे। पशु की सहजता बोधपूर्वक नहीं है, आपकी सहजता अत्यंत बोधपूर्वक होगी, कांशस होगी, होशपूर्वक होगी। और जहां परिपूर्ण होश के साथ जीवन की सहजता को स्वीकार कर लिया जाता है, जीवन अपने आप ही उन श्रेष्ठतम दिशाओं की ओर गतिमान होने लगता है, जिनकी ओर हम लाख उपाय करते तो भी गतिमान नहीं हो सकता था।
ऐसे व्यक्ति को, जिसने सब भांति सहज जीवन को अंगीकार कर लिया, मैं साधु कहता हूं। ऐसे व्यक्ति को मैं साधु कहता हूं, जिसने जीवन की सहजता को स्वीकार कर लिया। और जिसने अपने अहंकार की जो काट-छांट थी, और अहंकार की हर तरफ जो रुकावट थी, उससे अपने को मुक्त कर लिया। और उसने मान लिया कि जो होना है उसे हो जाने देना है।
अभी हमें डर लगेगा, क्योंकि हमारी हजारों साल की पूरी परंपराएं हमसे
यह कहती हैं कि यह तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा। लेकिन कभी जीकर देखें, घड़ी, आधी घड़ी, दिन, दो दिन को, कभी एकांत में महीने, दो महीने को इतने सहज, जैसे आप एक पशु हैं, एक पक्षी हैं, एक पौधा हैं। जीकर देखें और पाएं कि आपके भीतर कैसे अदभुत शांति के लोक खुलते चले जाते हैं!
और बड़े आश्चर्य की बात है, जितना सहज और शांत व्यक्तित्व होगा, जिनको
हम बुराई कहते हैं और विकार कहते हैं, वे उसमें उठने बंद हो जाते हैं। वे उसमें उठते भी नहीं। वे उठते हैं असहज व्यक्तित्व में।
स्पांटेनियस, अत्यंत सहज जीवन को समझना, जानना और गतिमान होने देना, पहला सूत्र है कि परमात्मा आए।
दूसरा सूत्र हैः अद्वंद्व।
चित्त में कांफ्लिक्ट न हो, द्वंद्व न हो। चित्त में विरोधी स्वर न हों।
हमारे चित्त में बहुत विरोधी स्वर हैं। एक स्वर कुछ कहता है, दूसरा स्वर कुछ कहता है। दोनों के बीच लड़ते हैं। और जब हमारे ही दोनों स्वर हों, तो लड़ाई का क्या हल हो सकता है? अगर मेरे ही दोनों हाथ आपस में लड़ें, तो क्या होगा? कोई जीतेगा? कोई हारेगा?
कोई जीतेगा नहीं, कोई हारेगा नहीं। लड़ाई जीवन भर चलेगी, हार-जीत कुछ
भी नहीं होगी। एक बात हो जाएगी, दोनों हाथों की लड़ाई में मैं टूटता चला जाऊंगा। क्योंकि दोनों हाथ मेरे हैं और दोनों में मेरी शक्ति ही लड़ती है। दोनों तरफ से मेरी शक्ति लड़ती है, दाएं हाथ से भी मेरी और बाएं हाथ से भी मेरी। चाहे दायां बुरा हो और बायां अच्छा हो, चाहे बायां बुरा हो और चाहे

दायां अच्छा हो, दोनों हालत में मेरी शक्ति ही दोनों तरफ से लड़ती है। हाथ तो कोई जीत नहीं सकते, क्योंकि दोनों मेरे हैं, हार-जीत कुछ निर्णय नहीं हो सकता, एक बात तय है कि दोनों की लड़ाई में मेरी शक्ति का अपव्यय होता है। चित्त में लेकिन हमने बहुत द्वंद्व खड़े कर लिए हैं--शुभ के, अशुभ के; भले के, बुरे के; यह अच्छा है, वह बुरा है; यह नीति है, वह अनीति है; यह पाप है, वह पुण्य है--और हम लड़ रहे हैं चौबीस घंटे। मैं आपको स्मरण दिला दूंः लड़ने वाला चित्त ही एकमात्र पाप है। भीतर जिसने सारी लड़ाई को विसर्जित कर दिया है, वह चित्त एकमात्र पुण्य है।
लेकिन जब तक हमें यह ख्याल नहीं है कि लड़ने में दोनों तरफ मैं ही हूं,
तब तक लड़ाई बंद नहीं हो सकती है। जब आपके भीतर क्रोध उठता है, तो क्रोध के भीतर शक्ति किसकी जाती है? आपकी। और जब आपके भीतर क्रोध का पश्चात्ताप उठता है, तो किसकी शक्ति जाती है? आपकी। जब आप क्रोध में होते हैं, तब भी आपकी शक्ति व्यय होती है। और जब आप क्रोध के खिलाफ लड़ते हैं, तब भी आपकी ही शक्ति व्यय होती है। क्रोध में टूटते हैं, फिर क्रोध से लड़ने में टूटते हैं। और लड़ने से क्रोध कभी समाप्त हुआ है आज तक किसी का? इस पर ख्याल भी नहीं करते कि लड़ने से कभी क्रोध समाप्त नहीं हुआ। बल्कि यह लड़ने वाला चित्त जो है यह क्रोधी चित्त है। नहीं तो क्रोध ही न हो तो लड़े कैसे? अपने क्रोध से लड़ना भी क्रोध का ही उपक्रम है। चित्त में लोभ है, तो लोभ से लड़ते हैं; अलोभ को साधते हैं। चित्त में झूठ है, तो झूठ से लड़ते हैं; सत्य को साधते हैं। लेकिन झूठ किसका है? लोभ किसका है? आपका। लड़ने वाला कौन है? आप। बड़ी हैरानी की बात है! किससे लड़ रहे हैं? और इस लड़ाई में कैसे हल होगा? क्या यह वैसी ही भ्रांत लड़ाई नहीं है, जैसे कोई आदमी अपने कमरे में बंद हो जाए और तलवारें उठा ले और लड़ने लगे अपने से ही! क्या होगा? सुबह तक क्षत-विक्षत हो जाएगा। खुद के हाथ-पैर तोड़ लेगा। लेकिन जीत क्या होगी? जीतेगा किससे? कोई दूसरा मौजूद ही नहीं है, लड़ किससे रहे हैं आप? आप अकेले हैं। इस तथ्य को जानना जरूरी है कि मैं अकेला हूं अपने जीवन में, लड़ किससे रहा हूं? जिससे मैं लड़ रहा हूं वह मेरा ही अंश होगा, मेरा ही खंड होगा। इस भांति हर लड़ाई मेरे व्यक्तित्व को खंडित करेगी, डिसइंटिग्रेटेड करेगी, तोड़ देगी, व्यक्तित्व टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा, मैं अपने भीतर ही कई आदमी हो जाऊंगा। और हर आदमी कई आदमी हो गया है। जब यह सीमा बहुत ज्यादा बढ़ जाती है, आदमी पागल हो जाता है। खुद ही कई आदमी है वह। होना चाहिए एक आदमी, कई आदमी नहीं। यह जो मल्टी-साइकिक बीइंग हमारे भीतर पैदा हो जाता है, बहुचित्तता पैदा हो जाती है, यही तो खतरा है, यही तो जीवन को क्षीण करता और तोड़ देता है।
तो क्या करें? पहली बात तो यह जानें कि मेरे भीतर मैं अकेला हूं, इसलिए लडूंगा किससे? इससे लड़ाई का तो सारा ख्याल ही छोड़ दें।
फिर क्या करें? फिर हमको घबड़ाहट होती है। इसका तो मतलब यह हुआ कि क्रोध हो तो हम क्रोध करें और लोभ हो तो हम लोभ करें!
नहीं, इसका यह मतलब नहीं होता। क्रोध हो, तो क्रोध को जानें; लड़ें नहीं। लोभ हो, तो लोभ को जानें; लड़ें नहीं। मेरा लोभ है, मेरा क्रोध है, मैं जानूंगा, पहचानूंगा। क्यों है? क्या है? लडूं क्यों? जैसे मुझे दो आंखें मिली हैं, दो हाथ मिले हैं, वैसे ही मुझे क्रोध भी मिला है। जरूर प्रकृति में उसका कोई उपयोग होगा, कोई अर्थ होगा, अन्यथा अकारण कुछ मिलता नहीं। अगर मुझे लोभ मिला है, तो उसका भी कोई अर्थ होगा। अगर मुझे भय मिला है, तो उसका भी कोई अर्थ होगा, जीवन-संरक्षण में और विकास में उसका कोई प्रयोजन होगा। लडूं क्यों? उसे जानूं और पहचानूं और उसकी शक्ति को खोजूं।
बड़ी हैरानी की बात है, जो व्यक्ति अपने क्रोध को जानने में लग जाएगा,
वह क्रोध के भीतर ही उस शक्ति को उपलब्ध कर लेगा जो करुणा बन जाती है। जो व्यक्ति अपने लोभ को समझने में लग जाएगा, वह लोभ के भीतर ही उस शक्ति को उपलब्ध कर लेगा जो अलोभ और दान बन जाती है।
क्या आपको पता है, बीज फूल का हम बोते हैं, तो बीज के ऊपर एक सख्त खोल होती है, और उसके भीतर बीज का प्राण होता है। वह सख्त खोल बीज के प्राण की रक्षा करती है। अगर हम उस सख्त खोल को देख कर कहें कि यह सख्त खोल से फूल का

क्या संबंध होगा? और सख्त खोल को नष्ट कर दें। तो बीज भी नष्ट हो जाएगा। लेकिन हम जानते हैं, सख्त खोल का भी प्रयोजन है। वह भीतर जो अत्यंत कोमल प्राण-तंतु छिपा है, उसकी रक्षा कर रही है। जितना कोमल प्राण-तंतु होता है बीज के भीतर, उतनी ही सख्त खोल होती है। लेकिन हम उसे जमीन में बो देते हैं। जब जमीन में वह प्राण-तंतु विकसित होने लगता है, सख्त खोल अपने आप टूट जाती है और विलीन हो जाती है और प्राण-तंतु बाहर निकल आता है, और पौधा बन जाता है, और फूल पैदा होने लगते हैं।
मैं आपको यह निवेदन करना चाहता हूंः आपके लोभ की खोल के भीतर, आपके क्रोध की खोल के भीतर बड़े दूसरे प्राण-तंतु छिपे हैं। लेकिन अगर आप खोल से ही लड़ने लगे, तो उन प्राण-तंतुओं को आप कभी विकसित न कर पाएंगे। खोल से लड़िए मत, समझिए। जो कुछ भी है जीवन में, अकारण नहीं है, उसकी उपयोगिता है, उसकी उपादेयता है। लेकिन झूठी, तथाकथित मॉरेलिटी और नैतिकता और शिक्षा उसकी उपादेयता को इनकार कर देती है। और हम उससे लड़ना शुरू कर देते हैं। खोल से ही लड़ना शुरू कर देते हैं, और जो खोल से लड़ने लगता है, उसके जीवन में मुश्किल खड़ी हो जाती है, कांफ्लिक्ट खड़ी हो जाती है।
तो मैं कहता हूंः क्रोध को खोजिए, क्रोध अदभुत शक्ति है। क्रोध के भीतर बहुत कुछ छिपा है। लेकिन जो द्वार से ही लौट आया खोल को देख कर, वह कभी भीतर नहीं गया, वह क्रोध के महल में क्या छिपा था, पता भी नहीं कर पाएगा। क्रोध तो व्यवस्था थी कुछ चीज को छिपा रखने की भीतर।
क्या आपको पता है, जिन लोगों में क्रोध नहीं होता, उनके जीवन में व्यक्तित्व ही नहीं होता। क्या आपको पता है, जिन लोगों के जीवन में भय नहीं होता, वे ईडियट हैं, जड़बुद्धि हैं। वे मर जाएंगे, वे जी नहीं सकते। जीवन की सुरक्षा नहीं हो सकती उनकी। सांप आ रहा होगा, तो वहीं खड़े रहेंगे। मकान गिर रहा होगा, तो वहीं बैठे रहेंगे। मकान में आग लग जाएगी, तो और सो जाएंगे। अगर उनके जीवन में भय न हो... फियर है, कोई सुरक्षा है भीतर। लेकिन अगर हम भय में प्रवेश करें और समझने की कोशिश करें, तो हम पाएंगे कि भय तो जीवन की रक्षा का एक उपाय है। और जितना हम भय के भीतर प्रवेश करेंगे, और भय को समझने की कोशिश करेंगे, जितना हम भय को समझते जाएंगे, उतने ही हम अभय को उपलब्ध होते चले जाएंगे। जो व्यक्ति भय को समझ लेता है, वह अभय को उपलब्ध हो जाता है। और जो व्यक्ति भय से लड़ने लगता है, वह नये तरह के भय खड़े कर लेता है।
एक फकीर हुआ चीन में, उसने भय से लड़ाई छेड़ दी अभय को पाने के लिए। उसने मनुष्यों की बस्ती छोड़ दी, दूर जंगल में जहां जंगली जानवर, रीछ और भालू और शेर और सिंह थे, वहां रहने लगा, जहां सांप थे वहां रहने लगा। उसने कहा कि भय छोड़ना ही है, तो अयास करना पड़ेगा अभय का। उसने जरूर अभय को उपलब्ध कर लिया उस तरह का। एक वक्त आ गया कि सारे चीन में उसकी ख्याति पहुंच गई। सारे चीन में उसकी ख्याति पहुंच गई। लोग उसके दर्शन को जाने लगे। उसके गले में से सांप लिपट जाए, तो वह कंपता भी नहीं था। उसके पीछे आकर उसको भेड़िया धक्का दे दे, तो वह लौट कर भी नहीं देखता था। उसके झाड़ के पीछे से सिंह गर्जना करने लगे, तो उसकी पलकें नहीं झपती थीं। ऐसा वह फियरलेस हो गया। ऐसा वह भय-शून्य हो गया।
एक नवयुवक भिक्षु उससे मिलने गया। वह भिक्षु जब उससे मिल रहा था, एक चट्टान के पास पीछे से आकर किसी जंगली जानवर ने जोर की गर्जना की। वह भिक्षु एकदम उठ कर खड़ा हो गया, वह युवा भिक्षु जो मिलने आया था, घबड़ा कर खड़ा हो गया।
उस वृद्ध फकीर ने कहाः डरते हो? भय खाते हो? अगर भय खाते हो, तो स्मरण रखो, परमात्मा को कभी नहीं पा सकते, सत्य को कभी नहीं पा सकते। जो भयभीत है, वह कैसे पाएगा?
उस युवक ने कहाः मैं तो बहुत घबड़ा गया हूं। मुझे एकदम से प्यास लग आई घबड़ाहट में, आप थोड़ा पानी ला देंगे?
वह वृद्ध उठा और अपने झोपड़े में भीतर गया पानी लेने। जब वह पानी लेकर बाहर आया, उस नये भिक्षु ने, उस युवा भिक्षु ने, जिस चट्टान पर वह बैठा था, वहां लिख दिया--नमो बुद्धाय। एक पत्थर से उठा कर लिख दिया--नमो बुद्धाय।

जैसे ही वह वृद्ध भिक्षु आया और पैर रखने लगा, उसका पैर कंप गया और वह नीचे उतर गया और उसने कहाः यह तुमने क्या किया?
पर उसने कहाः डरते तो आप भी हैं। और मैं तो सिंह से डरा था, जो कि बिल्कुल वास्तविक था। और यहां सिर्फ मैंने "नमो बुद्धाय" लिख दिखा, बुद्ध का नाम लिख दिया, उस पर पैर रखने से डरते है? तो जो डरता है, वह मोक्ष को कैसे पा सकेगा?
इस आदमी ने अभय को नहीं पाया है, इसने केवल भय को टरंसफर कर लिया, रूपांतरित कर लिया। यह अब बुद्ध से डरने लगा, राम से डरने लगा, भगवान से डरने लगा। लेकिन भगवान से, राम से और बुद्ध से डरना बिल्कुल काल्पनिक है और सिंह से डरना एकदम वास्तविक है। सिंह के भय से जीवन संवर्धन होता है, राम के भय से जीवन संवर्धन नहीं होता। यह काल्पनिक है बिल्कुल। लेकिन भय मौजूद है। भय से लड़ाई करके उसने दूसरे भय को खड़ा कर लिया। वह भय हमें दिखाई नहीं पड़ेगा। कोई नरक से डर रहा है, कोई किसी से डर रहा है और चरित्रवान बना हुआ है। वह भय हमें दिखाई नहीं पड़ता कि वह भय है।
मैं आपसे कहता हूंः भय से लड़ कर कोई अभय को कभी उपलब्ध होता नहीं। भय
को जान कर अभय को उपलब्ध होता है। भय की जो वृत्ति है भीतर, उसे हम जानें, उसके प्रति पूरे कांशस हो जाएं, पूरे सचेत हो जाएं, लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। और जैसे-जैसे आप भय को जानेंगे, भय की जो व्यर्थता है वह विलीन हो जाएगी और जो सार्थकता है वह जीवन के लिए सहयोगी हो जाएगी। सहयोगी हो जाएगी जीवन के लिए। बुद्ध भी चलेंगे, तो जहां कांटा पड़ा होगा, वहां से दूर पैर रखेंगे। क्यों? स्वाभाविक है, जीवन सुरक्षा है, कांटे पर पैर रखने का कोई मतलब नहीं है। बुद्ध को भी आप थाली में भोजन परोसेंगे, तो खाना खाएंगे और थाली को छोड़ देंगे, थाली को थोड़े ही खा जाएंगे। जीवन की सुरक्षा है।
जो व्यक्ति भय के प्रति सचेत हो जाएगा, भय का जो भी जीवन संरक्षक तत्व
है वह शेष रह जाएगा और बाकी सब भय विलीन हो जाएंगे। जो व्यक्ति क्रोध के प्रति सचेत हो जाएगा, क्रोध में जो भी जीवन संरक्षक है वह शेष रह जाएगा और जो जीवन संरक्षक नहीं है वह विलीन हो जाएगा। और तब क्रोध ही तेज बन जाता है। जिस व्यक्ति में क्रोध ही नहीं, उसमें तेज ही नहीं होता। वह तो इंपोटेंट होता है, उसमें रीढ़ ही नहीं होती। उसमें कोई रीढ़ नहीं होती। उसमें कोई व्यक्तित्व नहीं होता, कोई बल नहीं होता।
जीवन में जो भी है, मैं उसे खाद की भांति समझता हूं। हम खाद को लाकर घर में ढेर लगा लें, तो दुर्गंध फैलने लगती है। लेकिन समझदार उसे बगिया में डाल देता है और फूलों के बीज डाल देता है। फूलों से सुगंध निकलने लगती है। खाद में जो दुर्गंध थी, वही फूलों में सुगंध बन गई। टरंसफार्मेशन हुआ, परिवर्तन हुआ।
जीवन में जिसको हम बुरा कहते हैं, अशुभ कहते हैं और उससे लड़ते हैं, वह अशुभ नहीं है, उस अशुभ से ही परिवर्तन होगा और जीवन में क्रांति होगी। जो- जो दुर्गंधपूर्ण है, वही सुगंधपूर्ण बन जाएगा। लेकिन उसके बदलने की कीमिया, उसके बदलने का जो राज, जो सीक्रेट हैः लड़ाई नहीं; उसका सम्यक ज्ञान, राइट नालेज। जो भी जीवन में है, उसका सम्यक ज्ञान, उसका ठीक-ठीक जानना। लड़ने वाला तो कभी जान ही नहीं पाता। जिससे आप लड़ते हैं, उसको आप कभी नहीं जान सकते हैं। जाना जा सकता है उसको, जिसे आप प्रेम करते हैं और मित्र हैं।
तो अपनी सारी शक्तियों को एकदम से निर्णय न करें कि कौन शुभ है, कौन अशुभ है। जो भी मनुष्य के भीतर है, उसमें जरूर कुछ शुभ है। जो भी मनुष्य के भीतर है, वह जरूर परमात्मा से है। जो भी मनुष्य के भीतर है, उसका कोई फल होगा आगे, कोई यात्रा होगी, कोई बीज में छिपी हुई चीज होगी। घबड़ाएं न उससे, जल्दी लड़ाई न छेड़ दें। लड़ाई छेड़ कर रुक जाएंगे और टूट जाएंगे।
तो मैं कहूंगाः उसे जानें, उसे पहचानें, उसके प्रति बोधपूर्वक समझ को विकसित करें।
द्वंद्व नहीं चाहिए मन में, अद्वंद्व ज्ञान चाहिए मन का।
लेकिन जो लोग ज्ञान की तरफ उत्सुक होते हैं, वे पूछते हैंः परमात्मा कैसा है, यह हम जानना चाहते हैं। वे यह नहीं पूछते कि क्रोध कैसा है, यह हम

जानना चाहते हैं। वे पूछते हैं कि स्वर्ग कैसा है, यह हम जानना चाहते हैं। वे यह नहीं पूछते कि हमारे भीतर भय कैसा है, यह हम जानना चाहते हैं।
मेरे पास न मालूम कितने लोग आते हैं, कोई पूछता है कि परमात्मा त्रिमूर्ति हैं या नहीं? कोई पूछता हैः उनके कितने सिर हैं? कोई पूछता हैः कितने हाथ हैं? लेकिन कोई यह नहीं पूछता कि हमारे चित्त के कितने हाथ हैं, कितने सिर हैं। हमारा चित्त! जो कुछ भी होना है, वह चित्त से होना है। धर्म मेटाफिजिक्स नहीं है। धर्म कोई फिजूल की बकवास और तत्व-चिंतन नहीं है। धर्म तो पूरी की पूरी साइकोलाजिकल म्यूटेशन है। पूरा का पूरा चित्त का आवर्तन और परिवर्तन है। पूरी क्रांति है चित्त में। तो उसी चित्त की तो क्रांति हो सकेगी जिसको हम जानेंगे।
एक दिन था कि आकाश में बिजलियां चमकती थीं और लोगों पर गिरती थीं और लोग मरते थे। आज मैं बोल रहा हूं उसी बिजली से, आपके घर में पंखा चल रहा है, हवा हो रही है, मशीन चल रही है। वही बिजली जो लोगों पर गिरती थी और प्राण लेने के सिवाय कोई काम नहीं करती थी। वह बिजली न मालूम कितने लोगों के प्राण बचा रही है। क्या हो गया? हमने बिजली को जान लिया। हम जान गए बिजली को कि क्या सीक्रेट है इसका। बस जानते से ही बिजली जीवन के लिए सहयोगी हो गई। अज्ञान में बाधा थी, ज्ञान में सहयोगी हो गई।
भीतर क्रोध बिजली की तरह शक्ति है। अभी हम जानते नहीं, इसलिए उससे टूटते हैं, परेशान होते हैं, मिटते हैं। जान लेंगे, तो वही क्रोध जीवन को न मालूम क्या गति देने लगेगा।
तो मेरा कहना है कि जीवन में कुछ भी बुरा नहीं है। हम नहीं जानते, यह बुरा है। अज्ञान में बुरा हो जाता है।
एक छोटे से बच्चे के हाथ में तलवार दे दें, खतरा हो जाएगा। तलवार ऐसे ताकत है, छोटे बच्चे के हाथ में खतरा हो जाएगा। और अभी सभी छोटे बच्चों के हाथों में तलवारें हैं। इससे दुनिया में बड़ा खतरा होता जा रहा है। समझदार आदमी के हाथ में तलवार सहयोगी हो जाएगी, ताकत बन जाएगी, जिंदगी के लिए आधार बन जाएगी।
धन्य हैं वे लोग जो क्रोध कर सकते हैं! लेकिन नरक में पड़ जाते हैं, क्योंकि क्रोध का उन्हें कोई ज्ञान नहीं है। शक्तियां मिली हैं, लेकिन शक्तियों के प्रति हम अज्ञानी हैं और अज्ञान में लड़ना शुरू कर देते हैं। और अज्ञान में न मालूम कौन-कौन सी मूढ़तापूर्ण शिक्षाएं हैं, हम उनको पकड़ लेते हैं और लड़ाई शुरू कर देते हैं। फिर जीवन टूटता है, बिगड़ता है, बनता नहीं है।
जीवन के विकास का सूत्र हैः जीवन की शक्तियों का सम्यक ज्ञान।
अपने भीतर जो भी छिपा है, उसे जानने में लगें। और देखें कि जैसे-जैसे
आप जानते जाएंगे, वैसे-वैसे आप पाएंगे कि वे ही शक्तियां जो आपके लिए घातक सिद्ध होती थीं, आपके लिए साधक हो गई हैं। वे ही जो आपके लिए मार्ग के पत्थर थे, सीढ़ियां बन गई हैं। वे ही जिन्होंने आपको रोका था, आपको पहुंचाने वाली बन गई हैं। लेकिन उनके जानने से यह हो सकेगा।...

साक्षी की साधना
नौवां प्रवचन

ध्यान आत्मिक दशा है

किन दीवालों में अपने को मैं बंद किए हुए हूं, उनकी मैं चर्चा करूंगा। क्योंकि अगर दिखाई पड़ना शुरू हो जाए, पहला तो यह जरूरी है कि दीवाल दिखाई पड़े भीतर। दिखाई पड़े तो फिर टूट सकती है। अब जिस कैदी को यही भूल गया हो कि मैं कैदी हूं, फिर तो मुश्किल हो गया, फिर कैद से छुटकारे का कोई रास्ता न रहा।
पहली तो बात यह कि यह दिखाई पड़े, अनुभव में आए कि हम भीतर कैद में घिर
गए हैं, एक बिल्कुल एक कारागृह में बंद हैं। और खुद ही उसको सम्हाले हुए हैं, खुद ही उसकी ईंटें रखते हैं, खुद ही उसकी दीवालों पर जहां-जहां द्वार है वहां-वहां बंद कर देते हैं, रोशनी भीतर न पहुंचे इसके सब उपाय करते हैं और फिर चिल्लाते हैं कि हे परमात्मा! हम अंधकार में खड़े हुए हैं, हम क्या करें? यानी हमारी स्थिति ऐसी है कि हम चारों तरफ से दरवाजे बंद करके अंधकार में खड़े हो जाते हैं और फिर चिल्लाते हैंः हे परमात्मा! हम क्या करें? बहुत अंधकार है!
परमात्मा से चिल्लाने की कोई जरूरत नहीं है, उसकी रोशनी हमेशा चारों तरफ मौजूद है। हमें देखना और जानना होगा कि हम कहीं खुद ही तो अपने दरवाजे बंद किए हुए नहीं खड़े हैं? और जैसा मैं देखता हूं, मुझे दिखता है, हम दरवाजे बंद किए हुए हैं।
तो आज की सुबह तो मैं यही पहली बात आपसे कहूंः संतुष्टि की दौड़ व्यर्थ है, इसे देखने की आंख पैदा करिए। जब भी मन किसी संतोष की तलाश में लगे, तो स्मरण रखिए कि संतोष की चीज तो मिल जाएगी, लेकिन संतोष नहीं मिलेगा। जब भी कोई दौड़ कामना की और वासना की मन को पकड़े, तो ख्याल में बोधपूर्वक देखिए कि वह मिल भी जाएगी तो भी कुछ मिलेगा नहीं। दौड़ हो जाएगी, समय व्यतीत होगा, शक्ति क्षीण होगी, लेकिन कुछ भीतर उपलब्धि नहीं होगी। सब उपलब्धियां बाहर की मिल कर भी भीतर कुछ उपलब्ध नहीं करती हैं, यह आपको दिखाई पड़ना चाहिए। और इसे देखने के लिए बाहर चारों तरफ जिनकी उपलब्धियां हैं, उन पर ध्यान करिए, उनको देखिए। चारों तरफ जिनके पास सब कुछ है, उनके असंतोष को देखिए। जिनके पास बहुत कुछ है, उनकी पीड़ा और संताप को अनुभव करिए। आंख खोलिए और चारों तरफ देखिए। अपने, दूसरे के अनुभव, इनके प्रति बोधपूर्वक स्मरण, इनका निरीक्षण, इनका ठीक-ठीक ऑब्जर्वेशन, आपके भीतर संतुष्टि का जो भ्रम है, उसे तोड़ देगा। ठीक है कि संतुष्टि की कामना है, लेकिन अगर संतुष्टि के प्रति आंख आ जाए, तो कामना विलीन हो जाएगी।
तो मैं संतुष्टि की कामना से लड़ने को नहीं कह रहा हूं, यह स्मरण रखें, मैं केवल बोध के लिए कह रहा हूं। अगर उससे आप लड़ने लगे, तो आप एक और नये पागलपन में पड़ जाएंगे। एक तरफ गृहस्थ हैं, जो संतुष्टि के पीछे दौड़ रहे हैं। एक तरफ संन्यासी हैं, जो संतुष्टि से लड़ रहे हैं। इन दोनों को ही मैं गलत समझता हूं। ये एक-दूसरे की प्रतिक्रियाएं हैं, एक-दूसरे के रिएक्शंस हैं। गृहस्थ जो गलती कर रहा है, ठीक उसके विरोध में दूसरी गलती संन्यासी करता है। एक संतुष्टि के पीछे भाग रहा है, एक संतुष्टि से भाग रहा है।
एक आदमी है जो धन के पीछे दौड़ रहा है, उसकी लार टपकी जा रही है। एक आदमी
है जो कहता है कि धन मुझे न छू ले, उसके हाथ-पैर कंपते हैं, डर लगता है कि धन कहीं छू लेगा तो क्या होगा। लेकिन दोनों का विश्वास धन में है, दोनों धन को मानते हैं, दोनों धन के उपयोग और धन की गरिमा को और धन के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। यानी वह आदमी जो धन के पीछे भाग रहा है, उतना ही धन से ग्रस्त है, जितना वह आदमी जो धन को छोड़ कर भाग रहा है, वह भी धन से ग्रस्त है। दोनों के पास आंखें नहीं हैं। ये दो अंधे हैं, जो दोनों एक-दूसरे के विरोध में भाग रहे हैं। जो गृहस्थ है और जो तथाकथित संन्यासी है, इन दोनों को मैं एक ही बीमारी के दो छोर मानता हूं। तीसरा व्यक्ति मैं उसको मानता हूं, जिसको बोध आना शुरू होता है। संतुष्टि से लड़ने का सवाल नहीं रह जाता, संतुष्टि व्यर्थ हो जाती है। लड़ता तो वह है जिसे अभी संतुष्टि सार्थक हो।

एक बहुत बड़े संन्यासी सारे यूरोप, अमेरिका में बड़ा प्रभाव छोड़ कर भारत वापस लौटे। बड़ा उनका नाम था, बड़ी उनकी ख्याति थी, हजारों लोगों ने उनको सम्मान दिया, आदर दिया। बातें उनकी बहुमूल्य थीं। क्योंकि बातें बहुमूल्य करना बहुत आसान बात है। बहुमूल्य बात करना कोई बड़ी कठिन बात नहीं है। क्योंकि बातें तो उपलब्ध हैं--ग्रंथ हैं, शास्त्र हैं, शिक्षा है; सब सीखा जा सकता है और किया जा सकता है। फिर वे भारत आए। कहते थे, सारा जगत जो है माया है; कहते थे, सारा जगत व्यर्थ है; कहते थे, सब असार है। यहां आए, जब भाग कर गए थे, तो अपनी पत्नी को छोड़ कर चले गए थे, वह पत्नी उनसे मिलने आई, तो उन्होंने दरवाजा बंद कर लिया और अपने शिष्यों से कहा कि उससे कह दो कि मैं नहीं मिल सकता हूं।
तो उनके एक शिष्य ने कहाः मैं हैरान हूं! आप कहते हैं, जगत सब झूठा है,
सब असार है। और मैंने आपको देखा, आपने किसी स्त्री के लिए कभी नहीं कहा कि द्वार बंद कर दो, उसे भगा दो। इस स्त्री को क्यों भगा रहे हैं? जरूर इसे आप अपनी स्त्री मानते हैं। इस स्त्री के प्रति आपकी दृष्टि जो है वह सामान्य नहीं है, जैसी और स्त्रियों के प्रति है। इस स्त्री में कुछ सार जरूर कहीं न कहीं है। नहीं तो इतनी घबड़ाहट क्या है?
जहां सार होता है, वहां आकर्षण होता है। अगर आकर्षण के विरोध में चले जाएं, तो घबड़ाहट शुरू हो जाती है। जो आदमी अपने आकर्षण के विरोध में जाएगा, वह घबड़ा जाएगा। जिस चीज से वह लड़ेगा, उससे डरेगा, क्योंकि कहीं वह जीत न जाए।
तो एक भोगी है, जो स्वीकार कर लेता है संतुष्टि को। एक तथाकथित त्यागी है, जो उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। मैं कोई त्यागी का पक्षपाती नहीं हूं। मेरे लिए वह अंधेपन का दूसरा शिकार है। मैं पक्षपाती हूं उसका, प्रबुद्ध चेतना का। होश होना चाहिए। अगर होश आ जाए, तो संतुष्टि विलीन हो जाती है, लड़ने का सवाल नहीं है। क्योंकि जिस व्यक्ति को दिखाई पड़ने लगे संतुष्टि का भ्रम, वह संतुष्टि से लड़ेगा कैसे? लड़ने का कोई सवाल नहीं रह जाता।
जीवन में लड़ने का प्रश्न नहीं, जागने का प्रश्न है। जो नहीं जाग पाता,
वह लड़ता है। और जो लड़ता है, वह आज नहीं कल हार जाएगा। क्योंकि वह एक ऐसे दुश्मन से लड़ रहा है, वह एक ऐसे शत्रु से लड़ रहा है, जो है ही नहीं। अगर शत्रु हो, तो उससे हम जीत भी सकते हैं। लेकिन जो शत्रु है ही नहीं, उससे जीतेंगे कैसे?
जैसे एक आदमी अपनी छाया से लड़ने लगे, तो कौन जीतेगा? छाया जीतेगी। छाया इसलिए नहीं जीतेगी कि ताकतवर है, छाया इसलिए जीतेगी कि वह है ही नहीं। तो जो इल्यूजंस से लड़ता है, वह आदमी हार जाता है। जो भ्रम से लड़ता है, वह आदमी हार जाता है। क्योंकि भ्रम को हरा ही नहीं सकते आप। वह है ही नहीं, हराएंगे क्या? लेकिन लड़ेंगे खुद, तो अपनी ताकत तो क्षीण करेंगे ही लड़ने में, धीरे-धीरे आप टूट जाएंगे और नष्ट हो जाएंगे और भ्रम जीत जाएगा, जो कि नहीं था।
संसार में संतुष्टि की खोज में जाने वाला आदमी भ्रम में है। संतुष्टि
के विरोध में जाने वाला आदमी और भी बड़े भ्रम में है। छाया को मानने वाला आदमी भ्रम में है। छाया का विरोध करने वाला आदमी और भी बड़े भ्रम में है। गृहस्थ अज्ञान में है, तथाकथित संन्यासी और भी गहरे अज्ञान में है। सवाल लड़ने का नहीं है, सवाल जागने और देखने का है, सवाल दृष्टि के खुलने का है। और दृष्टि के खुलते ही छाया विलीन हो जाती है। ज्ञात होता है कि वह थी ही नहीं। और तब दिखाई पड़ता है कि एक गलती संन्यासी कर रहा है, एक गलती गृहस्थ कर रहा है। जो छाया नहीं है, एक उससे हाथ जा.ेड कर प्रार्थना कर रहा है कि मुझे मिल जाओ और एक तलवार लिए खड़ा है कि मैं तुझे नष्ट कर दूंगा। तब जब आपको दृष्टि मिलती है, आप देखते हैं, ये दोनों पागल हैं। दोनों पागल हैं-- संन्यास और गृहस्थ, ये जो तथाकथित भोगी और तथाकथित योगी।
दुनिया में दो तरह के पागल हैं, दो टाइप हैंः एक भोग के पीछे जाने वाला, एक भोग के विरोध में जाने वाला। ये दोनों कोई मार्ग नहीं हैं। मार्ग इनके बहुत बीच में है--न विरोध में है, न भोग में है। मार्ग दृष्टि में है,

दर्शन में है। जितनी सम्यक दृष्टि होगी, जितना राइट एटिट्यूड होगा, जितना ठीक-ठीक बोध होगा, उसमें सारी बात है। वह बोध के बाबत हम धीरे-धीरे विचार करेंगे।
अभी सुबह की चर्चा तो मैं पूरा करता हूं, इस ख्याल में कि आप सोचेंगे, संतुष्टि के बाबत देखना शुरू करेंगे, तब आपमें कोई सत्य की आकांक्षा पैदा होनी शुरू होगी।
सुबह के ध्यान के संबंध में दो-चार बातें आपसे कह दूं। और फिर हम सुबह
के ध्यान के लिए बैठें। दिन में दो बार इस शिविर में हम ध्यान करेंगे, सुबह और रात्रि को। तो ध्यान के संबंध में थोड़ी बात समझा दूं।
बड़ी सरल सी बात है। आमतौर से समझा जाता है कि ध्यान का अर्थ है किसी पर ध्यान करना। उसको मैं ध्यान नहीं कहता। आमतौर से समझा जाता है, ध्यान का मतलब है किसी पर ध्यान करना--कृष्ण पर, राम पर, बुद्ध पर, महावीर पर; किसी नाम पर, किसी मंत्र पर, किसी रूप पर, किसी आकार पर। ये कोई भी ध्यान नहीं हैं। ये सबके सब विचार हैं। विचार की ही एकाग्र स्थितियां हैं। ध्यान किसी पर नहीं करना होता। ध्यान की मेरी जो परिभाषा है वह यही है कि जब आपके चित्त में कोई नहीं होता है तो आप ध्यान में होते हो। ध्यान, जब आपके चित्त में कोई नहीं होता है--राम भी नहीं, कृष्ण भी नहीं, संसार भी नहीं, दुकान भी नहीं, मंदिर भी नहीं, कोई शास्त्र भी नहीं, कोई भजन, कुछ भी नहीं--जब आपके चित्त में कुछ भी नहीं होता है, आप ही अकेले रह जाते हो, तो वह जो स्टेट ऑफ माइंड है, वह ध्यान है। किस भांति आप अपने भीतर बिल्कुल अकेले रह जाओ कि वहां कोई भी न रहे आपके सिवाय, कोई पड़ोसी न रह जाए, तो आप ध्यान में हो। जब तक कोई पड़ोसी भीतर है, तब तक आप ध्यान में नहीं हो। क्योंकि जब तक पड़ोसी भीतर है, तब तक आपका ध्यान उस पड़ोसी पर रहेगा। जब तक कोई भी चीज आपके भीतर है, तब तक आपका ध्यान उस चीज पर रहेगा, उस ऑब्जेक्ट पर रहेगा। और जब तक किसी चीज पर ध्यान रहेगा, तब तक स्वयं पर नहीं रहेगा। ध्यान एक ही तरफ रह सकता है।
अगर आप यहां बैठे हैं और आपका ध्यान मेरी तरफ है, तो फिर आपका ध्यान आपकी तरफ नहीं रह जाएगा। ठीक ही है। ध्यान की दिशा एक ही तरफ होती है।
तो अगर स्वयं पर जाना है और स्वयं की सत्ता और जीवन को देखना है, पहचानना है कि कौन है वहां, क्या है, तो सब तरफ से ध्यान-शून्य हो जाना चाहिए।
आमतौर से लोग कहेंगेः यह तो ठीक है, सब तरफ से ध्यान-शून्य हो जाएं; तो
हम उसे कहां लगाएं? बस आपने लगाने का पूछा कि आप फिर किसी तरफ लगाने की बात पूछने लगे। मैं कह रहा हूं, सब तरफ से। तो स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि यह तो ठीक है, आप कह रहे हैं, लेकिन फिर हम उसे कहां लगाएं? जब आपने पूछा, कहां लगाएं, फिर आप पूछने लगे कि फिर, फिर वह, फिर कोई चीज आप चाहते हैं जिस पर लगाया जाए।
नहीं; मैं कहता हूं, ध्यान को कहीं न लगाएं, तो आप ध्यान में हो जाएंगे। इसे थोड़ा सा समझ लें, फिर प्रयोग हम करेंगे, उससे थोड़ा अनुभव शायद होगा कि ऐसी स्थिति है जब कि ध्यान कहीं न लगा हो। क्योंकि ध्यान तो ताकत है।
मैं यहां बैठा हूं, अभी नहीं दौड़ रहा हूं, तो भी दौड़ना मेरे भीतर है। दौड़ने की शक्ति के लिए दौड़ना जरूरी नहीं है। नहीं तो फिर जो बैठे हैं, वे कभी दौड़ ही नहीं सकेंगे। फिर जो दौड़ रहे हैं, वे कभी बैठ ही नहीं सकेंगे।
दौड़ने की शक्ति मेरे भीतर इस क्षण भी है जब कि मैं नहीं दौड़ रहा हूं। जब आपका ध्यान किसी चीज पर नहीं है, तब भी ध्यान की शक्ति आपके भीतर होती है।
ध्यान की शक्ति अलग बात है और किसी चीज पर ध्यान होना उसका प्रयोग है। दौड़ने की शक्ति अलग बात है, दौड़ना उसका प्रयोग है, इंप्लिमेंटेशन है। वह तो उसका उपयोग है।
तो अभी जो हम कर रहे हैं, वह ध्यान का उपयोग कर रहे हैं। अगर उपयोग छोड़ दें, तो शुद्ध ध्यान रह जाएगा। अगर सब उपयोग छूट जाए, तो ध्यान की शक्ति मात्र रह जाएगी। वह जो ध्यान की शक्ति मात्र है, उसको मैं ध्यान कह रहा हूं। उस क्षण में, जब आप कुछ भी नहीं जान रहे हैं, स्वयं का जानना शुरू होता

है। जब आपके ज्ञान में कुछ भी नहीं आ रहा है, तब आप अपने ज्ञान में आने प्रारंभ हो जाते हैं। और जब तक आपके ज्ञान का कोई उपयोग हो रहा है, कहीं न कहीं कोई चीज उसमें आ रही है, तब तक आपका ज्ञान उसे पकड़े रहता है और अपने पर आने में असमर्थ होता है।
ध्यान का अर्थ एकाग्रता नहीं है कि किसी एक चीज पर उसे लगा देना है। ध्यान का अर्थ हैः चित्त कहीं न लगा हो, कहीं भी न लगा हो, नो व्हेयर। वह जो नो व्हेयर की, कहीं भी न होने की स्थिति है, वह स्वयं में होने की स्थिति है। जब आप कहीं भी नहीं होते, तब आप स्वयं में होते हैं। और जब आप कहीं भी होते हैं, तब आप स्वयं में नहीं होते। यह जो स्थिति है कहीं भी न होने की, यह आत्म-स्थिति है। और कहीं भी होने की स्थिति मानसिक स्थिति है।
ध्यान आत्मिक दशा है। यह आत्मिक दशा बड़ी सहज है, अगर बात ठीक-ठीक अंडरस्टैंडिंग में और समझ में हो। अन्यथा इससे कठिन और कोई चीज नहीं है। यह दुनिया में फिर सबसे कठिन बात है। यह फिर सबसे कठिन बात है। फिर एवरेस्ट पर चढ़ना बहुत आसान है और चांद पर पहुंचना बहुत आसान है और स्वयं के भीतर जाना बहुत कठिन है। इसलिए जो लोग समुद्र की पांच-पांच मील की गहराइयों में उतर जाते हैं, उनसे भी कहो कि अपने भीतर उतरो, तो वे कहेंगे, बड़ा मुश्किल है, अपने भीतर कैसे उतरें? जो लोग एवरेस्ट चढ़ गए हैं, उनसे कहो, अपने भीतर, तो वे कहेंगे, बड़ा कठिन है। फिर यह जो अत्यंत निकट है यह कठिन है, अगर बात ठीक से बोध में न हो। और अगर बात बोध में हो, तो एक कदम उठा कर बाहर जाना बहुत कठिन बात है, भीतर आना बहुत सरल बात है। क्योंकि भीतर आने के लिए कहीं भी जाना नहीं है। जाने में तो कुछ कठिनाई हो सकती है, भीतर आने के लिए कहीं भी नहीं जाना है।
कैसे यह सबसे सरल और सबसे कठिन बात संभव हो सकती है, उसके हम सुबह और सांझ को प्रयोग करेंगे।
और मेरा मतलब समझ लें, मतलब है, बिल्कुल ही खाली और शून्य हो जाना। उसके लिए कुछ आर्टिफीशियल, कुछ बड़ा कृत्रिम उपाय प्रारंभ में, बाद में तो उसका कोई अर्थ नहीं है, छूट जाना चाहिए। लेकिन प्रारंभ में थोड़ा सा एक कृत्रिम उपाय करेंगे।
और वह कृत्रिम उपाय यह है, सुबह के लिए, और रात्रि के लिए अलग उपाय करेंगे। सुबह के लिए अभी हम सारे लोग थोड़े-थोड़े फासले से बैठ जाएंगे, ताकि कोई एक-दूसरे को छूता हुआ न हो, कोई पड़ोसी न रह जाए, आप अकेले हो जाएं।
तो सारे लोग थोड़े-थोड़े फैल जाएं, अगर बाहर भी फैल जाना पड़े तो कोई हर्जा नहीं, आवाज मेरी पहुंच सकेगी। जहां-जहां छाया हो, वहां-वहां हट जाएं। लेकिन यहां भी थोड़े-थोड़े फैल जाएं, कोई किसी को छूता हुआ न हो, ताकि दूसरे का आपको ख्याल न रह जाए, आपको लगे आप अकेले ही बैठे हुए हैं।

साक्षी की साधना
दसवां प्रवचन

साक्षीभाव

पूछा हैः सुबह जो हमने साधना की साक्षीभाव की, जो हम जगाना चाहते हैं, क्या वह भी चित्त का एक अंश नहीं होगा या कि चित्त से परे होगा?

बहुत महत्वपूर्ण है और ठीक से समझने योग्य है।
साधारणतः हम जो भी जानते हैं, जो भी करते हैं, जो भी प्रयत्न होगा, वह
सब चित्त से होगा, मन से होगा, माइंड से होगा। अगर आप राम-राम जपते हैं, तो जपने की क्रिया मन से होगी। अगर आप मंदिर में पूजा करते हैं, तो पूजा करने की क्रिया मन का भाव होगी। अगर आप कोई ग्रंथ पढ़ते हैं, तो पढ़ने की क्रिया मन की होगी। और आत्मा को जानना हो, तो मन के ऊपर जाना होगा। मन की कोई क्रिया मन के ऊपर नहीं ले जा सकती। मन की कोई भी क्रिया मन के भीतर ही रखेगी। स्वाभाविक है कि मन की किसी भी क्रिया से, जो मन के पीछे है, उससे परिचय नहीं हो सकता।

यह पूछा है कि यह जो साक्षीभाव है, क्या यह भी मन की क्रिया होगी?
नहीं, अकेली एक ही क्रिया है, जो मन की नहीं है, और वह साक्षीभाव है। इसे थोड़ा समझना जरूरी है। और केवल साक्षीभाव ही मनुष्य को आत्मा में प्रतिष्ठा दे सकता है। क्योंकि वही हमारे जीवन में एक सूत्र है जो मन का नहीं है, माइंड का नहीं है।
आप रात को स्वप्न देखते हैं। सुबह जाग कर पाते हैं कि स्वप्न था और मैंने समझा कि सत्य है। सुबह स्वप्न तो झूठा हो जाता है, लेकिन जिसने स्वप्न देखा था, वह झूठा नहीं होता। उसे आप मानते हैं कि जिसने देखा था, वह था; जो देखा था, वह स्वप्न था। आप बच्चे थे, युवा हो गए; बचपन तो चला गया, युवापन आ गया; युवावस्था भी चली जाएगी, बुढ़ापा आ जाएगा। लेकिन जिसने बचपन को देखा, युवावस्था को देखा, बुढ़ापे को देखेगा, वह न आया और न गया, वह मौजूद रहा। सुख आता है, सुख चला जाता है। दुख आता है, दुख चला जाता है। लेकिन जो दुख को देखता है और सुख को देखता है, वह मौजूद बना रहता है।
तो हमारे भीतर दर्शन की जो क्षमता है, वह सारी स्थितियों में मौजूद बनी रहती है। साक्षी का जो भाव है, वह जो हमारी देखने की क्षमता है, वह मौजूद बनी रहती है। वही क्षमता हमारे भीतर अविच्छिन्न रूप से, अपरिवर्तित रूप से मौजूद है।
आप बहुत गहरी नींद में हो जाएं, तो भी सुबह कहते हैं, रात बहुत गहरी नींद आई, रात बड़ी आनंदपूर्ण निद्रा हुई। आपके भीतर किसी ने उस आनंदपूर्ण अनुभव को भी जाना, उस आनंदपूर्ण सुषुप्ति को भी जाना। तो आपके भीतर जानने वाला, देखने वाला जो साक्षी है, वह सतत मौजूद है। मन सतत परिवर्तनशील है और साक्षी सतत अपरिवर्तनशील है। इसलिए साक्षीभाव मन का हिस्सा नहीं हो सकता।
और फिर, मन की जो-जो क्रियाएं हैं, उनको भी आप देखते हैं। आपके भीतर विचार चल रहे हैं। आप शांत बैठ जाएं, आपको विचारों का अनुभव होगा कि वे चल रहे हैं, आपको दिखाई पड़ेंगे। अगर शांत भाव से देखेंगे, तो वे विचार वैसे ही दिखाई पड़ेंगे, जैसे रास्ते पर चलते हुए लोग दिखाई पड़ते हैं। फिर अगर विचार शून्य हो जाएंगे, विचार शांत हो जाएंगे, तो यह दिखाई पड़ेगा कि विचार शांत हो गए हैं, शून्य हो गए हैं, रास्ता खाली हो गया।
निश्चित ही जो विचारों को देखता है, वह विचार से अलग होगा। वह जो हमारे भीतर देखने वाला तत्व है, वह हमारी सारी क्रियाओं से, सबसे भिन्न और अलग है। जब आप श्वास को देखेंगे, श्वास को देखते रहेंगे, देखते-देखते श्वास शांत होने लगेगी। एक घड़ी आएगी, आपको पता ही नहीं चलेगा कि श्वास चल भी रही है या नहीं चल रही है। जब तक श्वास चलेगी, तब तक दिखाई पड़ेगा कि श्वास चल रही है। और जब श्वास नहीं चलती हुई मालूम पड़ेगी, तब दिखाई पड़ेगा

कि श्वास नहीं चल रही है। लेकिन दोनों स्थितियों में देखने वाला पीछे खड़ा हुआ है।
यह जो साक्षी है, यह जो विटनेस है, यह जो अवेयरनेस है पीछे, यह जो बोध
का बिंदु है, यह बिंदु मन के बाहर है, मन की क्रियाओं का हिस्सा नहीं है। क्योंकि मन की क्रियाओं को भी यह जानता है। जिसको हम जानते हैं, उससे हम अलग हो जाते हैं। जिसको भी आप जान सकते हैं, उससे आप अलग हो सकते हैं। क्योंकि आप अलग हैं ही, नहीं तो उसको जान ही नहीं सकते। जिसको आप देख रहे हैं, उससे आप अलग हो जाते हैं। क्योंकि जो दिखाई पड़ रहा है वह अलग होगा और जो देख रहा है वह अलग होगा।
साक्षी को आप कभी नहीं देख सकते। आपके भीतर जो साक्षी है, उसको आप कभी नहीं देख सकते। उसको कौन देखेगा? जो देखेगा वह आप हो जाएंगे और जो दिखाई पड़ेगा वह अलग हो जाएगा। साक्षी आपका स्वरूप है। उसे आप देख नहीं सकते। क्योंकि देखने वाला, आप अलग हो जाएंगे, तो फिर वही साक्षी होगा जो देख रहा है। जो दृश्य बन जाएगा, ऑब्जेक्ट बन जाएगा, वह फिर आत्मा नहीं रहेगी। साक्षीभाव जो है वह आत्मा में प्रवेश का उपाय है। असल में पूर्ण साक्षी स्थिति को उपलब्ध हो जाना, स्वरूप को उपलब्ध हो जाना है। वह मन की कोई क्रिया नहीं है। और जो भी मन की क्रियाएं हैं, वे फिर ध्यान नहीं होंगी। इसलिए मैं जप को ध्यान नहीं कहता हूं। वह मन की क्रिया है। किसी मंत्र को स्मरण करने को ध्यान नहीं कहता हूं। वह भी मन की क्रिया है। किसी पूजा को, किसी पाठ को ध्यान नहीं कहता हूं। वे सब मन की क्रियाएं हैं। सिर्फ एक ही आपके भीतर रहस्य का मार्ग है, जो मन का नहीं है, वह साक्षी का है। जिस-जिस मात्रा में आपके भीतर साक्षी का भाव गहरा होता जाएगा, आप मन के बाहर होते जाएंगे। जिस क्षण साक्षी का भाव पूरा प्रतिष्ठित होगा, आप पाएंगे मन नहीं है।
भारत से एक भिक्षु कोई चौदह सौ, पंद्रह सौ वर्ष पहले चीन गया। नाम था बोधिधर्म। जब वह चीन गया, उसके पहले उसकी ख्याति पहुंच गई, सारे चीन में उसकी चर्चा हो गई उसके पहुंचने के पहले। वैसा व्यक्ति था, अदभुत था। चीन का जो राजा था, वू नाम का, वह उसका स्वागत करने को सीमा पर सैकड़ों मील चल कर आया। उसने स्वागत किया बोधिधर्म का और बोधिधर्म से पूछाः मैंने बहुत विहार बनवाए, मंदिर बनवाए, भगवान बुद्ध की हजारों-हजारों मूर्तियां बनवाईं, धर्म का प्रचार किया, धर्मशालाएं बनाईं, लाखों भिक्षुओं को भोजन कराता हूं। मेरे इन सारे पुण्य कर्मों का क्या फल होगा?
बोधिधर्म ने कहाः कुछ भी नहीं।
वह वू चौंक गया! जो भी भिक्षु आते थे, वे कहते थे, ऐसा करो, इनसे बहुत लाभ है, बहुत लाभ है, बहुत पुण्य है। बोधिधर्म ने कहाः कुछ भी नहीं। और यह भी मत सोचना कि इनका कोई धर्म से संबंध है।
वह बहुत हैरान हुआ! उसने पूछाः फिर धर्म से किस बात का संबंध है?
तो बोधिधर्म ने कहाः तुमने मंदिर बनवाए, तुमने भिक्षुओं को भोजन कराया, या तुमने धन बांटा, या मूर्तियां खड़ी कीं; जब तुम यह सब कर रहे थे, तो तुम्हारे भीतर कोई जानता है कि यह सब हो रहा है, यह सब किया जा रहा है। वह जो साक्षी है, जो तुम्हारे भीतर जानता है, अगर उसमें प्रतिष्ठित हो जाओ, तो धर्म है। मंदिर बनाने में नहीं, या मंदिर में पूजा करने में नहीं, वह जो मंदिर के बनाने को भी देखता है और जानता है और मंदिर की पूजा को भी देखता है और जानता है!
कभी मंदिर में पूजा करते वक्त एकदम से ख्याल करें, तो आपको पता चलेगा,
आप पूजा भी कर रहे हैं और आपके भीतर एक बिंदु है जो जान भी रहा है कि पूजा हो रही है, पूजा की जा रही है। रास्ते पर आप चल रहे हैं, चलते-चलते एकदम से ख्याल करें, आपको दिखाई पड़ेगा, आप चल भी रहे हैं और आपके भीतर कोई जान भी रहा है कि आप चल रहे हैं। वह जो जान रहा है, वह आपका आत्यंतिक रूप से अंतरस्थ केंद्र है, वह आपकी इनरमोस्ट, सबसे गहरी स्थिति है जहां आप हैं, जहां आपका स्वरूप है।
तो बोधिधर्म ने कहाः वहां प्रतिष्ठित हों, तो धर्म में प्रतिष्ठित हैं। बाकी सब अच्छे काम हैं, धर्म से उनका कोई बहुत गहरा संबंध नहीं है।

वह वू बोला कि अगर ऐसी बात है, तो मेरा चित्त बहुत अशांत रहता है, उसी
के लिए मैंने ये धर्म के कार्य किए। मेरा चित्त कैसे शांत हो जाए, यह बता दें!
बोधिधर्म ने उसे देखा और उससे कहा कि कल सुबह चार बजे अंधेरे में आ जाना, मैं तुम्हारे चित्त को शांत कर ही दूंगा।
ऐसा कहने वाला कभी कोई व्यक्ति उसे मिला नहीं था। उसने दुबारा पूछा
कि क्या मेरे चित्त को शांत कर ही देंगे?
बोधिधर्म ने कहाः अब दुबारा मत पूछो। सुबह चार बजे आ जाना। दुबारा पूछने की क्या बात है? मैंने कहा कि मैं चित्त को शांत कर ही दूंगा। तुम जाओ।
जब वह सीढ़ियां उतरने लगा, तो बोधिधर्म ने कहाः लेकिन ख्याल रखना, जब
आओ तो चित्त को साथ लेते आना, नहीं तो मैं शांत किसको करूंगा?
वह रास्ते में बादशाह सोचने लगा कि यह तो बड़ी गड़बड़ बात है, चित्त को साथ लेते आना? जब मैं आऊंगा, तो चित्त तो साथ आएगा ही। इसमें क्या बात थी कहने की? यह कैसा पागल आदमी है! चित्त को साथ लेते आना, इसका क्या मतलब? मैं आऊंगा, तो चित्त साथ आएगा ही।
सुबह वह चार बजे क्या, तीन बजे ही आ गया। आते ही बोधिधर्म ने पूछाः लाए? चित्त को ले आए?
उसने कहाः आप कैसी बातें करते हैं? मैं आया हूं तो चित्त तो आया ही है।
तो उसने कहा कि आंख बंद करो, खोजो--चित्त कहां है? मिल जाए तो पकड़ो और कहो--यह है। और मैं उसी वक्त शांत कर दूंगा।
अब उस फकीर के साथ, उस अंधेरी रात में, उस बादशाह ने आंख बंद कीं, भीतर खोजा, आंख थोड़ी देर बाद खोलीं, उसने कहाः वह मिलता नहीं।
तो बोधिधर्म ने कहाः शांत कर दिया; जो मिलता ही नहीं है, वह शांत हो गया। तुमने कभी खोजा ही नहीं।
और वह हैरान हुआ बादशाह कि भीतर जब वह खोजने गया, तो वहां सब शांत था।
असल में जब आप भीतर खोजने जाएंगे, तो सिर्फ साक्षी रह जाएगा, खोजने वाला रह जाएगा। और अगर खोजने वाला बहुत प्रतिष्ठा से, बहुत शक्ति से अपने भीतर जाए, तो चित्त पाया ही नहीं जाएगा। चित्त हमारे सोए हुए होने का नाम है। चित्त, हमारे भीतर साक्षी जितना मूर्च्छित है, उसका नाम है। चित्त कुछ है नहीं, साक्षी की मूर्च्छा का ही नाम चित्त है, मन है। अगर साक्षी सजग हो जाए, मन नहीं पाया जाएगा।
तो यह जो मैंने प्रयोग कहा, वह कोई मन की क्रिया नहीं है, वह साक्षीभाव में धीरे-धीरे प्रवेश करने का बिल्कुल प्राथमिक चरण है। उस भाव में जितने आप गहरे जाएंगे, पाएंगे कि चित्त है ही नहीं। जब साक्षीभाव पैदा होगा, आप पाएंगे मन जैसी कोई भी चीज नहीं, मात्र आत्मा है भीतर।
यह साक्षीभाव मन का हिस्सा नहीं है, मन के बाहर है। असल में साक्षीभाव
के सोए हुए होने का नाम मन है और साक्षीभाव के जग जाने का नाम अ-मन है या आत्मा है, वह नो-माइंड, उस वक्त कोई मन आपके भीतर नहीं रह जाता।

पूछा हैः भय क्या है? और भय-मुक्ति का उपाय क्या है?

यह जो मैंने अभी कहाः साक्षी का सोया हुआ होना मन है। इसे और हम दो दिन बातें करेंगे, तो समझ में आ सकेगा कि साक्षी का सोया हुआ होना क्या है। यह जो साक्षी का सोया हुआ होना है, इससे मन पैदा हो जाता है। यानी वह सोया हुआ होना ही मन है। यह मन बड़ी छाया अस्तित्व की चीज है, बड़ा शैडो एक्झिस्टेंस है इसका। इसकी कोई वास्तविक स्थिति नहीं है। इसलिए मन हमेशा मिटने से डरा रहता है। घबड़ाहट लगी रहती है--कब मिट जाए! उस मिटने के भय से, वह मिटने की जो संभावना है, आशंका है, उससे भय पैदा होता है, फियर पैदा होता है।
पूछा है कि भय क्या है?
जिस-जिस चीज को आप अपना होना समझे हुए हैं, वे सभी चीज मरणधर्मा हैं,
यह भय है। जिस-जिस चीज को आप अपना होना समझे हुए हैं कि यह मैं हूं, वे सभी मरणधर्मा हैं। भीतर प्रत्येक की मृत्यु का स्पष्ट बोध है।

आप संपत्ति को समझे हुए हैं कि यह संपत्ति मेरी है। लेकिन आप बहुत गहरे में, हरेक व्यक्ति जानता है, संपत्ति मेरी नहीं है। क्योंकि आप नहीं थे तब भी संपत्ति थी, आप नहीं होंगे तब भी संपत्ति होगी। आप उसके मालिक हो नहीं सकते, लेकिन मालिक बने हैं।
तो मालकियत झूठी है, इसका बहुत भीतर गहरे में बोध प्रत्येक को है। तो मालकियत खोने का डर पीछे लगा हुआ है, क्योंकि वह झूठी है। इसलिए हर आदमी अपनी संपत्ति की सुरक्षा के लिए डरा हुआ है कि संपत्ति कहीं छूट न जाए। जिस यश को आप समझे हुए हैं मेरा है, आप बहुत गहरे में, प्रत्येक व्यक्ति जानता है, यश मेरा नहीं, क्षण में छूट सकता है। किसी का दिया हुआ है, बिल्कुल उधार है, अभी छीना जा सकता है। तो यश के बचाव के लिए आप भयभीत हैं। जिस देह को आप समझते हैं कि यह मैं हूं, रोज चारों तरफ देखते हैं कि देह मिट जाती है। आप भी किसी तल पर जानते हैं कि देह मिट जाएगी। इसलिए देह के मिटने का भय लगा हुआ है। आप जिन-जिन चीजों के जोड़ हैं, उन सभी चीजों के विनष्ट होने का, उन सभी चीजों के पराए होने का, उन सभी चीजों के वास्तविक संपत्ति न होने का आपके भीतर थोड़ा न बहुत बोध है। वही बोध आपको भयभीत किए हुए है। उस बोध के कारण ही आप भयभीत हैं। उसी से फियर पैदा हो रहा है।
अगर एक ईडियट हो, जड़बुद्धि हो, उसको कोई भय नहीं है। वह आग में हाथ डाल देगा। घर में आग लगी हो, वह बैठा रहेगा। तो कोई वह जड़बुद्धि कोई परमज्ञान को उपलब्ध नहीं हो गया है। असल में बोध न होने से, जो-जो चीजें मरणधर्मा हैं, उनका उसे पता ही नहीं चल रहा है। इसलिए उसे कोई भय नहीं है।
मनुष्य सबसे भयभीत प्राणी है। और भयभीत होने का कारण है, उसे बोध है।
तो जो-जो चीज गलत है, उसकी सरकती हुई अनुभूति उसे होती रहती है कि यह गलत है, यह ठीक नहीं है, यह छूट जाएगी।
एक मुसलमान बादशाह हुआ। सुबह-सुबह वह अपने दरबार में जाकर बैठा था कि
एक फकीर भीतर आया। पहरेदारों ने रोकने की कोशिश की, तो उसने कहा कि कौन मुझे रोक सकता है? कोई इसका मालिक नहीं है जो मुझे रोक सके! वह इतना दबंग था फकीर, ऐसा प्रभावशाली था कि पहरेदार घबड़ा कर खड़े हो गए। ऐसा कोई आदमी नहीं आया था। उसने कहाः हट जाओ यहां रास्ते से! कौन मुझे रोक सकता है! किसका है यह? यह किसी का भी नहीं है।
पहरेदारों ने खबर दी कि ऐसा फकीर आया है, बड़ा प्रभावशाली है और वह कहता है, किसी का मकान नहीं, कोई मुझे भीतर जाने से रोक नहीं सकता!
राजा ने कहाः उसे ले आओ।
फकीर लाया गया। उस फकीर ने कहा कि मैं इस सराय में कुछ दिन ठहरना चाहता हूं। कौन मुझे रोक सकता है!
उस राजा ने कहा कि बिल्कुल ही अशिष्ट बात बोल रहे हो। एक तो पहरेदारों
के साथ तुमने दुर्व्यवहार किया, दूसरा अब तुम मेरे निवास को, मेरे महल को कहते हो सराय! धर्मशाला! अपने शब्द वापस ले लो!
वह फकीर बोलाः मैं अपने शब्द वापस ले लूं, जो कि बिल्कुल सच हैं? नहीं, मैं तुमसे कहूंगा, अपने शब्द वापस ले लो। क्योंकि मैं इसके पहले आया तो तुम यहां नहीं थे, कोई और था जो इसका मालिक बना था। इस सिंहासन पर मुझे पहले भी यही झंझट हो चुकी है।
उसने कहाः वे कोई नहीं थे, मेरे पिता थे।
और उसने कहा कि उनके पहले भी मैं आया हूं। और तब भी यह झंझट हो चुकी है। तब वे नहीं थे, कोई और था।
राजा ने कहाः वे उनके पिता थे।
और फकीर ने कहा कि ऐसा मैं बहुत बार आया हूं। जब भी यहां पाया, तो दूसरे आदमी को पाया। और मैं तुमको पक्का कहता हूं, जब दुबारा आऊंगा, तो तुम नहीं रहोगे। तो मैं इसको सराय कहने लगा, क्योंकि यहां तो आदमी बदलते रहते हैं। यहां मालकियत किसी की नहीं। तुम अपना शब्द वापस ले लो कि यह निवास है। यह सराय है, यहां तुम आए हो, ठहरे हो, चले जाओगे।
उस राजा ने सुना, उसने दरबारियों से कहाः मैं अपने शब्द ही वापस नहीं लेता, अपना जीवन भी वापस लेता हूं। वह उठा और फकीर के पीछे हो गया। उसने कहा कि मुझे दिखाई पड़ गया कि यह सराय है। मैं इसमें हमेशा नहीं था।

लेकिन सराय को अगर हम निवास समझें, तो फियर होगा। चाहे हम ऊपर से कितना ही समझे रहें कि यह हमारा निवास है, लेकिन अगर आप धर्मशाला में ठहरे हुए हैं और आप यह समझे रहें कितना ही कि मेरा मकान है, फिर भी भीतर किसी तल पर आप झुठला नहीं सकते, आप जानते हैं कि यह मकान नहीं है, मैं ठहरा हुआ हूं। तो घबड़ाहट लगी रहेगी--कब निकल जाऊं, कब अलग कर दिया जाऊं! कब बेघर हो जाऊंगा, यह डर बना ही रहेगा, क्योंकि जहां आप ठहरे हैं, वह घर है ही नहीं। फियर पैदा होता है, भय पैदा होता है। भय इसलिए पैदा होता है कि जहां घर नहीं है, वहां घर समझे हुए हैं।
यह भय बुरा नहीं है। मेरी दृष्टि से, जिसमें यह भय नहीं है, वही बात बुरी है। यह भय बुरा नहीं है, क्योंकि जड़बुद्धि में यह भय नहीं होगा। इसलिए जितनी सतेज बुद्धि होगी, उतनी भयभीत होगी। क्योंकि सब तरफ उसे लगेगा कि जहां-जहां मैं पैर रखे हुए हूं, जमीन समझे हुए हूं, वहां जमीन है ही नहीं। उसे दिखाई पड़ेगा न! अंधा आदमी नहीं है, जिसके पास आंख है, बोध है, उसे हर चीज भयभीत करती हुई मालूम पड़ेगी। उसका जीवन धीरे-धीरे बिल्कुल ही भय से भर जाएगा, वह कंपने लगेगा पत्ते की तरह, सब भयभीत हो जाएगा भीतर। लेकिन इसी भय से अभय पैदा होगा। इसी बोध से, जब कि हरेक चीज उसे आश्वासन देने में असमर्थ हो जाएगी, जब कोई भी चीज उसे ऐसी न रह जाएगी जो अभय दे सके। जिसको दे रही है अभय, वह नासमझ है। एक आदमी दस लाख रुपये पकड़े बैठा है और सोचता है कि मैं फियरलेस हो गया, अब मुझे कोई भय नहीं है; वह पागल है। लेकिन जिसके पास बोध होगा, उसे दस लाख क्या, दस करोड़ भी, दस अरब भी अभय नहीं दे सकते। उसे दिखाई पड़ेगा यह मामला कि कितना ही मेरे पास हो, इससे भय मिटता नहीं। बल्कि जितना यह होता जाता है, यह और इसका होना भी एक नये भय का कारण हो जाता है--उसकी सुरक्षा, उसकी व्यवस्था। फिर भी वह सुरक्षित रहने वाला नहीं है।
भय का बोध बुद्धि का लक्षण है। इसलिए भय कोई बुरी बात नहीं है। असल में बुरी बात इस जीवन में और इस जगत में कुछ भी नहीं है। और जिन-जिन को हम बुरा मानते हैं, उनसे ही उसके लिए मार्ग मिलता है जिसको हम शुभ कहते हैं। अगर भय का बोध आपका पूरा हो जाए, अगर एंग्विश टोटल हो जाए, अगर घबड़ाहट और संताप पूरा हो जाए, तो आपके जीवन में क्रांति हो जाएगी। आप उस अग्नि से दूसरे आदमी होकर पैदा हो जाएंगे, आपका नया जन्म हो जाएगा।
क्योंकि जब आपको सब तरफ भय दिखाई पड़ने लगेगा स्पष्ट और कोई घर घर नहीं मालूम होगा, कोई अपना अपना नहीं मालूम होगा, कोई संपत्ति संपत्ति नहीं मालूम होगी, पैर के नीचे कोई भूमि नहीं मालूम होगी, जब ऐसे आप चारों तरफ भय से भर जाएंगे, उसी भय में बाहर का विश्वास चला जाता है और भीतर आंख मुड़ती है। उसी भय में बाहर की आस्था खो जाती है और भीतर की निष्ठा पैदा होती है। तब आप वहां खोजते हैं कि शायद यहां घर मिल जाए।
जब तक बाहर घर को समझते हैं कि मिल सकता है, तब तक आप भयभीत रहेंगे। क्योंकि घर कितना ही मिल जाए, कोई बाहर घर हो नहीं सकता, क्योंकि है नहीं। वस्तुस्थिति ऐसी है कि बाहर कोई घर नहीं है। कितना ही खोजें, मिल सकता नहीं है। भय भीतर बना ही रहेगा। हां, लेकिन अगर बाहर के सारे घर व्यर्थ मालूम हों और भय पूरा हो जाए, तो भीतर प्रवेश होगा। और वहां घर है। उसके मिलते ही अभय पैदा हो जाता है। भीतर जो भूमि है, उस पर पैर पड़ते ही अभय पैदा हो जाता है।
उसके पहले, जिनको आप समझते हैं कि जिनमें कोई फियर नहीं है, समझते हैं
कि बड़े बहादुर हैं, बड़े हिम्मतवर हैं, वे भी सब भयभीत हैं। उनके हाथ में तलवारें हैं। और तलवारें भय का लक्षण हैं।
संपत्ति को इकट्ठा कर रहे हैं, संपत्ति के बल पर कहेंगे कि मुझे कोई
भय नहीं है। लेकिन संपत्ति को इकट्ठा करना भय का लक्षण है।
क्राइस्ट ने अपने शिष्यों को एक दिन कहाः कल की जो चिंता करता है, वह भयभीत है। क्योंकि वह डरा हुआ है कि कल क्या होगा? कल का डर है। क्राइस्ट ने कहा कि इन फूलों की तरह हो जाओ; जो खिलते हैं, मुरझा जाते हैं; लेकिन जिन्हें कोई चिंता नहीं।

लेकिन फूलों को चिंता न होने को मैं कोई बहुत अच्छी बात नहीं मानता। बोध की कमी है वहां। फूल की भांति नहीं होना। यानी बोध हट जाए आपके भीतर से, तो आप भी निश्चिंत हो जाएंगे। लेकिन उस तरह की निश्चिंतता अभय नहीं लाएगी। उस तरह की निश्चिंतता के पीछे भय बना ही रहेगा। इसलिए बड़े से बड़े लोग जिन्होंने कि अपनी बड़ी निश्चिंतता कर ली, बड़ी सिक्योरिटी कर ली, वे भी भीतर भयभीत बने रहते हैं।
चंगीज जब हिंदुस्तान को लूट-खसोट कर वापस लौट रहा था... हजारों आदमी काट दिए थे। जिस देश में गया, वहां हजारों लोगों को काट दिया। जिस राजधानी में गया, पहले जाकर दस हजार बच्चों के सिर कटवा देता था और अपने सैनिकों से कहता था कि उनको भालों पर लगा कर एक जुलूस निकाल दो पूरे नगर में, ताकि लोग देख लें कि चंगीज आ गया और समझ जाएं कि कौन आ गया है! रात को जहां से फौजें निकलती थीं, बगल के गांव में आग लगा देता था, ताकि रोशनी हो जाए, फौजों का रास्ता साफ हो जाए। लेकिन अपनी मौत से ऐसा भयभीत था कि रात भर सो नहीं सकता था, बार-बार तलवार उठा लेता था। जरा ही खटका हो कि तलवार पर हाथ रख लेता था। रात सो नहीं सकता था, दिन में सोता था। कभी नहीं सोया रात में। दिन में सोता था, जब चारों तरफ नंगी तलवार लिए फौजी खड़े रहते थे, तब वह सोता था। रात के अंधकार में, मान लो फौजियों को झपकी आ जाए, मान लो अंधेरे में कोई घुस आए, इसलिए रात को नहीं सो सकता था। अंधेरे से डरता था। और ऐसे ही उसकी मौत हुई। जब हिंदुस्तान से लौट रहा था, एक रात को उसे ऐसा लगा, सपने में लगा, और जो आदमी दिन भर हत्या करेगा, रात मारे जाने का सपना देखना उसे बहुत कठिन नहीं है, बहुत स्वाभाविक है। उसने देखा कि दुष्ट घुस आए हैं, दुश्मन घुस आए हैं, और उसे मारने की तलाश में हैं। वह एकदम नींद में उठा और भागा। बाहर जो उसका टेंट था, उसकी रस्सी से उसका पैर फंस गया, गिर पड़ा और घबड़ाहट में मर गया। ऐसा आदमी जिसने लाखों लोग मार दिए निर्ममता से, वह ऐसा भयभीत था।
ये सिकंदर और नेपोलियन और हिटलर कोई बहादुर आदमी मत समझना, ये सब भयभीत लोग हैं। असल में ये दूसरे को मार कर अपने को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हम इतने लोगों को मार सकते हैं तो हमको कौन मार सकेगा! कुल और कोई बात नहीं। इसलिए जो जितना भयभीत है, उतने लोगों को मारने की कोशिश करेगा, दबाने की कोशिश करेगा। वह सेल्फ-कांफिडेंस पैदा करना चाह रहा है, आत्मविश्वास, कि जब मैं इतने लोगों को मार सकता हूं तो मुझे कौन मार सकेगा! मरने का भय है, बहुत लोगों को मार कर, लाशों को बिछा कर, वह यह विश्वास ले आता है, सिक्योरिटी पैदा कर लेता है, सुरक्षा, कि मुझे कोई नहीं मार सकता अब।
ये सब भयभीत लोग हैं। यह इतिहास जिन लोगों के खून-खराबे से भरा हुआ है,
ये दुनिया के सबसे ज्यादा भयभीत लोग थे।
लेकिन बाहर की सुरक्षा से भय जा नहीं सकता। बाहर की कोई व्यवस्था भय
को नहीं मिटा सकती। और भय से हिंसा पैदा होती है। भयभीत आदमी हिंसा करेगा, करवाएगा। क्योंकि उससे उसे विश्वास आता है कि मेरे भीतर भय नहीं है, ऐसा विश्वास अपने को दिलाता है। लेकिन भय भीतर बना रहता है।
आदमी राज्य जीत ले, बड़े पदों पर पहुंच जाए... इसीलिए चेष्टा है। राजनैतिज्ञ बहुत भयभीत आदमी होता है। बड़े से बड़े पद पर पहुंचने की उसकी जो कोशिश है, वह इसी ख्याल में है कि वहां पहुंच कर मैं निर्भय हो जाऊंगा, फिर मुझे कोई भय नहीं रहेगा। निश्चित ही। एक गांव का चपरासी है और एक राष्टपति है। तो सोचता है चपरासी, अगर मैं राष्टपति हो जाऊं, फिर मुझे कोई भय नहीं। राष्टपति होने की जो कोशिश है, या प्रीमियर होने की जो कोशिश है, या मंत्री होने की जो कोशिश है, सत्ता को पाने की जो कोशिश है, वह अपने भीतर भय को झुठलाने की कोशिश है। लेकिन कितनी ही व्यवस्था कर लो, भय तो कहीं जा नहीं सकता। बाहर की कोई व्यवस्था भय को नष्ट नहीं करती, बल्कि एक नये भय को पैदा कर देती है--कि जो व्यवस्था मिल जाती है, अब कहीं यह छूट न जाए। तो बड़े की चेष्टा शुरू होती है और नीचे जो मिला है उसे पकड़ रखने की, बचाए रखने की कोशिश शुरू होती है। और ऐसे हम भय से घिरते जाते हैं।
लेकिन यदि भीतर दृष्टि घूम जाए, तो अभय का स्थान मिल जाता है। क्योंकि वहां दिखाई पड़ता है कि जो है उसकी कोई मृत्यु नहीं है। वहां दिखाई पड़ता है

कि जो है उसका कोई अंत नहीं है। वहां दिखाई पड़ता है कि जो है उसे छीना नहीं जा सकता। वहां जो संपदा मिलती है वह नष्ट नहीं हो सकती है। यह जहां स्थिति स्पष्ट हो जाए, वहीं अभय शुरू हो जाता है।
पूछा है कि भय-मुक्ति का उपाय क्या?
उपाय मत पूछें। क्योंकि उपाय सारे लोग कर रहे हैं। भय-मुक्ति के ही उपाय कर रहे हैं। धन को इकट्ठा करने वाला भी, पद को इकट्ठा करने वाला भी, तलवार इकट्ठी करने वाला भी, शरीर को मजबूत करने वाला भी, ईश्वर का भजन-कीर्तन करने वाला भी, सब भय-मुक्ति के उपाय कर रहे हैं। भय-मुक्ति का उपाय मत पूछें, वह तो सारी दुनिया कर रही है।
भय-मुक्ति का उपाय नहीं; भय के प्रति जागरण, भय के प्रति होश--कि भय है क्यों? क्या है उसकी बुनियाद में कारण? और अगर कारण दिखाई पड़ जाए कि भय का कारण यह है कि जो अभय की भूमि है उसमें हमारा प्रवेश नहीं है, और जो भय की भूमि है वहीं हम कोशिश कर रहे हैं कि अभय उपलब्ध हो जाए। अगर यह दिख जाए, तो परिवर्तन शुरू हो जाएगा। अगर भय का स्पष्ट कारण दिख जाए, उसकी का.ॅजेलिटी दिखाई पड़ जाए, उसकी बुनियाद दिखाई पड़ जाए, तो आप अभय में प्रवेश करना शुरू कर जाएंगे।
भय को देखें और समझें कि वह क्यों है? बिना उसे समझे भय-मुक्ति के उपाय की कोशिश मत करें। और मेरा कहना है, जो समझ लेता है, उसे उपाय करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। क्योंकि जिसने समझ लिया कि भय क्यों है, उसका भय गया। भय को खोजते ही से भय चला जाएगा। हम भय को तो खोजते नहीं, उपाय खोजते हैं उससे बचने का। और तब सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं।
मुझे जैसा दिखाई पड़ता है, वह यही कि जीवन में किसी चीज से बचने की कोशिश न करें, उसे जानने की कोशिश करें। भय कुछ बुरा नहीं है, उसे जानने की कोशिश करें, उसके जानने से ही क्रांति होती है।

दूसरा प्रश्न हैः आपने मन और विचार की गति रोकने के लिए साधना बताई। गीता ने आसक्तिरहित कर्म का जो तरीका बताया, उसमें और इस तरीके में क्या फर्क है?

गीता को बीच में न लाएं। मैं और आप काफी हैं। क्योंकि यह पक्का मत समझें कि जो आप समझते हैं कि गीता में लिखा है, वही गीता में लिखा हो। गीता को कृष्ण हुए बिना समझना असंभव है। अर्जुन भी समझता था, ऐसी मेरी धारणा नहीं है। जिस तल पर जो बात कही जाती है, उसी तल पर केवल समझी जा सकती है। यही वजह है कि गीता की हजारों टीकाएं हैं। और कृष्ण कोई पागल तो थे नहीं कि उनकी एक ही बात में हजार-हजार मतलब रहे हों। एक ही आदमी की अगर एक ही बात में हजार मतलब हों, तो वह पागल होना चाहिए। उनका मतलब तो स्पष्ट ही एक रहा होगा। लेकिन हजारों टीकाएं हैं गीता पर। तो ये टीकाएं गीता पर नहीं हैं, ये अपने-अपने मन पर हैं। यह टीकाकार का मन है जो बोल रहा है। और हममें ऐसा पागलपन रहा है कि हम अपने विचार को किसी बड़े आदमी के नाम पर थोप दें, तो हमें सुख मिलता है, हमें ऐसा लगता है कि विचार तो अब निश्चित ही ठीक होना चाहिए। हम पर तो खुद हमें विश्वास होता नहीं। हमें तो विश्वास होता नहीं कि हमको ज्ञान हो सकता है। लेकिन अगर हम अपने विचार को कृष्ण पर थोप दें, तो फिर हमको धीरे-धीरे विश्वास आने लगता है कि जरूर ठीक होगा, क्योंकि कृष्ण कह रहे हैं। कह हम ही रहे हैं।
ये सारी टीकाएं कृष्ण पर जो लिखी गई हैं, ये अपने-अपने मन पर लिखी गई टीकाएं हैं, चाहे कोई भी लिखता हो। क्योंकि कृष्ण का मतलब तो गीता है। टीका, टीका उसका मतलब है जो लिख रहा है। जब भी हम कोई किताब पढ़ते हैं, तो जाने-अनजाने टीका करते हैं। वह जो टीका है, वह हमारा भाव है, हमारा विचार है।
इसलिए मैंने कहा कि गीता को अलग कर दें, मैं और आप काफी हैं। मैंने जो कहा, जिस बात को मैं आपको सुबह कहा या कल रात कहा या आगे कहूंगा, उसमें और अनासक्त कर्म के विचार में बुनियादी भेद है। मेरा कहना यह है कि अनासक्त कर्म किया नहीं जा सकता, अनासक्त कर्म होता है। क्योंकि जब आप उसे करेंगे,

कल्टिवेट करेंगे, तो उसमें आसक्ति आ जाएगी। जब आप चेष्टा करेंगे, तो वह कर्म आसक्त हो जाएगा। जब आप कोशिश करेंगे कि यह कर्म मेरा अनासक्त हो, तो क्यों कोशिश करेंगे? आखिर अनासक्त होने की वजह क्या है? वजह है कि मोक्ष पाना है, तो आसक्त हो गया। अगर कोई चीज पानी है, तो वह आसक्त हो जाएगा। वजह यह है कि हमको शांति पानी है, इसलिए अनासक्त कर्म करते हैं। तो अनासक्त कहां रहा? धन न पाना हो, यश न पाना हो, लेकिन शांति पानी है या परमात्मा पाना है। असल में जहां भी पाने का भाव है, वहां कर्म अनासक्त नहीं होगा। तो आप सोच-सोच कर चाहें कि मैं अपने कर्म को अनासक्त कर लूंगा, तो आप गलती में हैं। सोच कर कभी कर्म अनासक्त हो ही नहीं सकता। क्योंकि सोचना तो आसक्ति का ही उपाय है।
तो मैं जो कह रहा हूं, अगर चित्त शांत हो, शांत चित्त से जो कर्म निकलता है वह अपने आप अनासक्त होता है, वह करना नहीं होता। अनासक्त कर्म करने से चित्त कभी शांत नहीं होगा, क्योंकि अनासक्त कर्म तो किया ही नहीं जा सकता। लेकिन चित्त यदि शांत हो जाए, तो जो कर्म निकलेगा, वह अनासक्त होगा, क्योंकि शांत चित्त से आसक्त कर्म निकल नहीं सकता।
तो सवाल आपके कर्म का बिल्कुल भी नहीं है। क्योंकि कर्म महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण आप हो। और आप जैसे होते हो, वैसा कर्म निकलता है। तो आप अपने को तो बदलो न और कर्म को अनासक्त करना चाहो, तो पागलपन है, वह तो हो ही नहीं सकता। वह कैसे होगा? यानी आप भीतर तो कोई बदलाहट न हो और कर्म को अनासक्त करने की कोशिश चले, तो कर्म निकलता कहां से है? कर्म आपसे निकलता है। आप उसके मूल उदगम हो। और आप वही हो पुराने के पुराने और कर्म को अनासक्त करना चाहते हो।
तो हो सकता है, कर्म अनासक्त दिखने लगे, लेकिन हो नहीं सकता। उसमें आसक्ति बनी रहेगी। साधु भी जो कर रहा है उसमें आसक्ति है--वह चाहे मोक्ष की हो, चाहे ईश्वर की हो। ये भी सब वासना के ही एक्सटेंशंस हैं, उसके ही विस्तार हैं। एक साधु चेष्टा में लगा है, उपवास कर रहा है, सेवा कर रहा है, या कुछ और कर रहा है। सारे के पीछे एक वासना है कि चित्त शांत हो जाए, ईश्वर मिल जाए, आत्मा मिल जाए, मोक्ष मिल जाए, यह हो जाए, वह हो जाए, आवागमन से छुटकारा हो जाए। ये सब वासना के रूप हैं, ये सब डिजायर हैं। यह कर्म अनासक्त कैसे होगा?
अनासक्त कर्म तभी हो सकता है जब भीतर चित्त इतना शांत हो, चित्त जिस मात्रा में शांत होगा, विलीन होगा, उसी मात्रा में कर्म से आसक्ति विलीन हो जाएगी। चित्त की अशांति ही आसक्ति का मूल उदगम है।
इसलिए मैं कर्म के बदलने को नहीं कहता। कर्म को बदला ही नहीं जा सकता।
वह तो ऐसा ही है कि एक आदमी वृक्ष के पास जाए और कहे कि इसमें, वृक्ष को तो कुछ न करे और कहे कि फूल इसमें बड़े आने चाहिए या छोटे आना चाहिए, या वैसा होना चाहिए, या ऐसा होना चाहिए, फूलों पर विचार करे और वृक्ष की कोई फिकर न करे। तो क्या होगा? अगर जोर-जबरदस्ती करे, तो ऊपर से फूल लटका सकता है वृक्ष में जाकर, लेकिन वृक्ष में फूल ला नहीं सकता। क्योंकि वृक्ष में फूल कोई आते नहीं एकदम से, वृक्ष की आखिरी नीचे जो जड़ है वहां से फूल का बनना शुरू होता है, फिर वह सारे वृक्ष की यात्रा करता है फूल और फिर कहीं ऊपर आकर प्रकट होता है। जहां आपको दिखाई पड़ता है, वह तो केवल अभिव्यक्ति है, वह कोई निर्माण का स्थल नहीं है। निर्माण तो बड़े अंधेरे में और बड़े अज्ञात में हो रहा है।
कर्म भी हमारे जीवन की अंतससत्ता के फूल की भांति हैं। वहां वे बन नहीं रहे हैं, वहां तो प्रकट हो रहे हैं; बन तो बहुत गहरे में रहे हैं, बहुत अंधेरे में, बहुत अज्ञात में, अदृश्य में, वहां वे तैयार हो रहे हैं। वहां आपको पता भी नहीं कि वहां क्या तैयार हो रहा है। जब वे प्रकट हो जाते हैं, तब आप कहते हैं, यह हो गया।
एक आदमी ने हत्या कर दी, तो आप कहते हैं, उसने हत्या कर दी। हत्या करना इतनी आसान बात नहीं है। हत्या पैदा हो रही थी, बन रही थी, निर्मित हो रही थी, वर्षों से उसके भीतर तैयारी चल रही थी, उसकी चेतना उसका निर्माण कर रही थी, फिर एक दिन वह प्रकट हुई। जब प्रकट हुई, तब आपने देखा। आप समझते हैं

एक्शन वहीं हुआ? वहां नहीं हुआ, वहां तो प्रकट हुआ केवल, होना तो बहुत पीछे से चल रहा था। हो सकता है अनंत जन्मों से चल रहा हो।
और कर्म को बदलने को जो सोच रहा है, बिल्कुल पागल है। वह तो अभिव्यक्ति को बदलने की सोच रहा है, जहां कि चीजें प्रकट हो रही हैं। वहां कुछ नहीं होगा।
एक घर में से ऊपर छप्पर से धुआं निकल रहा हो, और आप जा-जा कर, खपड़ों पर बैठ कर उसको धुएं को रोकने की कोशिश कर रहे हों कि हमको धुआं नहीं निकलने देना है अपने घर में से; और घर में नीचे आग जल रही हो, उसकी कोई फिकर न हो। तो उसको आप धुएं को इधर से रोकेंगे, वह दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जाएगा, वह तो निकलेगा। उसे कैसे दबाएंगे? उसे कहां भेजेंगे? भीतर आग बुझनी चाहिए।
कर्म महत्वपूर्ण नहीं है, अंतस, अंतःकरण! कर्म तो केवल ऊपर निकलने वाला धुआं है। वह तो खबर देता है कि भीतर क्या है। और कुछ नहीं। तो भीतर की स्थिति बदलनी चाहिए। वह अगर बदल जाए, तो बाहर भी अभिव्यक्ति अपने आप बदल जाएगी।
लेकिन हम सारे लोग अभिव्यक्ति पर जोर देने वाले हो गए। धीरे-धीरे हजारों वर्षों से हमने यही समझने की कोशिश की कि कर्म को अच्छा करो-- व्यक्ति को नहीं, कर्म को। यह बात बिल्कुल ही गलत है। अंतस को अच्छा होना चाहिए, आचरण अपने आप अच्छा होगा। लेकिन हम कहते हैं, आचरण अच्छा करो। हमारी यह भ्रांति है कि आचरण अच्छा होगा तो अंतस अच्छा हो जाएगा। आचरण बिल्कुल ऊपरी चीज है, उसका कोई मूल्य ही नहीं है, मूल्य तो अंतस का है, वहीं से निकलता है। तो आप मूल को बिना बदले ऊपर के आवरण को बदलने की कोशिश में लगे हैं, तो धोखा होगा, पाखंड होगा। आचरण आप बदल सकते हैं चेष्टा करके, अंतस वही रहा आएगा।
एक राजनीतिज्ञ साधु हो सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। तो वेश बदल लेगा, राजनीति कैसे जाएगी? कपड़े बदल लेगा, सिर घुटा लेगा, रंगीले कपड़े पहन लेगा, लेकिन भीतर का अंतस कैसे बदलेगा? अंतस तो वही रहेगा। तो वह साधु हो जाएगा, लेकिन फिर साधुओं से प्रतिस्पर्धा करने लगेगा, काम्पिटीशन वहां आ जाएगा। मैं बड़ा साधु हो जाऊं, दूसरा साधु छोटा हो जाए। फिर साधुओं से लड़ने लगेगा। साधुओं को देखें करीब जाकर, तो पाएंगे, ये सारे पोलिटीशियंस हैं, ये तो सब राजनीतिज्ञ हैं। उन्होंने कपड़े बदल लिए हैं, आचरण में व्यवस्था ऊपर की कर ली है, भीतर का चित्त वही का वही है। दो राजनीतिज्ञ एक-दूसरे से मिलने को राजी हो जाएं, दो साधु मिलने को राजी नहीं होते। क्योंकि यही डर लगा रहता है, पहले कौन नमस्कार करेगा? अगर दो लोग मिलें, तो पहले कौन नमस्कार करेगा? अगर मिल गए, तो ऊपर कौन बैठेगा? नीचे कौन बैठेगा?
यह जो चित्त है, इसको बिना बदले यह सब धोखा और पाखंड हो जाता है। यह सारी दुनिया में जो हिपोक्रेसी है, यह जो पाखंड है, वह इसीलिए है कि हम आचरण को बदलने की कोशिश करते हैं, अंतस की फिकर नहीं करते। दुनिया जो पाखंड से भर गई है, उसका और कोई कारण नहीं है। उसका कुल कारण इतना है, आचरण बदलने पर हम जोर देते हैं।
हम बच्चे से कहते हैंः झूठ मत बोलो! हम उसको कह रहे हैंः अपने आचरण को बदलो। हम बच्चे से कहते हैंः देखो, बेईमानी मत करना! हम उससे कह रहे हैंः अपना कर्म ठीक रखना। हम कभी यह बता ही नहीं रहे कि अपने अंतस को ठीक बनाना। हम जो बता रहे हैं, वह कर्म को ठीक करने के लिए बता रहे हैं। अंतस तो वही होगा, कर्म को बदलने से पाखंड पैदा होगा, धोखा पैदा होगा। और अगर वह व्यक्ति बहुत ईमानदार हो, जिसको कहते हैं सिंसियर हो, तो वह पागल हो जाएगा, क्योंकि उसका अंतस विपरीत और उसका आचरण विपरीत।
जितनी दुनिया में सयता बढ़ती है, उतने पागल बढ़ते जाते हैं। उसका कोई और कारण नहीं है। उसका एक ही कारण है कि अगर कोई ईमानदारी से आचरण को बदलने की कोशिश करे बिना अंतस को बदले, तो पागल होना सुनिश्चित है, बच ही नहीं सकता। बच कैसे सकता है? क्योंकि भीतर से आएगा धुआं और बाहर लगाएगा फूल, भीतर से आएगी गंदगी और बाहर से करेगा व्यवस्था सौंदर्य की, तो कितनी दिक्कत में नहीं पड़ जाएगा! कितना टेंशन नहीं पैदा हो जाएगा! कैसे यह चलेगा?

और इसीलिए मेरी दृष्टि में, कर्म का, आचरण का, सिवाय सूचक होने के और कोई मूल्य नहीं। वह खबर देता है कि आपका अंतस कैसा है। अगर आपके आचरण में झूठ आता है, तो झूठ को बदलने की फिकर मत करिए, पहचानिए कि आपका अंतस झूठ को पैदा करने में समर्थ है। अंतस को बदलने की फिकर करिए। यह तो केवल खबर हुई, यह तो खबर दे दी गई आपके लिए।
एक आदमी आए और मुझे खबर दे दे कि तुम्हारे घर में आग लगी है, और मैं उस आदमी पर पानी डालने लगूं कि चलो, आग को बुझा दूं, तो मुझे लोग पागल कहेंगे, कि उसने केवल खबर दी है कि घर में आग लगी है, तुम उसी पर पानी डाल रहे हो! तो इससे आग घर की थोड़े ही बुझेगी। वह आदमी भी मर सकता है उलटा। लेकिन यह तो हमें दिखता है पागलपन।
कर्म जो हैं आपके, वे आपके अंतस की खबर देने वाले हैं कि भीतर आग लगी है। आचरण में, कर्म में झूठ आ रहा है, बेईमानी आ रही है, खबर ला रहा है कर्म। मेरी दृष्टि में, कर्म जो है संदेशवाहक है। आचरण जो है खबर देने वाला है। तो उसी को हम ठंडा करने लगते हैं कि इसको ठीक करो, आचरण को ठीक करो, कर्म को ठीक करो।
न, वह तो गलती हो गई। खबर को समझ लें और उस खबर के अब पीछे जाएं कि अंतस
पर क्या हो रहा है जिससे कि झूठ आचरण तक आ रहा है?
तो अंतस में परिवर्तन के उपाय हैं। अंतस में परिवर्तन का उपाय धर्म है। और आचरण में परिवर्तन का उपाय नीति है। और नीति और धर्म बुनियादी रूप से भिन्न बातें हैं। धार्मिक आदमी तो अनिवार्य रूप से नैतिक होगा। जिसका अंतस बदला, उसका आचरण तो बदल जाएगा। लेकिन नैतिक मनुष्य अनिवार्य रूप से धार्मिक नहीं होता है। क्योंकि आचरण का बदलना एक बात है, अंतस का बदलना जरूरी नहीं है।
इसलिए नैतिक मनुष्य बड़े कष्ट में जीता है। सज्जन जिनको हम कहते हैं,
वे इतने कष्ट में जीते हैं, जितने दुर्जन नहीं जीते। क्योंकि उनकी सारी तकलीफ यह है कि अंतस तो उनके खुद ही विरोध में खड़ा है और आचरण उनमें विपरीत। भीतर मन तो झूठ बोलने का होता है और वे सच बोलना चाहते हैं या सच बोलने की कोशिश करते हैं। उनका जीवन एक कांफ्लिक्ट और द्वंद्व हो जाता है। इसलिए सज्जन बड़े कष्ट में जीता है। उससे तो दुर्जन कम कष्ट में जीता है। कम से कम उसके आचरण में और अंतस में एक समानता होती है। दुर्जन, अपराधी शांति में जीता है, उसके अंतस और आचरण में समानता होती है। सज्जन बड़े कष्ट में जीता है, उसके आचरण और अंतस में विरोध होता है। संत भी शांति में जीता है, उसके भी आचरण और अंतस में समानता होती है।
इसलिए संतों में और अपराधियों में एक तरह की समानता है। समानता यही
है कि उन दोनों के अंतस और आचरण समान होते हैं। अपराधी के मन में जो बुराई उठती है, उसके आचरण में प्रकट होती है। संत के मन में बुराई उठती ही नहीं, भलाई ही उठती है, वह उसके आचरण में प्रकट होती है। भेद भलाई और बुराई का होता है, वैसे संत और अपराधी समान होते हैं। सज्जन बड़ा उपद्रव में अटका होता है, वह त्रिशंकु होता है, वह दोनों के बीच में अटका रहता है। उसके अंतस में तो अपराधी बैठा रहता है और आचरण में साधु बैठा रहता है। इससे सारी गड़बड़ हो जाती है। उसके भीतर बड़ा टेंशन, बड़ा तनाव, बड़ी परेशानी पैदा होती है।
उस परेशानी से बचने के दो ही उपाय होते हैं। या तो वह पाखंडी हो जाए, यानी वह दिखाए कुछ, वस्तुतः करे कुछ। तो उसके भीतर थोड़ी शांति आती है। मतलब वह अपराधी के करीब आ जाता है, किसी भांति अपराधी के निकट पहुंच जाता है। और या फिर वह पागल हो जाए। तो उसे बोध ही न रहे कि वह क्या कर रहा है और क्या नहीं कर रहा है, और क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है। उस हालत में भी वह अपराधी के करीब पहुंच जाता है। तीसरा रास्ता यह है कि वह अंतस में क्रांति कर ले और संत के करीब पहुंच जाए।
मेरा जोर अंतस की क्रांति पर है, ताकि आचरण की क्रांति हो सके। आचरण
की क्रांति पर मेरा जोर नहीं है, क्योंकि उससे अनिवार्यरूपेण अंतस की क्रांति नहीं होती है।
इस पर हम और धीरे से विचार करेंगे।

पूछा हैः अभी भी मानवीय असमानता आज का जटिल प्रश्न है, बताइए सत्य के खोजी को क्या करना चाहिए?

कुछ भी नहीं। चाहे प्रश्न गरीबी का हो, दरिद्रता का हो। अगर बहुत गौर
से देखें, मनुष्य के भीतर प्रेम की कमी का प्रश्न है, और कोई प्रश्न नहीं है। आज से दो हजार साल पहले अगर दुनिया दरिद्र होती, तो और भी कारण हो सकते थे। आज तो दुनिया में प्रत्येक मनुष्य को बहुत समृद्धि, बहुत सुविधा मिल सकती है, अगर प्रेम थोड़ा सा विकसित हो। प्रेम की कमी का प्रश्न है, अब और कोई प्रश्न नहीं है। इतने साधन हैं, इतनी व्यवस्था है, इतनी वैज्ञानिक प्रगति है कि अब किसी मनुष्य को असुविधा में होने का कोई कारण नहीं रह गया है सिवाय एक बात के कि मनुष्य के भीतर प्रेम की कमी है। प्रेम की कमी सारा उपद्रव बनी हुई है। संवेदना की कमी है। दूसरे के दुख-बोध की कमी है। सहानुभूति की कमी है। और यह रहेगी। यह तब तक रहेगी, जब तक मनुष्य भयभीत है। क्योंकि मैंने कहा, जो भयभीत मनुष्य है वह सुरक्षा की खोज करता है, संपत्ति को इकट्ठा करता है।
मेरे एक मित्र हैं। उनका बड़ा भवन था, बहुत सुखी थे, बगिया थी, मकान था,
सब सुविधा थी। फिर गांव में कुछ नये विकास हुए, कुछ लोगों ने पैसा कमाया और उनके ही भवन के बगल में और बड़े भवन खड़े कर दिए। तब से वे दुखी हो गए। मैंने उनसे पूछाः तुम्हारा मकान वही का वही है, दुख का क्या कारण है?
उन्होंने कहाः दिखाई पड़ने में तो वही का वही है, लेकिन अब बिल्कुल छोटा हो गया है।
तो मैंने उनसे कहाः अब तुम्हें यह ख्याल करना चाहिए, बड़ा मकान तुम्हारे दुख का कारण है तो कहीं झोपड़े का होना ही तुम्हारे सुख का कारण नहीं है, वे जो बगल में झोपड़े खड़े थे? अगर बड़ा मकान तुम्हारे दुख का कारण हो गया है, तो तुम्हारे सुख के कारण वे झोपड़े रहे होंगे जो बगल में खड़े थे। तुम जो सुख ले रहे थे अपने मकान में, वह तुम्हारे मकान में नहीं था, दूसरों के झोपड़े में था। क्योंकि अब तुम जो दुख ले रहे हो, वह तुम्हारे मकान में नहीं है, दूसरे के बड़े मकान में है।
हम अगर अपने सुख को देखें, तो हम पाएंगे, वह किसी न किसी रूप में दूसरे
के दुख पर निर्भर है। और जो सुख दूसरे के दुख पर निर्भर है, वह क्या सच में सुख हो सकता है? लेकिन हमारे भय ने ऐसी स्थिति की है। हम भयभीत हैं, सुरक्षा की खोज करते हैं, संपत्ति को इकट्ठा करते हैं, संपत्ति को इकट्ठा करते हैं, फिर उसकी सुरक्षा करते हैं, और सारी दुनिया में शोषण हमारे भय के कारण पैदा होता है।
हमारे भय के कारण शोषण पैदा होता है। हमारे भय के कारण हम सुरक्षा चाहते हैं। सुरक्षा बिना शोषण के, बिना संपत्ति के, बिना पद के इकट्ठा किए हुए नहीं हो सकती। इसलिए हम उसे इकट्ठा करते हैं।
जो आदमी भय-शून्य हो जाता है, अनिवार्यरूपेण अपरिग्रही हो जाता है, संपत्ति पर कब्जा उसका नहीं रह जाता। क्योंकि कोई कारण नहीं रह गया। लोग सोचते हैं कि महावीर ने सारी संपत्ति छोड़ी, इसलिए उनको अभय मिला। मैं नहीं सोचता। मैं समझता हूंः अभय मिला, इसलिए संपत्ति छूटी। संपत्ति छूट ही नहीं सकती किसी आदमी की जिसको अभय न मिला हो। लोग गलत ही सोचते हैं, मेरी दृष्टि में। लोग सोचते हैं, महावीर ने, बुद्ध ने सारी संपत्ति छोड़ दी, संपत्ति छोड़ने के कारण उनको अभय मिला। गलत बात है, संपत्ति कोई छोड़ ही नहीं सकता भय में। अभय मिल जाए, तो संपत्ति छूट जाती है।
तो अगर दुनिया में अभय बढ़े, अभय का अर्थ हैः अगर आत्मज्ञान बढ़े, तो दुनिया में दरिद्रता अपने आप विलीन हो जाएगी। दरिद्रता का कारण शोषण है, शोषण का कारण भय है। तो आप ऊपर से कोई भी उपाय करें, अगर आप ऊपर से सारे शोषण को मिटाने की व्यवस्था करें, तो नये तरह के शोषण शुरू हो जाएंगे। उन्नीस सौ सत्रह में सोवियत रूस में क्रांति हुई। उन्होंने पुराने वर्ग मिटा दिए। नये वर्ग पैदा हो गए। क्योंकि भय तो मौजूद है। तो पुराने वक्त में जो आदमी धन इकट्ठा करता था, वह आदमी अब कम्युनिस्ट पार्टी में

भरती होकर बड़े पद पर होने की कोशिश करता है। वही आदमी है! वह जो धन इकट्ठा करके सुरक्षा करता था, अब वह बड़े पद पर होकर सुरक्षा करता है। क्योंकि कोई सुरक्षित नहीं है, घबड़ाहट है, तो अब वह बड़े पद पर होकर... तो एक नया वर्ग पैदा हो गया।...
... हमारी प्रेजेंस, हमारी मौजूदगी भीतर नहीं है, हमेशा कहीं और है। कोई मंदिर का चिंतन कर रहा है, कोई दुकान का चिंतन कर रहा है, कोई संसार का चिंतन कर रहा है, कोई मोक्ष का चिंतन कर रहा है, लेकिन प्रेजेंस कहीं और है, कहीं दूर है। वहां नहीं है जहां हम हैं। जहां हम हैं अगर वहीं हमारी चेतना की उपस्थिति हो, तो आपको आत्म-बोध होना शुरू हो जाएगा। और इसके लिए किसी शास्त्र में, और किसी से पूछने जाने की बहुत जरूरत नहीं है; सबको जीवन मिला है, सबको चेतना मिली है, केवल जीवन और चेतना को जोड़ने की बात है। जीवन भी पास है, चेतना भी पास है, जैसे किसी आदमी के पास तेल भी हो, बाती भी हो, माचिस भी हो, लेकिन न तेल को बाती से जोड़े, न माचिस को बाती से जोड़े, और बैठा रोता रहे कि बड़ा घना अंधकार है, मैं क्या करूं? हम उससे कहेंगे, सब तेरे पास है, लेकिन संयुक्त नहीं है, वियुक्त है। तेरे पास दीया है, तेरे पास तेल है, तेरे पास बाती है, तेरे पास आग को भड़काने और जलाने का उपाय है। लेकिन तू उन सबको जोड़ नहीं रहा है।
प्रत्येक मनुष्य के पास उतना ही सामान, उतना ही साधन है, जितना महवीर
के पास हो, बुद्ध के पास हो, कृष्ण के पास हो, क्राइस्ट के पास हो, या किसी और के पास हो। प्रत्येक मनुष्य को जीवन से, परमात्मा से, उतना ही मिला है जितना किसी और को मिला है। परमात्मा ने कोई कंजूसी या कोई पक्षपात नहीं किया हुआ है। सबके लिए बराबर मिला हुआ है। लेकिन आश्चर्य है कि कुछ के दीये जलते हैं और कुछ अंधेरे में बैठे रोते रह जाते हैं। उसका संयोग नहीं है। कर्म का और ध्यान का संयोग मनुष्य को आत्मा में ले जाता है। कर्म का और ध्यान का संयोग मनुष्य को भीतर ले जाता है, अंतस में ले जाता है। कर्म और ध्यान का वियोग मनुष्य को भटकाता है अंधेरे में और निद्रा में, और जीवन में पीड़ा और दुख और चिंता के अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध नहीं होता।
तो मैं आज की संध्या यह छोटी सी बात ही आपसे कहना चाहता हूं, बड़ी छोटी
है जैसे अणु छोटा सा होता है। लेकिन अणु का विस्फोट घातक हुआ। इतनी शक्ति, इतनी ऊर्जा पैदा हुई कि मनुष्य चकित हो गया। इतनी शक्ति और इतनी ऊर्जा पैदा हुई कि हम चाहें तो पूरी पृथ्वी को नष्ट कर दें। एक छोटे से अणु में इतना राज छिपा था, हमें कभी पता नहीं था।
ऐसी एक छोटी सी बात है, कर्म को और ध्यान को संयुक्त कर देना बड़ी एटामिक है। बड़ी छोटी है, लेकिन अगर इसका संयोग हो जाए, तो विराट ऊर्जा पैदा होती है। इसी छोटे से बिंदु में परमात्मा तक की उपलब्धि संभव है। जो हम करें वह बोधपूर्वक हो, जो हम करें वह ध्यानयुक्त हो, जो हम करें वह हमारी प्रेजेंस, हमारी मौजूदगी, हमारी उपस्थिति पूरी-पूरी उसमें हो।
एक फकीर हुआ, नागार्जुन। एक गांव से निकलता था। अदभुत फकीर था। कुछ थोड़े से ऐसे अदभुत लोग हुए हैं उनमें से एक था। नंगा ही रहता था, एक लकड़ी का भिक्षापात्र ही उसकी कुल संपत्ति थी। जिस गांव से निकला उस गांव की साम्राज्ञी ने उसे बुलाया और कहा कि तुम जैसे अदभुत फकीर के हाथ में लकड़ी का यह भिक्षापात्र शोभा नहीं देता, मैंने एक भिक्षापात्र बनाया सोने का, उसमें बहुत बहुमूल्य जवाहरात जड़े हैं, वह तुम्हें मैं भेंट करती हूं, इतनी कृपा करो, इनकार मत करना।
नागार्जुन बोलाः मैं क्यों इनकार करूंगा। जैसा लकड़ी वैसा सोना--हमें भीख मांगने से मतलब, रोटी खाने से मतलब। कोई साधारण संन्यासी होता, वह कहता, क्षमा करें, हम सेने को छू सकते हैं! सोना और हम छुएंगे! आंख फेर लेता, भागता वहां से कि सोना कहीं पकड़ न ले। लेकिन जो जानता है उसे सोना और मिट्टी में भेद नहीं। जो नहीं जानता वह सोने से भागता है या सोने के लिए भागता है। ये दोनों अज्ञानियों के दो दल हैं। एक सोना पाने के लिए भागता है, एक सोने से घबड़ा कर भागता है। अज्ञानियों के दो दल हैं। लेकिन जो जानता है उसे सोने से भागना नहीं है, सोने के लिए भी भागना नहीं है। उसने कहा कि

अगर तुझे इससे सुख मिलता है तो ठीक है, यही ठीक है, हमें तो रोटी खानी है, हम इसमें ही मांग कर खा लेंगे।
वह लेकर चला, लेकिन चलते वक्त उसने रानी को कहा कि देख, लेकिन इसमें एक खतरा है। लकड़ी का था तो कोई चुराता नहीं था, इसको कोई न कोई ले जाएगा। थोड़ी देर में हम बिना पात्र के हो जाएंगे। तो इतना ख्याल रखना, मेरा पात्र फेंक मत देना, कल मैं उसको मांग लूंगा।
तो रानी ने कहा कि इतने जल्दी?
उसने कहाः बहुत मुश्किल है यह पात्र मेरे पास बचे।
वह वहां से निकला, लेकिन गांव में एक नंगा आदमी, एक सोने का एक चमकता हुआ पात्र, उसमें जहावरात जड़े हुए हैं, तो सबकी आंखें गईं। गांव का जो बड़ा चोर था, वह पीछे हो लिया। नागार्जुन ने बार-बार उसके पैर की आवाज सुनी। उसने कहा कि ठीक है, जिसको चाहिए वह आ गया। वह गांव के बाहर एक खंडहर में ठहरा हुआ था--वहां न कोई द्वार थे, न खिड़की थी, न कोई दरवाजा था--वह अंदर गया, दोपहर का वक्त था, वह भोजन करके दोपहर को सो जाएगा। उसने सोचा कि वह आदमी तो आ ही गया है--वह बाहर आकर दीवाल के पीछे छिप कर बैठ गया--उसने सोचा, इसे व्यर्थ बाहर बिठाए रखूं, दोपहर ही है, मैं तो भीतर बैठा हूं, वह धूप में बैठा हुआ है, फिर थोड़ी-बहुत देर में ले ही जाएगा, तो इतनी देर बिठालने का पाप मैं क्यों मोल लूं। और फिर जिसे ले ही जाना है, उसे दे देना उचित है। कम से कम दान का तो मजा रहेगा, और उसको भी चोरी का कष्ट न होगा। उसने पात्र को उठाया, खिड़की के बाहर फेंक दिया।
वहां पात्र गिरा, तो चोर हैरान हो गया! पहले ही हैरान था, एक नंगा फकीर
और हाथ में लाखों की कीमत की चीज लिए हो, अब और हैरान हुआ कि इस पागल ने फेंक क्यों दिया? उसे कुछ बड़ी हैरानी हुई। अभी तक तो सोच रहा था कि इसको पा जाऊंगा तो बहुत कुछ मिल जाएगी, बहुत उपलब्धि हो जाएगी, अब ऐसा लगा कि एक आदमी ने जब इसे फेंक दिया, तो इसको मैंने पा भी लिया, तो कौन सी उपलब्धि हुई? जब ऐसे लोग भी जमीन पर हैं जो इसे फेंक सकते हैं, और मैंने पा भी लिया, तो कौन सी उपलब्धि हुई? जरूर इससे भी ऊपर कोईर् उपलब्धि की चीजें होनी चाहिए, नहीं तो इसको फेंकने वाले लोग नहीं हो सकते! वह उसने कहा कि मैं जरा भीतर... उसने खिड़की से खड़े होकर कहा कि भिक्षु, मैं धन्यवाद करता हूं, मैं आया था चोरी करने, तुमने भेंट कर दिया। क्या इतनी आज्ञा और दोगे कि मैं भीतर आऊं और पांच क्षण तुम्हारे पास बैठ जाऊं?
नागार्जुन ने कहाः मित्र, इसीलिए बाहर पात्र फेंका कि तू भीतर आ सके।
तू भीतर तो आता, लेकिन चोर की तरह आता, तो तेरा चित्त भीतर न आ पाता, तेरा चित्त बाहर रह जाता। घबड़ाया हुआ आता, चित्त तेरा बाहर ही जाने का रहता। लेता और भागता। अब तू आएगा, तो निश्चिंत आ सकता है। तुम भीतर आ जाओ।
वह चोर भीतर आया। यह आदमी अदभुत था, हैरानी...

साक्षी की साधना
ग्यारहवां प्रवचन

ध्यान एकमात्र योग है

वह शांति का अनुभव आपके भीतर सत्य की प्यास बन जाए, तब तो ठीक। अगर आप समझ लें कि वही सत्य है, तो आप भूल में पड़ गए हैं और भ्रांति में पड़ गए हैं। वह सत्य नहीं है। उससे केवल प्यास पैदा होनी चाहिए कि जो इस व्यक्ति के भीतर उपलब्ध हुआ है वह मेरे भीतर कैसे पैदा हो जाए? वह व्यक्ति जो आपके भीतर इस भांति की प्यास, असंतोष पैदा कर देता है, ठीक अर्थों में आपका सहयोगी है। और जो व्यक्ति इस भ्रांति को पैदा करता है कि आपको मैं सत्य दे दूंगा, उससे बड़ा शत्रु इस जमीन पर आपका दूसरा नहीं हो सकता है।
मेरी दृष्टि में जो दिखाई पड़ता है, सीखने का मूल्य है। डिसाइपलशिप का, शिष्य होने का मूल्य है। लेकिन गुरु बनाने का कोई मूल्य नहीं है। और गुरु होना तो बहुत मूर्खतापूर्ण बात है। बहुत ईडियाटिक है। कोई आदमी इस ख्याल में हो कि मैं किसी का गुरु बन जाऊं, यह आदमी तो बहुत इम्मैच्योर है, इसकी तो अभी बुद्धि परिपक्व नहीं हुई, अभी यह बहुत बच्चे जैसा है। किसी को नीचे बिठालने का, पैर छुलाने का मजा लेना चाहता है, और इसे कोई अर्थ नहीं है। इसकी बातों का कोई बहुत मूल्य नहीं हो सकता।
इसलिए मैंने कहाः आध्यात्मिक जीवन में कोई गुरु नहीं होता; शिष्य होते हैं। वे भी गुरु से नहीं बंधते, ज्ञान की खोज करते हैं और जहां से मिल जाए--अज्ञात स्रोतों से, अज्ञात लोगों से, अज्ञात घटनाओं से--उनका हृदय खुला होता है और वे लेने को राजी होते हैं।

और प्रश्न पूछा हैः मेरे ख्याल से साधकों की भिन्न-भिन्न प्रकृति होती है। ज्ञान, भक्ति या कर्म से स्व-चेतन में जागरण होता है, क्या आप स्वीकारते हैं? क्योंकि भक्ति की अनन्य उपासना से भी साधक स्व-चेतन पूर्णरूपेण जाग्रत होता है।

मेरी दृष्टि में कोई ज्ञान, भक्ति और कर्म अलग बातें नहीं हैं। ऐसा समझा जाता रहा है कि तीनों अलग बातें हैं। मेरी दृष्टि में तीनों बातें अलग नहीं हैं।
अगर ज्ञान न हो, तो भक्ति अंधी होगी। और अंधी भक्ति कहीं भी नहीं ले जा सकती है। अगर भक्ति न हो, तो ज्ञान बिल्कुल रूखा और मानसिक होगा, उसमें कोई गहराई नहीं हो सकती, हार्दिक उसके भीतर कोई जड़ें नहीं हो सकतीं। अगर अकेला कर्म हो, भक्ति न हो, ज्ञान न हो, तो कर्म अंधा होगा, रस-शून्य होगा, हृदय-रिक्त होगा। वैसा कर्म भी कहीं नहीं ले जाता है। अगर अकेला ज्ञान हो, कर्म न हो, तो वैसा ज्ञान वंध्या होगा, उससे कोई सृजनात्मकता, कोई क्रिएटिविटी पैदा नहीं होती। वह केवल मानसिक ख्याल होगा। जीवंत नहीं होगा, लिविंग नहीं होगा। कर्म उसे जीवंत गुण देता है।
ये तीनों अलग हैं, यह बात ही बड़ी गलत है। ये तीनों बिल्कुल संयुक्त और इकट्ठे हैं। ऐसा कोई मनुष्य देखा है जो केवल हृदय हो? ऐसा मनुष्य नहीं हो सकता। हां, कहीं किसी यंत्र में हृदय को निकाल कर रखा जा सकता है और कृत्रिम रूप से चलाया जा सकता है। लेकिन अकेला हृदय हो, ऐसा कोई मनुष्य नहीं हो सकता। ऐसा कोई मनुष्य देखा है जो अकेला मस्तिष्क हो? या ऐसा कोई मनुष्य देखा है जो अकेला कर्म हो? ऐसा कोई मनुष्य नहीं होता। मनुष्य तीनों का जोड़ है, संयुक्त समन्वय है।
आप कहेंगेः किसी में कर्म की प्रभावना होती है, किसी में ज्ञान की, किसी में हृदय की, भाव की।
मैं कहूंगाः अगर एक भी अंग इनमें से प्रधान है, तो वह मनुष्य अभी ठीक
से संयम को, संतुलन को उपलब्ध नहीं हुआ। अभी वह आदमी बीमार है। जैसे एक बच्चे का सिर बहुत बड़ा हो जाए और हाथ-पैर बिल्कुल छोटे रह जाएं, ऐसे हमारे पंडित हैं। उनका सिर तो बहुत बड़ा हो जाता है, और सब छोटा रह जाता है। जैसे किसी के हाथ-पैर तो बहुत बड़े-बड़े हो जाएं और सिर बिल्कुल छोटा रह जाए, ऐसे

हमारे कर्मयोगी हैं। वे जो कर्मनिष्ठ मालूम होते हैं, वे हैं। और जैसे किसी में केवल भाव ही भाव रह जाए, रोता हो, गाता हो, कविता करता हो, और जीवन में कुछ भी न हो, भजन करता हो, चिल्लाता हो, कूदता-फांदता हो, ऐसे हमारे तथाकथित भक्त हैं, कवि हैं। ये जीवन के अपंग जीवन के उदाहरण हैं। ये कोई भी ठीक-ठीक संयम को, संतुलन को, बैलेंस को, जीवन की सिंथीसिस को उपलब्ध हुए लोग नहीं हैं। ये सब अधूरे विकास हैं।
मेरी दृष्टि में, संपूर्ण रूप से मनुष्य का व्यक्तित्व तभी विकसित होता है, जब ये तीनों एक समवेत स्वर को उपलब्ध हो जाते हैं। जब एक हार्मनी को, एक संगीत को, इन तीनों के भीतर उपलब्ध हो जाता है। लेकिन उस संगीत का प्रारंभ, न तो मैं मानता हूं ज्ञान है, न मैं मानता हूं भक्ति है, न मैं मानता हूं कर्म है। मैं तो ध्यान को मानता हूं। ध्यान तीनों का प्राण है। अगर कर्म में ध्यान हो, तो कर्म करने योग्य हो जाता है। अगर प्रेम ध्यानयुक्त हो, तो प्रेम भक्ति हो जाता है। अगर ज्ञान ध्यानपूर्ण हो, तो ज्ञान ज्ञानयोग हो जाता है। ध्यान इन तीनों को जोड़ने वाला सेतु, इन तीनों के भीतर प्रवाहित होने वाला आंतरिक हृदय है।
ध्यान न तो ज्ञान है, क्योंकि कोई ग्रंथ पढ़ने से ध्यान नहीं उपलब्ध होता। और न ध्यान भक्ति है, क्योंकि गिड़गिड़ाने से और प्रार्थना करने से, नाचने से, कूदने से और संगीत में अपने को भुलाने से कोई ध्यान उपलब्ध नहीं होता। वरन क्या होता है, वह मैं कहूंगा। और न ही ध्यान मात्र कर्म है कि कोई कर्मठ हो, सेवा करे या कुछ करे, तो ध्यान उपलब्ध हो जाता है। ध्यान तो एक अलग बिंदु है, वह तो जीवन में साक्षीभाव को स्थापित करने से उपलब्ध होता है।
अगर कोई अपने कर्म के जीवन में साक्षीभाव को उपलब्ध हो जाए, जो भी करे, उसका साक्षी भी हो, तो कर्म ही धर्म का अंग हो जाएंगे। तब सेवा धर्म हो जाएगी। तब जो किया जा रहा है वह धर्म हो जाएगा।
जापान में एक साधु था, लिंची। किसी ने उससे पूछा कि तुम क्या करते हो? क्या है तुम्हारी साधना? क्या है तुम्हारा योग?
लिंची ने कहाः पूछते हैं क्या करता हूं? नहीं; धर्म मेरे लिए कोई विशेष रूप का करना या कर्म नहीं है, वरन जो भी करता हूं उसे बोधपूर्वक करता हूं। सुबह झाडू लगाता हूं, तो उसे भी बोधपूर्वक लगाता हूं। बगीचे में जाकर गड्ढा खोदता हूं, तो उसे भी बोधपूर्वक खोदता हूं। भोजन करता हूं तो भी और कपड़े पहनता हूं तो भी। चौबीस घंटे जो भी करता हूं उसे बोधपूर्वक करता हूं। इस बोधपूर्वक करने में ही कर्म ध्यान का हिस्सा हो जाता है।
प्रेम हम करते हैं। प्रेम अगर बोधपूर्वक न हो, तो वासना बन जाता है और मोह बन जाता है। प्रेम यदि बोधपूर्वक हो, तो प्रेम से बड़ी मुक्ति इस जगत में दूसरी नहीं है, प्रेम भक्ति हो जाता है। और भक्ति के लिए मंदिर जाने की जरूरत नहीं है। भक्ति के लिए प्रेम का ध्यानयुक्त होना जरूरी है। अगर आप अपने बच्चे को, अपनी पत्नी को, अपनी मां को, अपने मित्र को, किसी को भी प्रेम करते हैं, अगर वही प्रेम ध्यान से संयुक्त हो जाए, अगर उसी प्रेम के आप साक्षी हो जाएं, तो वही प्रेम भक्ति हो जाएगा। प्रेम जब बोधपूर्वक हो, तो भक्ति हो जाता है। प्रेम जब अबोधपूर्वक हो, तो मोह हो जाता है।
ज्ञान जब बोधपूर्वक हो, तो मुक्त करने लगता है। और ज्ञान जब अंधा हो, मूर्च्छित हो, तो बांधने लगता है। वैसे ही अगर कोई विचारों को इकट्ठा करता रहे, शास्त्र पढ़ता रहे, व्याख्याएं पढ़ता रहे, विश्लेषण करता रहे, तर्क करता रहे और सोचे कि ज्ञान उपलब्ध हो गया, तो गलती में है। वैसे ज्ञान नहीं उपलब्ध होता, केवल ज्ञान का बोझ बढ़ जाता है। वैसे मस्तिष्क में कोई चैतन्य का संचार नहीं होता, केवल उधार विचार संगृहीत हो जाते हैं। लेकिन अगर ज्ञान के बिंदु पर ध्यान का संयोग हो, साक्षी का संयोग हो, तो फिर विचार तो नहीं इकट्ठे होते, बल्कि विचार-शक्ति जाग्रत होना शुरू हो जाती है। तब फिर बाहर से तो शास्त्र नहीं पढ़ने होते, भीतर से सत्य का उदघाटन शुरू हो जाता है।
मेरी दृष्टि में, ध्यान एकमात्र योग है। न तो कर्म कोई योग है, न भक्ति कोई योग है और न ज्ञान कोई योग है। ध्यान योग है। और आपकी प्रकृति कुछ भी

हो, ध्यान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। ध्यान को छोड़ कर जो किसी भी मार्ग को पकड़ने के ख्याल में हो, वह भूल में पड़ जाएगा। भूल में पड़ना सुनिश्चित है। क्योंकि तब ध्यान से रिक्त होकर अगर उसने कर्म किया, तो कर्म ही उसके अहंकार को मजबूत करने का साधन हो जाएंगे। हम जो भी कर्म करते हैं, प्रत्येक कर्म की सफलता में हमें रस आता है और असफलता में विषाद होता है, दुख होता है--यदि ध्यानयुक्त कर्म न हो तो। जैसा मैंने दोपहर को कहाः अगर ध्यान उपलब्ध हो तो कर्म अनासक्त हो जाएंगे। अगर ध्यान उपलब्ध न होगा, तो कर्म किसी न किसी रूप में आसक्त होंगे। और आसक्त कर्म यदि सफल हो तो सुख मिलता है, असफल हो जाए तो दुख मिलता है। फिर चाहे वह दुकान हो, चाहे आश्रम हो। फिर चाहे वह पैसा कमाना हो, चाहे सेवा करना हो। अगर सफलता में सुख मिलता है, असफलता में दुख मिलता है, तो कर्म हमारा आसक्त है। और आसक्त कर्म मुक्ति नहीं ला सकता। लेकिन ध्यान उपलब्ध हो, तो कर्म अनासक्त हो जाएगा और कर्म मुक्ति लाने का मार्ग हो जाएगा। लेकिन मूलतः मार्ग होगा ध्यान, कर्म नहीं।
अब कोई भक्ति करता हो, प्रार्थना करता हो, भगवान के मंदिर में जाता हो, पूजा करता हो, गीत गाता हो, नाचता हो, संगीत में धुन लगाता हो, वह आदमी मूर्च्छित हो जाएगा इन सब बातों से। संगीत मूर्च्छा लाता है, इसलिए सुखद मालूम होता है। जब आप संगीत सुनते हैं, तो उसका रस आपके भीतर मूर्च्छा लाता है।
कभी आपने ख्याल नहीं किया। अगर कोई आपसे कहे कि भोजन करने में खूब रस
लो और अच्छे-अच्छे भोजन करो तो भगवान मिल जाएगा, तो आप शायद राजी नहीं होंगे--कि ऐसे कैसे मिल जाएगा? अगर कोई कहे कि बहुत अच्छे-अच्छे मखमली वस्त्र पहनो, उनके स्पर्श का आनंद लो, बहुत बढ़िया गद्दों पर सोओ, बहुत बड़े महलों में रहो तो भगवान मिल जाएगा, तो आपको विश्वास नहीं होगा। क्योंकि आप कहेंगे कि यह तो इंद्रिय सुख है! लेकिन संगीत पर आपने ख्याल किया? वह भी कान की इंद्रिय का सुख है, और कुछ भी नहीं है। भोजन सुख है, वह भी इंद्रिय का है; वस्त्र सुख है, वह भी इंद्रिय का है; सेक्स सुख है, वह भी इंद्रिय का है; संगीत सुख है, वह भी इंद्रिय का है। लेकिन संगीत को आप समझते हैं वह कोई आध्यात्मिक बात हो गई। वह भी आपकी ध्वनि के रस, कान पर पड़ी हुई मधुर ध्वनियों का रस है। उससे आपकी कान की इंद्रिय प्रभावित हो रही है और सुख में जा रही है। फिर जब आप किसी भी चीज में प्रभावित होते हैं, तो तल्लीन हो जाते हैं। तल्लीन होने से भ्रांति पैदा होती है। तल्लीन होने से सारी दिक्कत पैदा होती है।
धर्म का संबंध तल्लीनता से नहीं, जागरूकता से है। तल्लीनता तो एक तरह
की मूर्च्छा है। तल्लीनता का अर्थ हैः दूसरी किसी बात में अपने को खो देना, भूल जाना। वह एक तरह की फॉरगेटफुलनेस है। और जब भी हम किसी चीज में अपने को भूलते हैं तो सुख मिलता है, क्योंकि दिन-रात अपने से ऊबे हैं और परेशान हैं। चौबीस घंटे की चिंताएं घबड़ाए हुए हैं, परेशान किए हुए हैं। एक आदमी सिनेमा देखने चला जाता है, तीन घंटे भूल जाता है कि मैं हूं।
वह सोचता है कि कहानी बहुत अच्छी थी चित्र की, इसलिए बहुत आनंद आया। असली आनंद यह नहीं है। असली आनंद का कारण यह है कि चौबीस घंटे की ऊब, बेचैनी, अपने से घबड़ाया हुआ पन, वह तीन घंटे को भूल गया, उसे ख्याल नहीं रहा कि मैं कौन हूं। मैं कौन हूं, उसे ख्याल नहीं रहा तीन घंटे। इस तीन घंटे के विस्मरण ने उसे चिंता से मुक्त कर दिया, वह सोचता है बहुत आनंद आया। इसीलिए सारी दुनिया में लोग शराब पीते हैं और नशा करते हैं, ताकि अपने
को भूल जाएं। अपने को भूल जाने में सुख मिलता है। सेक्स का, कामुकता का इतना आकर्षण है, क्योंकि हम अपने को भूल पाते हैं। जिन-जिन चीजों से हम अपने को भूल जाते हैं, उन्हीं-उन्हीं चीजों में रस है।
अगर भक्ति ध्यानपूर्वक न हो, तो भक्ति भुलाने का उपाय है, अपने को भुलाने का उपाय है। आप उतनी देर अपने को भूल जाते हैं। और जितनी देर आप अपने को भूल जाते हैं, उतनी देर इस ख्याल में न रहना कि आप परमात्मा के निकट हैं। क्योंकि जो आदमी अपने को भूल गया, वह अपने ही निकट नहीं, परमात्मा के निकट कैसे होगा? परमात्मा के निकट होने के लिए पहले अपने निकट

होना जरूरी है। तो जो भी चीज आपको भुलाती है, वह स्वयं से दूर कर रही है, स्वयं के निकट नहीं ला रही।
धर्म का संबंध आत्म-विस्मरण से नहीं, सेल्फ-फॉरगेटफुलनेस से नहीं, बल्कि सेल्फ-रिमेंबरिंग, आत्म-स्मरण से है। जितना आपको स्व-बोध स्मरण में आएगा, उतने ज्यादा आप स्वयं के निकट और परमात्मा के निकट होंगे। जितना ज्यादा आप अपने को भूलेंगे, उतने ही ज्यादा आप स्वयं से दूर होंगे और परमात्मा से दूर होंगे।
परमात्मा के निकट होने का द्वार स्वयं के भीतर है। वह स्व-बोध है। वह कांशसनेस है। वह जो चेतना है आपके भीतर, वह है। इस चेतना को डुबाने की कोशिश मत करिए। इस चेतना को डुबाने के सब उपाय इंटाक्सिकेंट्स हैं, सब नशे हैं। फिर चाहे वह संगीत का हो, चाहे भजन-कीर्तन का हो। जब कोई आदमी गांजा पी ले, या भांग पी ले, या मैक्सलीन पी लेता है, या बहुत पुराने दिनों में हम सुनते हैं, सोमरस पी लेते थे, या अभी अमेरिका में नई-नई ईजादें, लिसर्जिक एसिड है, उसको ले ले, या अभी एक नया इंजेक्शन उन्होंने बनाया, मैक्सलीन है, उसका इंजेक्शन लगवा ले, छह घंटे के लिए आप बिल्कुल तल्लीन हो जाएंगे। सारी दुनिया के भक्ति-पंथों ने किसी न किसी रूप में नशे का उपयोग करना शुरू कर दिया। संगीत में भी नशे की तरकीब दिखाई पड़ी, सारे भक्ति-पंथों ने संगीत का उपयोग शुरू कर दिया। जिस चीज में भी भुलाने का उपाय है, उसका उपयोग शुरू हो गया।
ये, ये कोई आप... मैं एक मंदिर में गया था पीछे। वहां मैंने देखा, सब तरफ
से द्वार बंद हैं, अंदर बहुत धूप जल रही है, दीप जल रहे हैं, उनकी गंध तेजी से फैल रही है। तेज गंध भी बेहोश करती है। इसलिए सारी दुनिया के भक्ति-पंथ तेज गंध का उपयोग करते हैं। गंध बेहोश करती है, मूर्च्छा लाती है। अगर बहुत तीव्र गंध हो, आप मूर्च्छित हो जाएंगे। तो वहां तीव्र गंध है, द्वार सब बंद हैं, दीवालें बड़ी हैं, कहीं से कोई रास्ता नहीं निकलने का, गंध भरी हुई है जोर से, गंध मूर्च्छित कर रही है। फिर जोर से बैंड बजाए जा रहे हैं, संगीत हो रहा है, नृत्य हो रहा है एक पुजारी का, और सारे लोग खड़े हैं मंत्रमुग्ध। मैंने वहां चेहरे देखे, वे चेहरे मुझे सब हिप्नोटाइज्ड मालूम हुए, वे सब चेहरे आत्म-सम्मोहित मालूम हुए। वे होश में नहीं हैं। और बेहोशी का सब इंतजाम है।
इसको मैं भक्ति नहीं कहता। इसको कहते रहे होंगे आप, मैं इसको भक्ति नहीं कहता। यह तो सब मूर्च्छा है। यह तो अपने को भुलाना है।
मैं तो भक्ति कहता हूं उस प्रेम को जो ध्यानयुक्त हो जाए। प्रेम जब ध्यानयुक्त होता है तो भक्ति बन जाता है।
रामानुज एक गांव में गए। एक व्यक्ति ने उनसे आकर कहा कि मुझे ईश्वर को खोजना है, मुझे भक्ति का कोई रास्ता बता दें।
रामानुज ने उस व्यक्ति को देखा और कहाः तुम किसी को प्रेम करते हो?
उस आदमी ने सोचा, प्रेम करना तो डिसक्वालिफिकेशन होगी, यह तो एक अयोग्यता होगी। मैं कहूं कि मैं प्रेम करता हूं किसी को, शायद ये कहेंगे, भागो यहां से। अब ये सब प्रेम वगैरह छोड़ कर आओ, तब भक्ति हो सकती है। भगवान को चाहना हो और प्रेम किए जा रहे हो! तो उसने कहाः मैं तो कभी किसी को प्रेम किया ही नहीं।
तो रामानुज ने कहाः थोड़ा सोचो, किसी को थोड़ा-बहुत कभी किया हो?
उसने कहाः आप बिल्कुल सच मानिए, रत्ती भर कभी यह प्रेम की झंझट में मैं पड़ा ही नहीं, मैंने कभी किसी को प्रेम किया ही नहीं।
रामानुज ने कहाः फिर एक मौका देता हूं कि थोड़ा सोचो!
उसने कहाः आप बिल्कुल पक्का मानिए। उसने रामानुज के पैर पकड़ लिए कि
आप शक क्यों करते हैं! मैंने कभी प्रेम, प्रेम का मुझे पता ही नहीं कि क्या होता है!
रामानुज ने कहाः मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। जब तुम्हें प्रेम का ही पता नहीं, तो भक्ति का कैसे पता होगा? तुमने अगर किसी को प्रेम किया होता, तो वही प्रेम भक्ति बनाया जा सकता था। वह प्रेम में काफी ताकत थी, उसमें और ध्यान जोड़ देते तो वह भक्ति बन जाता। लेकिन तुम कहते हो, तुमने प्रेम ही

नहीं किया। तो अब मैं असमर्थ हूं; अब कुछ भी नहीं किया जा सकता। तुम जाओ, पहले प्रेम करो। पहले प्रेम को अनुभव करो।
मैं नहीं मानता हूं कि आप जो प्रेम करते हैं, वह कोई परमात्मा के विरोध में है, वह भी परमात्मा की दिशा में गति है और चरण है। अधूरा चरण है। पूरा नहीं है। उस पर ही रुक जाएंगे तो भूल हो जाएगी। उसके विरोध में चले जाएंगे तो भी भूल हो जाएगी। वह जो प्रेम हमारे भीतर बह रहा है अभी अंधा है, मोहग्रस्त है, उसे ध्यान के द्वारा अंधेपन से और मोह से मुक्त कर लें, वही प्रेम परिशुद्ध होकर भक्ति हो जाता है।
तो जिनको आप प्रेम करते हैं, उनके प्रति अगर प्रेम परिशुद्ध हो जाए, उन्हीं के भीतर भगवान के दर्शन शुरू हो जाते हैं। भगवान के लिए कोई अलग, कोई मंदिर बनाने की और मूर्ति खड़ी करने की जरूरत नहीं है। यह सब जो विभक्तिवादी लोगों की करतूत है कि उन्होंने मंदिर अलग कर दिया है मकान से और भगवान अलग कर दिया है मनुष्य से।
यह बड़ी अजीब बात है। भगवान अगर है, तो सबमें समाहित है। तो मैं जिसको
भी प्रेम करूं, उसके भीतर भी भगवान है। अगर भगवान कहीं भी है, तो उसके भीतर भी है। लेकिन मेरा प्रेम अंधा है, इसलिए शरीर से लौट आता है। अगर प्रेम जाग्रत हो जाए, तो उस व्यक्ति के शरीर को पार कर जाएगा और जहां उसकी आत्मा है, जहां परमात्मा है, वहां तक उसके संपर्क शुरू हो जाएंगे।
प्रेम में केवल देह दिखाई पड़ती है--तथाकथित प्रेम में, मोहग्रस्त प्रेम में। और उसी के भीतर भक्ति उत्पन्न हो जाए, तो देह तो विलीन हो जाती है और भीतर आत्मा के दर्शन शुरू हो जाते हैं।
प्रेम को गहरा कर लेना भक्ति है। और प्रेम को होशपूर्वक जगा लेना भक्ति है।...
होश से पूर्ण मनुष्य का जन्म होता है। बाकी सब अधूरे मनुष्य होते हैं। उन सबके भीतर अपंग स्थितियां होती हैं। मनुष्य पूरा होना चाहिए। धर्म मनुष्य के भीतर परिपूर्णता के विकास का विज्ञान है। कोई अधूरे, अपंग विकास का नहीं। परिपूर्ण विकास का। उसका पूरा व्यक्तित्व अपनी परिपूर्ण गरिमा में प्रकट होना चाहिए। एक फूल की तरह उसका व्यक्तित्व खिल जाए। उसमें जितनी सुगंध है, सब फैले। उसमें जितना ज्ञान है, वह सब प्रकाश बने। उसमें जितनी शक्ति है, वह सब कर्म बन जाए। उसके भीतर कोई शक्ति न रह जाए जो कि सेवा में परिणत न हो। और उसके भीतर कोई ज्ञान की क्षमता न रह जाए, जो कि ज्योति न बन जाए। उसके भीतर कोई भावना न रह जाए, जो कि प्रेम बन कर भक्ति में परिणत न हो। पूरा मनुष्य विकसित हो तो वही मोक्ष है।
मोक्ष मेरे लिए कोई भौगोलिक जगह नहीं है कि आप कहीं मरेंगे और चले जाएंगे। कोई ज्योग्राफी में खोजने से मोक्ष नहीं मिलेगा। और मिल गया, तो वे जो भौतिकवादी हैं, वे अपने यान लेकर आपसे पहले वहां पहुंच जाएंगे। और आप जो अध्यात्मवादी हैं, अपने मंदिर में घंटियां बजाते रहेंगे। कोई भौगोलिक जगत में कोई मोक्ष नहीं है। एक आंतरिक विकास की चरम अवस्था है। एक मानसिक, आध्यात्मिक, शारीरिक, जो हम जीवन जानते हैं, उसकी परिपूर्ण विकास का एक बिंदु है, जहां जाकर आपके भीतर सब पूरा हो जाता है। पूर्णता मुक्ति है। अपूर्णता बंधन है। जितने आप अपूर्ण हैं, उतने आप बंधे हुए होंगे, उतनी आपकी सीमा होगी। जितने आप पूर्ण होंगे, उतने बंधन के बाहर होंगे। जिस दिन आप परिपूर्ण होंगे कि आपके भीतर अब विकास के लिए कोई कोना नहीं रह जाए, अंधकार के लिए कोई स्थान न रह जाए, अज्ञान के लिए कोई हिस्सा न रह जाए, कोई सीमा न रह जाए आपके भीतर, आपकी संपूर्ण शक्तियां अपनी समग्रता में विकसित हो जाएं, उसी क्षण आप मुक्त हो जाएंगे।
पूर्णता मुक्ति है। और पूर्णता के लिए बड़ा इंटिग्रेटेड, बड़ा संयुक्त मार्ग है। कोई ज्ञान, भक्ति और ये कर्म के अलग-अलग मार्ग नहीं हैं। मार्ग तो एक है। और वह है ध्यान का। वह है होश का। वह है जागृति का। वह है आत्म-स्मरण का। वह है अवेयरनेस का। वह है अमूर्च्छा का। अप्रमत्त जितने आप होते जाएंगे, जितना होश जगता जाएगा, उतना ही आपके जीवन में पूर्णता निकट आती जाती है।

मेरी दृष्टि में जो है वह मैंने आपसे कहा। कोई मेरा किसी भी मामले में
यह आग्रह नहीं है कि मेरी बात को मान लें। आग्रह कुल इतना हैः उसे विचार करें, सोचें, उसे समझें।

अंतिम एक प्रश्न पर और चर्चा कर लेता हूं, फिर हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।

ग्रंथगुरु, शरीर, धन, स्त्री, पुत्र, परिवार, भोजन, मकान और सारी सृष्टि में हम संतुष्टि या लड़ने की, त्यागने की, घृणा या उपलब्धि की वस्तु न मानें, तो उनके प्रति हमारा दर्शन किस तरह का होना चाहिए जिससे दोनों दोषों से बच जाएं?

मैंने कल कहाः संतुष्टि के लिए, भोग के लिए, सुख के लिए जो आदमी खोज कर रहा है, वह भ्रांति में है। और मैंने साथ में यह भी कहा कि उन्हें छोड़ने के लिए लड़ने में जो लगा है, संघर्ष कर रहा है, संन्यासी बन रहा है, विरागी बन रहा है, वह मनुष्य भी भ्रांति में है। मार्ग इन दोनों के बीच में और मध्य में है। मार्ग न तो भोग है और न त्याग है। मार्ग बोध है। न भोग, न त्याग, वरन बोध की अवस्था है।
यह पूछा है कि उसके लिए इन सबके प्रति क्या दृष्टि रखनी चाहिए?
इन सबके प्रति तो दो ही दृष्टि हो सकती हैंः या तो भोग की या त्याग की। अगर आप फिर मुझसे पूछते हैं कि धन के प्रति, मकान के प्रति, स्त्री के प्रति क्या दृष्टि रखनी चाहिए? तो आप फिर दो ही दृष्टियों में से एक किसी विकल्प को चुनने की कोशिश में लगे हैं। सवाल इनके प्रति कोई दृष्टि रखने का नहीं, सवाल तो अपने प्रति दृष्टि रखने का है। अगर स्वयं के प्रति दृष्टि का जागरण होगा, तो इनके प्रति जो सम्यक दृष्टि है वह उपलब्ध हो जाएगी। और अगर स्वयं का जागरण नहीं हुआ, तो इनके प्रति कोई भी दृष्टि रखी जाएगी, वह या तो भोग की होगी या त्याग की होगी, दो ही दृष्टियां हो सकती हैं। या तो राग की होगी या विराग की होगी; या तो पकड़ने की होगी या छोड़ने की होगी; ये दो ही विकल्प हैं। अज्ञान में दो ही विकल्प हैं, तीसरा कोई विकल्प अज्ञान में नहीं है। अज्ञान में दो ही विकल्प हैं, या तो पकड़ो या छोड़ो।
एक तीसरा विकल्प ज्ञान का है, लेकिन वह अज्ञान में विकल्प नहीं है। अज्ञान न हो, ज्ञान भीतर हो, तो तीसरा विकल्प है। फिर उस स्थिति में इन चीजों के प्रति विचार का भी, क्या दृष्टि रखना इसका भी कोई सवाल नहीं उठता।
एक छोटी सी कहानी कहूं, फिर उसे समझाऊं, तो शायद समझ में आ जाए।
एक बहुत अदभुत व्यक्ति हुआ। बहुत त्यागी था। जीवन भर त्याग किया। जीवन भर दृष्टि को शुद्ध करने की कोशिश की। समस्त परिग्रह छोड़ दिया। घर-द्वार में कुछ भी न रखा। सारी संपत्ति थी, बांट दी। फिर लकड़ियां काटने लगा, उन्हीं को बेच कर जीने लगा। उसकी पत्नी भी थी। वे दोनों लकड़ियां काटते, लाते, बाजार में बेच देते। जो मिलता, उससे भोजन कर लेते। जो बच जाता, सांझ को उसे बांट देते। रात खाली होकर, उनके पास कोई संपत्ति न होती, वे सो जाते।
एक बार ऐसा हुआ कि अनायास वर्षा आ गई। पांच-सात दिन तक पानी पड़ता रहा,
वे लकड़ियां नहीं काट सके। पांच-सात दिन उन्हें भूखा मरना पड़ा। कोई संपत्ति उनके पास न थी। किसी से मांगने का उनका नियम न था। जब पांच-सात दिन के बाद धूप खुली, वे फिर लकड़ियां काटने जंगल में गए। जब वे लकड़ियां काट कर भूखे और थके और सिर पर गठरियां बांधे हुए लौटते थे, तो रास्ते में एक घटना घटी, वह मैं आपसे कहना चाहता हूं। उसे थोड़ा देखने की जरूरत है। क्या उस घटना में घटा, उसके प्रति थोड़ा बोध जगाने की जरूरत है।
जब वे लौटने लगे, पति आगे है, पत्नी थोड़ी दूर पर पीछे है। पति ने राह के किनारे देखा कि किसी राहगीर की स्वर्ण की थैली गिर गई है, उसकी मोहरें छितरी हुई हैं, कुछ उसके भीतर हैं। उसके मन में तत्क्षण ख्याल हुआः मैंने तो स्वर्ण पर विजय पा ली है, मैंने तो स्वर्ण का त्याग कर दिया है, लेकिन

मेरी पत्नी है, अज्ञानी है, ज्यादा उसे ज्ञान नहीं, ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं, सात दिन की भूखी है, थकी-मांदी है, लकड़ियां ढोकर आ रही है, कहीं मन में उसके मोह आ जाए कि उठा लें, तो जीवन भर का कष्ट दूर हो जाएगा। कहीं विचार ही आ जाए तो व्यर्थ पाप हो जाएगा। उसने देखा, पत्नी अभी दूर है, जल्दी से उन मोहरों को उठाया, गड्ढे में डाल कर मिट्टी से ढंक दिया।
वह ढंक भी नहीं पाया और पत्नी आ गई। और उसने पूछाः कैसे रुके हो? क्या
कर रहे हो?
सत्य बोलने का नियम था, सत्य बोलने का व्रत था, इसलिए अब असत्य भी नहीं बोल सकता था, उसे बताना पड़ा, उसे कहना पड़ा कि यहां ऐसा हुआ। स्वर्ण की मोहरें पड़ी थीं, मेरे मन को हुआ कि मैंने तो स्वर्ण पर विजय पा ली, मैं तो त्यागी हूं, लेकिन तू है अज्ञानी, और तुझे पता नहीं, तुझे यह पता नहीं है कि स्वर्ण का मोह अगर मन में पैदा हो जाए तो पाप हो जाएगा। तू न भी उठाए, लेकिन अगर विचार भी उठाने का आ गया तो पाप हो गया। भूखी-प्यासी है, दुखी-परेशान है। इसलिए मैंने सोचा, इन्हें ढंक दूं मिट्टी से ताकि तुझे दिखाई न पड़े। पत्नी ने यह सुना, वह अपनी गठरी लेकर आगे बढ़ गई।
उसके पति ने पूछाः तूने कुछ कहा नहीं?
देखा तो उसकी आंख में आंसू हैं। वह बहुत हैरान हुआ! उसने कहाः रोने की क्या बात है? क्या तेरे मन में मोह आ रहा है कि वे रुपये मैंने क्यों गड़ा दिए? मिल क्यों न गए? क्या उसकी पीड़ा तुझे हो रही है?
उस स्त्री ने कहा कि नहीं, पीड़ा मुझे यह हो रही है, तुम्हें अभी भी स्वर्ण दिखाई पड़ता है? और तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म नहीं आती? मैं तो हैरान हो गई! तुम मिट्टी पर मिट्टी डाल रहे हो और कह रहे हो कि मैं सोने पर मिट्टी डाल रहा हूं! वह स्वर्ण तुम्हें दिखाई पड़ता है, जीत अभी पूरी हुई नहीं।
यह त्यागी की दृष्टि है कि सोने पर मिट्टी डाल दो कि दिखाई न पड़े। वह भोगी की दृष्टि है कि मिट्टी पर सोना ढांक लो कि मिट्टी दिखाई न पड़े। त्यागी की दृष्टि है कि सोने पर मिट्टी डाल दो कि सोना दिखाई न पड़े। भोगी की दृष्टि है कि जहां मिट्टी है वहां भी सोने से मढ़ दो कि मिट्टी दिखाई न पड़े। सोना ही सोना दिखाई पड़े; मिट्टी ही मिट्टी दिखाई पड़े; ऐसी उनकी दृष्टियां हैं।
अब यह तीसरी दृष्टि है। यह तीसरी दृष्टि बड़ी दूसरी बात है। सोने को छोड़ना नहीं, सोना अर्थहीन हो जाना चाहिए।
एक और छोटी घटना कहूं। एक बहुत बड़े फकीर का लड़का था। बड़ी ख्याति है उनकी, उनका लड़का था। उस लड़के को हमेशा कहते थेः गांव में कोई तुम्हें कुछ भेंट करे, कुछ करे, तो लाना मत, मुझे सोने-पैसे से बड़ा विराग है। लेकिन वह लड़का जाता और कोई उसे भेंट कर देता तो वह ले आता। तो उसके पिता ने उसे अलग कर दिया और कहा कि तुम अलग हो जाओ, तुम मोही हो, परिग्रही हो, तुम चीजें घर ले आते हो। पिता ने अलग कर दिया, तो वह पास में एक झोपड़ा बना कर रहने लगा। एक नरेश आता था उस फकीर के पास, उसने पूछा कि तुम्हारा लड़का दिखाई नहीं पड़ता?
उसने कहा कि मैंने उसे अलग किया। उसके मन में बड़ा परिग्रह भाव है। कोई कुछ दे देता है, तो ले आता है।
उस राजा ने कहाः मैं भी देखूं।
वह एक बड़ा बहुमूल्य हीरा लेकर गया। वह युवा फकीर, उसी फकीर का लड़का था,
वह भी फकीर ही था, वह उस झोपड़े में बैठा हुआ था, उसके एक-दो भक्त बैठे हुए थे। इस राजा ने जाकर वह हीरा उसके चरणों में रखा।
उस युवा फकीर ने कहा कि लाए भी तो एक पत्थर लाए, कुछ और लाते तो काम का
भी होता।
तो राजा ने सोचा, यह तो कह रहा है पत्थर और इसका पिता कहता है परिग्रही, कुछ बात समझ में आती नहीं। तो उसने जब लड़के ने इनकार कर दिया, युवा फकीर ने मना कर दिया, तो हीरे को उठा कर रखने लगा, तो उस फकीर ने कहाः लेकिन अब पत्थर का बोझ यहां तक ढोया, तो लौट कर भी क्यों ढोओगे, छोड़ ही जाओ।

जब पत्थर ही है, तो यहां तक एक तो भूल की कि बोझ लेकर आए और अब फिर बोझ लेकर जाओगे। छोड़ दो।
उसने सोचा कि बड़ा होशियार, बड़ा चालाक मालूम होता है। बातें फकीरी की हैं, मन तो भोग वाले का है। फिर भी उसने सोचा, ठीक है। तो उसने कहाः कहां रख दूं?
तो वह युवा हंसने लगा, उसने कहाः जब तुम पूछते हो, कहां रख दूं, तो ले
ही जाओ, फिर वह पत्थर नहीं है। तुम पूछते हो, कहां रख दूं, तो फिर ले ही जाओ, फिर वह पत्थर नहीं है। वह मेरी तरफ से पत्थर है, तुम्हारी तरफ से कुछ और है।
लेकिन राजा नहीं माना, सोचा कि देखें तो। उसकी झोपड़ी में उसके सामने
ही खोंस गया। सनोली की झोपड़ी थी, उसमें रख गया। और कहाः यह मैं रखे जाता हूं।
वह युवा फकीर हंसता बैठा रहा। राजा ने सोचा कि मैं गया कि थोड़ी देर में वह निकाल लेगा। लेकिन छह महीने बाद वह आया और उसने आकर पूछा कि मैं एक भेंट कर गया था हीरा, वह कहां है?
उस युवा ने कहा कि मैं कभी किसी की जीवन में भेंट लिया ही नहीं। लोग डाल जाते हैं, वे जानें।
राजा ने सोचा कि मैं समझ गया, यह है तो चालाक पूरा ही। ये सारी बातें लफ्फाजी हैं। हीरा निकाल लिया गया। वह गया, उसने सनोलियां हटाईं, हीरा वहीं था।
यह ज्ञानी की दृष्टि है। एक दृष्टि भोगी की है, एक त्यागी की है, एक ज्ञानी की है। ज्ञानी की दृष्टि बड़ी अलग बात है। ज्ञानी की दृष्टि को ही वीतरागता कहा है। न वह राग है, न विराग है। वह वीतरागता है। वह दोनों के बाहर हो जाना है। लेकिन उसमें कोई दृष्टि नहीं रखनी होती, उसमें तो स्वयं के बोध को जगाना होता है।
संसार के प्रति कोई दृष्टि नहीं बनानी है। संसार के प्रति कोई भाव नहीं बनाना है। कोई भी भाव अज्ञान में आप बनाएंगे, वह गलत होगा। अपने भीतर स्वयं के बोध को जगाना है। बोध के जगने पर जो भी होगा, वही ठीक होगा। यानी ठीक नहीं किया जा सकता अज्ञान में। अज्ञान में कोई भी संबंध ठीक नहीं हो सकता है। असम्यक दृष्टि होगी तो सब संबंध असम्यक होंगे, गलत होंगे, मिथ्या होंगे। दृष्टि भीतर शुद्ध होगी, ठीक होगी, सम्यक होगी, तो जो भी संबंध होंगे, जो भी भाव होंगे, जो भी विचार होंगे जगत के संबंध में, वे ठीक होंगे। सब ठीक होना दृष्टि के ठीक होने पर निर्भर है।
इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि पत्नी के प्रति आप क्या भाव रखें। क्योंकि अगर आप यह भाव रखते हैं कि पत्नी मेरी पत्नी है, तो भूल है; अगर आप यह भाव रखते हैं कि पत्नी तो मेरी मां जैसी है, तो भी भूल है। क्योंकि जब आप यह सोचते हैं कि पत्नी को तो मैं मां जैसा मानूं, तब आप उसे पत्नी जैसा ही मान रहे हैं।
अभी मैं एक कालेज में था। एक प्रिंसिपल एक लड़के को समझा रहे थे कि हर लड़की को अपनी बहन जैसा समझो।
तो मैंने उनसे कहा कि अगर यह कोशिश करके समझे भी कि हर लड़की मेरी बहन है, तो इस समझने में ही वह गड़बड़ छिपी हुई है। क्योंकि जब हम यह कहते हैं कि हर लड़की मेरी बहन है, तो कहते क्यों हैं अगर वह है? अगर हम यह कहते हैं कि हर स्त्री मेरी बहन है, तो इसे कहने की जरूरत क्या है? इसके कहने की जरूरत में यह छिपा हुआ है कि हर स्त्री आपकी बहन नहीं है, वह आपको पता है। उसे झुठलाने को, उसे छिपाने को आप यह दूसरा रूप ओढ़ रहे हैं।
जब कोई आदमी कहता है कि यह सब संसार असार है, तो समझना कि अभी उसके मन में सार छिपा हुआ है। इसे बार-बार दोहराने की कोई जरूरत नहीं है कि संसार असार है। यह अपने को समझाना है। एक आदमी रोज सुबह-सुबह बैठ कर तय करता है कि मैं तो शरीर नहीं हूं, मैं तो आत्मा हूं। ऐसे समझाने वाले लोग हैं मुल्क में, जो लोगों को समझाते हैं कि यह विचार करो कि मैं तो आत्मा हूं, शरीर नहीं हूं।
एक साधु मेरे पास आए। मैंने उनसे पूछाः आप क्या साधना करते हैं?

उन्होंने कहाः मैं तो यही साधना करता हूं कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं आत्मा हूं।
मैंने कहाः अगर यह पता चल गया, तो इसे दोहराते क्यों हैं? और अगर यह पता नहीं चला, तो दोहराने से क्या होगा? और जब आप दोहराते हैं बार-बार कि नहीं, मैं शरीर नहीं, मैं तो आत्मा हूं, तब मैं समझता हूं कि आप जानते हैं कि आप शरीर हैं, वह आपके भीतर छिपी हुई है बात। आप जानते हैं कि मैं शरीर हूं, इसको झुठलाने के लिए आप बार-बार दोहरा कर एक रूप खड़ा कर रहे हैं कि नहीं, मैं तो आत्मा हूं। अगर आपको पता हो, तो मैं तो नहीं कहता कि मैं दरख्त नहीं हूं, मैं यह माइक नहीं हूं, यह तो मैं नहीं दोहराता। क्योंकि मैं जानता हूं कि मैं नहीं हूं।
जिस बात को आप जानते हैं कि आप नहीं हैं, आप कभी कहते नहीं सुने जाते
कि यह मैं नहीं हूं। आप यहां आकर यह नहीं कहेंगे कि यह जो पहाड़ है, यह मैं नहीं हूं। कोई कहेगा, आप पागल हो गए हैं! इसे कहने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन आप बार-बार अगर कहते हैं कि मैं शरीर नहीं हूं, तो शक है, आपको शरीर होने का शक है।
जो आदमी कहता है, सब व्यर्थ है, जो आदमी कहता है, यह पैसा-लत्ता सब जंजाल है, अभी इसे अर्थ है। यह दोहराना, यह कहना ही, इस कहने में ही सारी भूल और भ्रांति छिपी हुई है। यह विराग तो है, वीतरागता नहीं है। वीतरागता अंतर्दृष्टि के जागने से शुरू होती है।
संसार के प्रति कोई दृष्टि रखने को नहीं कहता हूं, अपनी अंतर्दृष्टि जगाने को कहता हूं। उस जाग जाने पर जो दृष्टि होगी, वह सम्यक होगी। उस दृष्टि में न तो भोग होगा, न राग होगा, न द्वेष होगा, न विराग होगा। न तो पकड़ होगी, न छोड़ने का आग्रह होगा। जीना होगा, सरल जीवन होगा। स्त्री स्त्री है, पत्थर पत्थर है, मकान मकान है, सब अपने अपने में हैं। आपको कोई दृष्टि रखने की बड़ी जरूरत नहीं कि वे सार्थक हैं कि निरर्थक हैं। तब एक सहज जीवन, स्पांटेनियस लाइफ शुरू होती है। चीजें जहां हैं वे वहां हैं, हम जहां हैं हम जहां हैं, और जीवन में तब हम उनके प्रति कोई दृष्टि बांध कर नहीं चलते, बल्कि सहज जीते हैं, क्योंकि दृष्टि हमारी जागी होती है।
एक अंधे आदमी की अगर आंखें ठीक होने लगें, तो वह पूछेगा कि जब मेरी आंखें ठीक हो जाएंगी, तो मैं इस लकड़ी, जिससे मैं अब तक टटोलता था, इसका कैसे उपयोग करूंगा? तो हम उससे कहेंगेः तुम बिल्कुल पागल हो! जब आंखें ठीक हो जाएंगी, तो लकड़ी के उपयोग की जरूरत ही नहीं रह जाएगी, तुम चलोगे, तुम सीधे चले जाओगे। वह पूछेगा कि जब मेरी आंखें ठीक हो जाएंगी, तो मैं किससे पूछूंगा कि दरवाजा कहां है? हम उससे कहेंगेः तुम किसी से नहीं पूछोगे, सवाल ही नहीं उठेगा कि दरवाजा कहां है। तुम्हें जाना होगा, तुम्हें दिखेगा, तुम निकल जाओगे।
अभी हम पूछते हैं कि संसार के प्रति क्या दृष्टि रखें?
अगर ज्ञान जग जाएगा, तो सवाल ही नहीं है कि कौन सी दृष्टि रखें। आपको दिखाई पड़ेगा, आप वैसा व्यवहार करोगे। दृष्टि रखने की कोई बात नहीं है, दृष्टि होनी चाहिए। किसी चीज के प्रति कोई भाव बनाने की बात नहीं है, भीतर अंतर्दृष्टि जागनी चाहिए। वह जागी हो, फिर कोई सवाल नहीं है, कोई पूछना नहीं है। दरवाजा दिखाई पड़ेगा, आप निकल जाएंगे। हाथ में लकड़ी लेने की कोई जरूरत नहीं है।
ये सब दृष्टियां वगैरह लकड़ियां लेने जैसा है। इनसे टटोल-टटोल कर चलते हैं। अंधे आदमी हैं, क्या करें, तो इनसे टटोल कर किसी तरह रास्ता बना लेते हैं। किसी तरह रास्ता बना लेते हैं, अपनी पत्नी को अपनी पत्नी समझते हैं, दूसरों की पत्नियों को अपनी बहन समझ कर रास्ता बना लेते हैं। किसी तरह लकड़ी से टटोल लेते हैं, किसी तरह निकल जाते हैं। थोड़ी-बहुत भूल-चूक हुई, फिर ठीक रास्ते पर आ जाते हैं। लेकिन आंखें अंधी हैं, टटोल कर निकलना पड़ता है।
अगर आंखें ठीक हों, तो कोई दृष्टि बनाने की जरूरत नहीं। किसी की स्त्री को बहन समझने की जरूरत नहीं। कोई सोने को मिट्टी समझने की जरूरत नहीं। सोने को असार समझने की जरूरत नहीं। संसार को माया और मिथ्या समझने

की जरूरत नहीं। दिखाई पड़ेगा और जीवन होगा। दृष्टि होनी चाहिए, तो जीवन सहज हो जाता है। उस पर फिर कोई व्रत और नियम नहीं बांधने होते। फिर तो जीवन सहज होता है। ठीक-ठीक दिखता है, ठीक-ठीक होता है। ठीक-ठीक नहीं दिखता है इसलिए अड़चन है।
मेरा जोर किसी भांति के भाव लेने का नहीं है, अंतर्भाव को जगाने का है।
मैं समझता हूं मेरी बात आपको ख्याल में आई होगी। अब हम रात्रि के ध्यान को बैठेंगे।
थोड़ी सी बातें रात्रि के ध्यान के संबंध में दो बातें समझ लें। सुबह
का ध्यान जो हमने किया, वह बैठ कर करने के लिए था। सुबह उठ कर जब आप घर पर उस प्रयोग को करेंगे, तो वह बैठ कर करने का है। रात्रि का ध्यान सोने के पहले करने का है जब आप नींद को जाने को हों, अपने बिस्तर पर ही करने का है। तो सामान्यतया रात्रि का ध्यान लेट कर करना उचित है। चूंकि यहां लेटने लायक जगह नहीं होगी, इसलिए हम बैठ कर करेंगे। लेकिन घर पर आप जो प्रयोग करेंगे वह लेट कर ही करना है। यहां जगह होती ज्यादा तो हम सारे लोग लेट कर सकते थे। लेकिन जगह कम है, इतने लोगों के लेटने के लिए बहुत जगह चाहिए। और कोई किसी को छूना नहीं चाहिए। तो करेंगे बैठ कर, लेकिन प्रक्रिया आप समझ लेंगे। अभी रात में जब आप जाकर अपने बिस्तर पर सोएं, तो वहां उसे दोहरा लें। उसे लेट कर ही करना है। अभी कैसे हम करेंगे, वह आप समझ लें।
जैसा सुबह मैंने कहाः रीढ़ को सीधा रखना है। अभी बैठेंगे, इसलिए रीढ़ को सीधा रखेंगे, लेटने में कोई सवाल नहीं है। दूसरी बात मैंने कहाः शरीर को ढीला छोड़ देना है। लेकिन सुबह के ध्यान में शरीर को सामान्यतया ढीला छोड़ा था, रात्रि के ध्यान में चूंकि लेट कर करना है, शरीर को पूरी तरह ढीला छोड़ देना है। उसे पूरा कैसे ढीला छोड़ेंगे, वह प्रक्रिया मैं आपको बता देता हूं।
शरीर को सबसे पहले पूरा ढीला छोड़ देना है। और दो मिनट तक सिर्फ यही भाव करना है कि शरीर बिल्कुल शिथिल हो रहा है। भाव की बड़ी क्षमता है। अगर आप दो मिनट तक सिर्फ यही भाव करते रहें कि शरीर बिल्कुल शिथिल हो रहा है; शरीर के सारे तनाव विलीन हो जाएंगे, शरीर मुर्दे की भांति पड़ा हुआ रह जाएगा। दस-पांच दिन के प्रयोग में आप पाएंगे कि वह बहुत सरल बात है, कठिन बात नहीं है। पूरे भाव से करें तो आज ही सरल होगी, इसी वक्त हो जाएगी। दो मिनट तक यह भाव करेंगे कि शरीर बिल्कुल शिथिल हो रहा है। मैं दोहरा दूंगा कि आपका शरीर शिथिल हो रहा है, आप मेरे साथ सहयोग करेंगे और भाव करेंगे कि शरीर शिथिल हो रहा है, तो शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाएगा। अभी तो हम बैठ कर करेंगे। तो अगर शरीर आपका आगे झुक जाए, तो फिकर न करें, कड़ा नहीं रखना है, उसे ढीला जाने देना है। दूसरी बात, दो मिनट के बाद यह भाव करेंगे कि...

साक्षी की साधना
बारहवां प्रवचन

सत्य की खोज

पूछा हैः सत्य के खोजने की आवश्यकता ही क्या है? साधना की जरूरत क्या है? ध्यान को करने से क्या प्रयोजन है? जो-जो हमारी वासनाएं हैं, इच्छाएं हैं, उनको पूरा करें, वही जीवन है। सत्य को खोजने इत्यादि की क्या आवश्यकता है?

बहुत महत्वपूर्ण है। पहले दिन मैंने यह कहाः सामान्यतया हमारा मन सुख चाहता है। लेकिन जो भी हम उपलब्ध करते हैं, उससे सुख मिलता नहीं। सामान्यतया हमारा मन पद चाहता है। लेकिन जिस पद पर भी हम पहुंच जाएं, चाह का अंत नहीं आता, चाह आगे बढ़ जाती है। सामान्यतया हमारा मन जो भी चाहता है वह मिल जाए, तो भी चाह समाप्त नहीं होती, चाह आगे बढ़ जाती है।
सत्य को खोजने की कोई जरूरत नहीं है। यदि चाहें पूरी हो जातीं, तो सत्य को कोई भी नहीं खोजता। अगर संतुष्टि मिल जाती, सुख मिल जाता, सत्य को कोई भी नहीं खोजता। लेकिन जो हमारी सहज चाह है, वह कितनी ही पूरी हो, तो भी जीवन को अर्थ और संतोष नहीं मिलता। इसी पीड़ा, इसी दर्द, इसी परेशानी से ऊब कर मनुष्य संतुष्टि से हटता है और सत्य की खोज में लगता है। किसी के कहने से कोई सत्य की खोज में नहीं लगता, उसके जीवन का अनुभव ही उसे उस तरफ ले जाता है।
और हम विचार करेंगे तो हैरान होंगे, हमारा मन सहज रूप से इसमें सहयोगी है, सत्य की खोज में हमारा मन सहज रूप से सहयोगी है।
सामान्यतया आपने सुना होगा, मन बड़ा चंचल है। और मन की चंचलता को बहुत गालियां भी दी जाती हैं, बहुत बुरा भी कहा जाता है।
मैं नहीं कहता हूं, मैं मन की चंचलता को बहुत बुरा नहीं कहता। क्योंकि
मन अगर चंचल न हो, तो सत्य की खोज संभव ही नहीं होगी। अगर मन चंचल न हो, तो जिस चीज में भी इच्छा लगेगी, मन वहीं अटका रह जाएगा। लेकिन मन कहीं भी नहीं अटकता, सब चीजों को व्यर्थ कर देता है और फिर आगे मांगने लगता है कि और आगे ले चलो। मन कहीं टिकता नहीं; नहीं तो आपने न मालूम किस गंदगी के ढेर पर उसे लगा दिया होता और मन वहीं टिक जाता अगर वह चंचल न होता।
आपने धन में लगाया होता, मन धन में ही टिक जाता। फिर वह धन से कभी हटता
ही नहीं। लेकिन आप कितने ही धन में लगाएं, मन और ज्यादा धन की मांग करने लगता है। उतना धन मिल जाए, तो और ज्यादा की मांग करने लगता है। मन की मांग और ज्यादा के लिए है। और, और ज्यादा का कोई अंत नहीं आता। आप कितने ही पा जाएं, तो और ज्यादा चाहिए। मन कहीं रुकता नहीं, आपको और आगे बढ़ाता है। एक सीमा आती है मन की इस दौड़ की कि आप घबड़ा कर सजग, जाग जाते हैं कि यह क्या है? यह और ज्यादा की दौड़ क्या है? यह कहां अंत होगी?
यह कहीं अंत नहीं हो सकती। और तब आपको लगता है कि यह दौड़ तो कुछ अंधी है, इसका कोई अंत नहीं। जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं, यह कहीं भी नहीं पहुंचेगा।
बच्चों की एक छोटी से किताब हैः अलाइस इन वंडरलैंड। छोटी सी किताब है,
और बच्चों की किताब है। लेकिन बूढ़े भी उसे समझ लें, तो कठिन है। बातें बहुत सरल सी हैं उसमें। कहानियां हैं छोटी-छोटी। उसमें एक छोटी सी कहानी है। अलाइस नाम की लड़की है, वह परियों के मुल्क में चली गई। तो जमीन से परियों के मुल्क तक की यात्रा बड़ी लंबी। बहुत थक गई, बहुत परेशान हो गई, क्लांत हो गई, भूख लग आई। जब वह परियों के देश में पहुंची, तो बड़ा सुंदर देश था, दूर तक हरियाली थी, पहाड़ी झरने थे, सुंदर रास्ते थे। उसने एक झाड़ के नीचे परियों की रानी को खड़े देखा। उसके हाथ में बड़े थाल हैं, उनमें बड़ी मिठाइयां हैं, फल हैं, फूल हैं। उसे भूख लग रही है। थोड़ी ही दूर पर झाड़ के नीचे एक छाया में रानी खड़ी है और वह रानी उसे बुला रही है कि आओ! अलाइस ने दौड़ना शुरू किया। सुबह थी, सूरज ऊग रहा था, अलाइस दौड़ने लगी। पास का ही झाड़ था, काफी दौड़ी, फिर उसने खड़े होकर देखा, झाड़ उतना ही दूर है जितना पहले था!

उसने चिल्ला कर पूछा--ज्यादा दूर नहीं था, चिल्ला कर पूछ सकती थी, इतना ही फासला था--उसने चिल्ला कर पूछाः मामला क्या है?
रानी ने कहाः मामला मत पूछो, दौड़ी आओ।
उसने फिर दौड़ना शुरू कर दिया। दोपहर हो गई, सूरज ऊपर आ गया, पीसना चूने लगा, उसने खड़े होकर देखा, वह झाड़ उतना का ही उतना दूर है। वह रानी वहीं खड़ी है और कहती हैः आ जाओ। उसने फिर पूछाः यह मामला क्या है? मैं दौड़ती हूं, पहुंचती नहीं।
रानी ने कहाः यह मत फिकर करो, तुम तो दौड़ो।
वह दौड़ने लगी, सांझ हो गई, सूरज ढलने लगा, अंधेरा होने लगा। उसने चिल्ला कर पूछाः अब तो यह बिल्कुल पागलपन हो गया। मैं दौड़ी जा रही हूं और सूरज भी डूबने लगा, अंधेरा भी आने लगा, झाड़ उतना ही दूर है! उसने उस रानी से पूछाः क्या तुम्हारे मुल्क में रास्ते कहीं पहुंचाते नहीं?
उस रानी ने कहाः किसी मुल्क में रास्ते कहीं नहीं पहुंचाते। तुम्हारी जमीन पर भी नहीं पहुंचाते।
रास्ते कहीं नहीं पहुंचाते, इससे घबड़ा कर सत्य की खोज शुरू होती है।
यह किसी के सीखने-सिखाने की बात नहीं है। जब आपको यह दिखाई पड़ता है कि कोई रास्ता कहीं नहीं पहुंचाता, जब सब रास्ते व्यर्थ हो जाते हैं, तो फिर एक ही रास्ता और खुला रह जाता है जो भीतर जाता है। सब रास्तों से ऊबा और असंतुष्ट हो गया व्यक्ति एक रास्ते में और खोजता है जो भीतर जाता है, शायद वहां कुछ मिल जाए।
भीतर की खोज सत्य की खोज है, बाहर की खोज संतुष्टि की खोज है। और यह जो चंचल मन है, यह सहयोगी है, यह कहीं रुकने नहीं देता, यह कहीं ठहरने नहीं देता।
मैंने कहना शुरू किया हैः मन की चंचलता तभी समाप्त होती है जब हम वहां पहुंच जाते हैं जहां पहुंचने में जीवन का अर्थ उपलब्ध होता है, उसके पहले मन की चंचलता नष्ट नहीं होती। उसके पहले जिसकी मन की चंचलता नष्ट हो गई, वह जड़ हो जाएगा, उसके जीवन में गति विलीन हो जाएगी।
एक राजा हुआ मिश्र में। एक फकीर था। उसे आदर करता था, तो कभी-कभी फकीर
के पास मिलने जाता था। एक दिन दोपहर में राजा फकीर से मिलने गया। फकीर का छोटा सा खेत था, बगिया थी, वहीं फकीर काम करता था, उपजाता था मेहनत से। जब राजा पहुंचा, तो फकीर तो नहीं था, एक और छोटा युवा शिष्य बैठा हुआ था। राजा ने कहा कि जाओ अपने गुरु को ढूंढ़ लाओ, बुला लाओ।
तो उस शिष्य ने कहा कि आप बैठ जाएं, मैं बुला लाता हूं। खेत की मेंड़ थी, मिट्टी थी, कहाः इस पर बैठ जाएं झाड़ के नीचे, मैं बुला लाता हूं।
राजा ने कहाः तुम बुला लाओ, मैं यहीं टहलूंगा। वह उस मिट्टी पर टहलने लगा।
युवा ने सोचा, शायद मिट्टी पर बैठना उसे पसंद नहीं। उसने राजा से कहाः
आप झोपड़े के भीतर आ जाएं। तो झोपड़े के भीतर राजा चला गया। उसने एक चटाई डाल दी और कहा कि बैठ जाएं।
राजा ने कहा कि तुम जाओ, बुला लाओ, मैं टहलूंगा। वह उस झोपड़ी की दहलान में घूमने लगा।
वह युवा बहुत हैरान हुआ। या तो राजा का दिमाग गड़बड़ है। वहां कहा बैठ जाओ, नहीं बैठा; झोपड़े में भीतर लाया, कहा बैठ जाओ। उसने कहा कि तुम जाओ, मैं यहीं टहलता हूं। वह उस छोटी सी दहलान में टहलने लगा।
युवा दौड़ा हुआ गया, पीछे खेत से, बगीचे से फकीर को बुला कर लाया। रास्ते में उसने कहाः यह राजा का दिमाग कुछ ठीक नहीं मालूम होता। मैंने कई दफे कहा, बैठ जाओ, वह कहता है, तुम जाओ, बुला लाओ और टहलने लगता है, बैठता नहीं है।
वह फकीर हंसने लगा और उसने कहाः राजा का दिमाग खराब नहीं, हमारे झोपड़े में उसके बैठने लायक कोई स्थान ही नहीं है। सिंहासन चाहिए उसे। वह होता, तो वह बैठ जाता। मिट्टी पर, मेंड़ पर नहीं बैठता; झोपड़े में गंदी चटाई है, उस पर नहीं बैठता; असल में उसके बैठने लायक कोई जगह नहीं है। और उस फकीर ने कहाः स्मरण रखो, ऐसा ही मन है। मन भी कहीं नहीं बैठता, सिवाय परमात्मा के।

कहीं भी बिठाओ, वह नहीं बैठेगा। सत्य के सिवाय मन और कहीं नहीं बैठेगा। उसके पहले उसका चलना चलता ही रहेगा, वह चंचल बना रहेगा। यहां से वहां डोलेगा, वहां से यहां डोलेगा। मन वहीं बैठता है जहां परम तृप्ति का बिंदु आ जाता है। और उस परम तृप्ति के बिंदु को ही मैं सत्य कह रहा हूं।
हां, मैं कहूं इसलिए कोई सत्य की खोज नहीं करता। न कोई और आपसे कहे तो सत्य की खोज होती है। सत्य की खोज की तरफ आप निरंतर अपनी ही वासनाओं के कारण पहुंचते हैं। आपकी ही इच्छाएं, वासनाएं, आपके ही फ्रस्टेशंस, आपकी ही अतृप्तियां, असंतोष, आपकी ही असफलताएं, वासना के जगत में कोई रास्ता कहीं नहीं पहुंचाता यह अनुभव, आपको निर्वासना के जगत में ले जाना शुरू कर देता है।
बाहर की सारी दौड़ व्यर्थ हो जाती है, तो अंतस में जाने का प्रश्न और विचार और जिज्ञासा खड़ी होती है। कोई दूसरा आपको यह नहीं सिखा सकता। कितना ही कोई शास्त्र पढ़ाए, कितना ही कोई समझाए, कितने ही उपदेश करे, नहीं समझा सकता। जीवन का अनुभव!
इसलिए मैंने कहाः सत्य की खोज के लिए खुली हुई आंखें होनी चाहिए। खुली हुई आंखों से मतलब हैः जीवन के अनुभव को देखने की क्षमता होनी चाहिए। चारों तरफ यदि हम देखेंगे, तो वह अनुभव; अपने जीवन में देखेंगे, तो वह अनुभव; सारे अनुभव इकट्ठे होकर मनुष्य को सत्य की खोज में अग्रसर करते हैं।
फिर आप पूछते हैंः हम सत्य को क्यों खोजें?
मैं नहीं कहता कि आप खोजें। मैं नहीं कहता कि आप खोजें। लेकिन फिर आप क्या खोजेंगे? आप कहते हैंः हम सत्य को क्यों खोजें? मैं नहीं कहता कि आप खोजें। लेकिन फिर आप क्या खोजेंगे? संतुष्टि खोजेंगे; संतुष्टि को खोज-खोज कर पाएंगे कि नहीं मिलती, फिर क्या करेंगे? फिर सत्य को खोजेंगे। संतुष्टि जहां असफल हो जाती है, वहीं सत्य की खोज शुरू हो जाती है। सुख की खोज जहां असफल हो जाती है, पूर्णतया असफल हो जाती है, वहीं सत्य की खोज शुरू हो जाती है। इसमें कोई किसी के सिखाने की बात नहीं। मैं किसी से नहीं कहता कि सत्य खोजें। मैं तो यही कहता हूं कि जो आपको ठीक लगे, उसी को खोजें। लेकिन आंखें खुली रखें, अंधे होकर न खोजें। जो आपको ठीक लगे--वासना ठीक लगे, वासना खोजें; सुख ठीक लगे, सुख खोजें; लेकिन आंख खुली रखें। अगर आंख खुली रही, तो बहुत दिन तक सुख नहीं खोज सकते हैं।
रामकृष्ण परमहंस के जीवन में एक अदभुत घटना है। केशवचंद्र, बंगाल के
एक बड़े विचारक थे, तार्किक थे, बड़े बुद्धिमान आदमी थे। बंगाल ने या इस भारत ने कम ही ऐसे लोग पैदा किए जिनकी ऐसी प्रतिभा और विचार हो। बड़े तर्ककुशल थे। जिस बात में लग जाएं, जिस बात का समर्थन करें, उसका विरोध करने की सामर्थ्य किसी में बंगाल में नहीं थी। बड़ा अदभुत पैना तर्क था। लोगों ने केशवचंद्र को कहा कि कभी रामकृष्ण के पास चलें, वे बड़ी ईश्वर की, बड़ी आत्मा की बातें करते हैं, जरा उनका खंडन करें तो मजा आ जाए। केशव ने कहाः चलो! सारे कलकत्ते में खबर फैल गई। जो भी विचारशील उत्सुक लोग थे, वे दक्षिणेश्वर में जाकर इकट्ठे हो गए, फजीहत देखने को। और रामकृष्ण बेपढ़े- लिखे थे, रामकृष्ण गांव के गंवार थे। केशव प्रतिभा का धनी था, तर्ककुशल था। लोगों ने कहाः बहुत आनंद आएगा; रामकृष्ण की क्या-क्या फजीहत होगी, देखेंगे। बहुत लोग इकट्ठे हो गए। रामकृष्ण को लोगों ने कहा कि बड़ी मुश्किल होने वाली है, केशव आते हैं विवाद करने को। और बहुत लोग देखने को आते हैं।
रामकृष्ण खूब हंसने लगे, उन्होंने कहाः हम भी देखेंगे। फजीहत होगी तो मजा हमको भी आएगा। जब इतने लोगों को फजीहत में मजा आएगा, तो हमको क्यों नहीं आएगा! हमको भी बहुत मजा आएगा।
उन लोगों ने कहाः ये तो हैं पागल, ये समझते नहीं कि मतलब क्या है।
केशव आए, बड़ी भीड़ साथ आई। कलकत्ते के बड़े विचारशील, तार्किक, सारे लोग इकट्ठे थे। रामकृष्ण के भक्त बड़े घबड़ाए हुए थे। रामकृष्ण बड़े प्रसन्न थे कि जब इतने लोग आ रहे हैं, तो जरूर कोई मजे की बात होगी ही। फिर केशव ने विवाद शुरू किया। केशव ने कहाः ईश्वर वगैरह कुछ भी नहीं है। और बड़े तर्क

दिए। जब केशव तर्क देते थे, तर्क पूरा होता था, रामकृष्ण खड़े होकर केशव को गले लगा लेते थे कि कितना अदभुत! कितनी अदभुत बात कही! एक-दो दफे हुआ, केशव हतप्रभ हो गए कि यह तो बड़ा मुश्किल मामला है। यह आदमी विरोध करता नहीं, उलटा हमको गले लगाता है। और लोग जो देखने आए थे मजा, वे भी निराश हो गए कि इसमें तो कोई मतलब ही नहीं है, यहां एक ही पार्टी है, दूसरी पार्टी तो मौजूद नहीं है। बड़ी उदासी फैल गई। प्रसन्न अकेले रामकृष्ण थे। जो सब प्रसन्न होने आए थे, सब दुखी हो गए। वे जो सब प्रसन्न होने आए थे, वे सब दुखी हो गए। प्रसन्न अकेला एक ही आदमी था, वह रामकृष्ण था। केशवचंद्र विरोध का तर्क देते, वे खड़े होकर गले लगाते और कहतेः कैसा, कैसा अदभुत!
जब सारी बातें पूरी हो गईं, केशव को कुछ कहने को भी न सूझा कि अब क्या करें, क्या न करें? दूसरा आदमी विरोध करे, तो बात आगे बढ़े। बात आगे बढ़े कैसे? तो रामकृष्ण ने कहाः क्यों, क्या बात पूरी हो गई?
केशव ने कहाः हां, जो मुझे कहना था, मैंने कह दिया।
रामकृष्ण खड़े हुए, बोलेः अब मैं कुछ कहूं? हाथ जोड़े भगवान के और कहाः कैसा अदभुत है परमात्मा! ऐसी बुद्धि भी तू पैदा करता है! और केशव को कहाः विश्वास मान केशव, तू ज्यादा दिन नास्तिक नहीं रह सकेगा। ऐसी बुद्धि जहां है, वहां नास्तिकता कितनी देर टिकेगी? तू ज्यादा दिन नास्तिक नहीं रह सकेगा। ऐसी बुद्धि जहां है, ऐसा विवेक जहां है, वहां तू ज्यादा देर तक नास्तिक नहीं रह सकेगा। अदभुत है! मैं तो खूब प्रसन्न हो गया। परमात्मा के गुण मैंने बहुत देखे--फूलों में देखे, वृक्षों में देखे, पहाड़ों में देखे, नदियों में देखे--आज मनुष्य में देखा है। ऐसी प्रतिभा! बिना परमात्मा के ऐसी प्रतिभा हो ही कैसे सकती है?
रामकृष्ण ने कहाः ऐसी प्रतिभा हो तो बहुत दिन नास्तिक नहीं रह सकते।
मैं भी आपसे कहता हूंः विवेक हो, तो बहुत दिन संतुष्टि की खोज नहीं कर सकते। सत्य की खोज अनिवार्य है। तो मैं नहीं कहता कि सत्य की खोज करें। मैं तो इतना ही कहता हूंः विवेक जाग्रत हो, होश जाग्रत हो। फिर जो आपको करना है करें। जहां जाना है जाएं। जो आपका मन हो करें। कोई अंतर नहीं पड़ता कि आप कहां जाते हैं। मैं आपसे नहीं कहता कि मंदिर जाएं। मैं नहीं कहता कि कोई सत्य की खोज में कोई विशेष काम करें। मैं इतना ही कहता हूंः होश जाग्रत रखें।
होश जाग्रत होगा, तो आज नहीं कल, आपकी जो संतोष की, सुख की, वासना की खोज है वह व्यर्थ हो जाएगी और उसकी जगह स्थापित हो जाएगी सत्य की खोज। वह आपके अनुभव से स्थापित होती है, किसी की शिक्षा और उपदेश से नहीं।

बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। पूछा है कि मनुष्य का मन तो विचारों का प्रवाह है। विचारों के इस प्रवाह को क्या जप के द्वारा रोका जा सकता है? बहुत लोगों का अनुभव है कि जप के द्वारा विचार का प्रवाह रुकता है और प्रबुद्ध चेतना की स्थिति उपलब्ध हो जाती है।

यह पूछा है, महत्वपूर्ण है, समझना चाहिए।
मैंने कल कहाः मनुष्य के मन में सिवाय साक्षीभाव के और सारी क्रियाएं मानसिक हैं। सिवाय साक्षीभाव को छोड़ कर बाकी मन की सारी क्रियाएं मानसिक हैं, मेंटल हैं। यदि उनमें से कोई भी क्रिया की गई, तो मन के बाहर नहीं जाया जा सकता है। वह मैंने कल विस्तार में आपको समझाया। मन के बाहर जाना हो, तो मन की किसी क्रिया का सहारा नहीं लिया जा सकता।
जप मन की क्रिया है। एक आदमी राम-राम या ओम या नमोकार या कोई और का जप करे, निरंतर एक बात को दोहराए, जरूर परिणाम होंगे। लेकिन परिणाम में ध्यान नहीं आएगा, परिणाम में आएगी मूर्च्छा; परिणाम में आएगा आत्म-सम्मोहन, ऑटो- हिप्नोसिस, आप मूर्च्छित हो जाएंगे। तो मूर्च्छित होने का नियम समझ लें, तो जप को भी आप समझ लेंगे। और जितने लोगों को यह ख्याल है कि जप से कोई सत्य के दर्शन होते हैं, गलती में हैं। जप से दर्शन सत्य के नहीं होते, केवल गहरी प्रसुप्ति के दर्शन होते हैं, गहरी नींद के दर्शन होते हैं। उस गहरी

मूर्च्छा के बाद आपको लगता है कि बड़ा सुख मिला। सुख मिलता नहीं, मात्र चिंता, दुख का बोध विलीन हो जाता है।
एक आदमी के पैर में फोड़ा हो, अगर वह किसी भांति यह भूल जाए कि मेरे पैर में फोड़ा है, तो उसे बड़ा सुख मिलेगा। लेकिन इस सुख में और फोड़े के मिट जाने में बड़ा भेद है। तो ऐसी तरकीबें हैं कि हम जीवन के दुख को भूल जाएं। जीवन के दुख को भूल जाना और जीवन के दुख के मिट जाने में बहुत भेद है। जप उसी तरह की तरकीब है मूर्च्छा की। कैसे जप से मूर्च्छा आती है, वह मैं आपको समझाना चाहूंगा।
एक छोटा सा बच्चा रात में न सोता हो, तो उसकी मां लोरी गाकर उसे सुला देती है। एक गीत गाकर सुला देती है। गीत में एक कड़ी होती है या दो कड़ी होती हैं। एक ही कड़ी को बार-बार दोहराने से शायद मां यह सोचती हो कि संगीत के प्रभाव में बच्चा सो रहा है, तो गलती में है। एक ही कड़ी को बार-बार दोहराने से बोर्डम पैदा होती है, ऊब पैदा होती है, घबड़ाहट पैदा होती है। ऊब के कारण नींद आ जाती है। चित्त की जो सजगता है, वह क्षीण हो जाती है। तो बच्चे को जब एक ही एक कड़ी दोहराई जाती है तो वह सोने लगता है।
जिन सभाओं में कोई व्यक्ति एक ही एक बात को बार-बार एक ही टोन में बोलता जाए, वहां बहुत से लोग सोने लगते हैं। फिर वह बोलने वाला आदमी उनको दोष देगा कि आप सो रहे हैं, मैं बड़ी ऊंची बातें कह रहा हूं। जब कि दोष बोलने वाले का ही होगा, सोने वालों का नहीं। वह इस ढंग से बोल रहा है कि एक ही बात को बार-बार दोहरा रहा है। उस दोहराने का, रिपीटीशन का परिणाम होता है कि सुनने वाले का मस्तिष्क सजगता खो देता है, डल हो जाता है, सोने लगता है। सारी दुनिया में हिप्नोटिस्टों ने, सम्मोहकों ने, मैस्मेरिजम वालों ने, किसी भी चीज को बार-बार दोहरा कर लोगों को मूर्च्छित करने के उपाय निकाले हैं। आप किसी भी चीज को बार-बार दोहराए जाएं, आप मूर्च्छित हो जाएंगे। राम-राम बार-बार दोहराए जाएं, आप मूर्च्छित हो जाएंगे। क्योंकि चित्त की सजगता नवीन के कारण होती है। जब कोई नवीन चीज सामने खड़ी हो, चित्त सजग होता है। और जब वही-वही चीज बार-बार सामने खड़ी हो, चित्त उसमें अर्थ खो देता है, रस खो देता है, इंटेस्ट खो देता है। इंटेस्ट के खोने की वजह से नींद आ जाती है।
तो जप आपके मस्तिष्क को विकसित नहीं करता, डल करता है, नींद में ले जाता है। आपने कभी जप करने वाले व्यक्ति के भीतर किसी बड़ी अलौकिक प्रतिभा के कोई दर्शन कभी नहीं किए होंगे। असल में अगर आदमी मूढ़ न हो, तो एक ही बात को बहुत बार-बार दोहरा नहीं सकता। ये स्टुपिडिटी के लक्षण हैं। एक आदमी बैठा है और एक ही बात को बार-बार दोहराए चला जा रहा है, एक आदमी बैठा है और माला को फेरे चला जा रहा है, ये किसी न किसी रूप में बुद्धिमत्ता के नहीं, बुद्धि के अभाव के लक्षण हैं। इनसे कोई मनुष्य के भीतर बुद्धि का विकास नहीं होता। इसलिए आप देखेंगे, जप-तप करने वाली कौमें उन कौमों से पीछे पिछड़ गई हैं समस्त प्रतिभाओं में जिन कौमों ने कोई जप-तप नहीं किया।
आप अपने ही मुल्क को ले लें। आपका मुल्क आज इस समय दुनिया में प्रतिभा
की कमी का नमूना है। पिछड़े हैं हर बात में। पिछड़े होने का कारण है। जीवन की समस्याओं को जीना नहीं चाहते, भुलाना चाहते हैं। कोई तरकीब मिल जाए, कोई एस्केप मिल जाए, किसी भांति हम भूल जाएं कि जिंदगी में कोई समस्या है। यह हमारी प्रवृत्ति है। इससे बचने के लिए कोई न कोई इंटाक्सिकेशन, कोई मूर्च्छा की दवा, कोई नींद की दवा हम खोजते हैं। यह जप भी नींद की दवा है। नींद न आती हो, बड़ा सहयोगी है। होश बना हो, उसको मिटाने के लिए बड़ा सहयोगी है। बुद्धि तकलीफ देती हो, क्योंकि बुद्धि हो तो चिंता होती है, विचार होते हैं। बुद्धि ही न हो, तो न चिंता होगी, न विचार होंगे।
तो आपने जो कहा है कि विचार-प्रवाह को मिटाने में जप सहयोगी है। निश्चित सहयोगी है। क्योंकि अगर बुद्धि ही न हो, तो विचार कहां होंगे? लेकिन मैं जो कह रहा हूं कि विचार से मुक्त होना चाहिए, वह विचार का, प्रवाह का इस भांति नष्ट होना नहीं है कि आप जड़बुद्धि हो जाएं। विचार शून्य होने चाहिए, चेतना जाग्रत होनी चाहिए। विचार दो तरह से शून्य होते हैंः चेतना जड़ हो जाए तो भी विचार शून्य हो जाते हैं और चेतना मुक्त हो जाए

तो भी विचार शून्य हो जाते हैं। चेतना को जड़ करके विचार शून्य नहीं होना है, विचार मुक्त होना है। तो किसी तरह का रिपीटीशन, पुनरुक्ति मस्तिष्क को विकसित नहीं करती, न कर सकती है, न कोई कारण है।
कभी सोचिए थोड़ा सा! एक आदमी बैठा है, एक-एक-एक दोहराए जा रहा है या राम-राम दोहराए जा रहा है, इस दोहराने से मस्तिष्क का विकास कैसे हो जाएगा? इस दोहराने से कैसे प्रतिभा जग जाएगी? इस दोहराने से क्या होगा? इस दोहराने से केवल इतना होगा कि चूंकि अब वह एक ही बात दोहराए जाएगा...
अभी मैं एक जगह था, और एक व्यक्ति को मेरे पास लाया गया। किसी साधु के, किसी गुरु के चक्कर से उसका जीवन बर्बाद हुआ। बहुत लोगों का बर्बाद हुआ है, बहुत लोगों का बर्बाद हो रहा है और आगे भी होता रहेगा, क्योंकि यह परंपरा इतनी ज्यादा गहरी हमारे मन को पकड़े हुए है। उसे किसी ने कहा होगा कि राम का जप करो, इससे सत्य मिल जाएगा। लोभ मन को पकड़ लेता है कि जब राम ही के जप करने से सत्य मिल जाएगा, तो कौन पागल छोड़े! काम ही कौन बड़ा है! लोभ मन में है, सोचा कि ठीक है, राम का जप करो। उसने कहा कि सतत, अखंड जप करो। कोई भी काम करते रहो, मन में राम-राम करते रहो।
मन में राम-राम उसने शुरू कर दी। कोई भी काम करता, भीतर मन में राम-राम चलाए रखता। स्वाभाविक था, एब्सेंट माइंडेडनेस पैदा हो गई। क्योंकि बाहर एक काम करेगा और भीतर राम-राम जपेगा। मन का जो बोध है वह एक ही तरफ रह सकता है, तो बाहर उससे भूल-चूक होने लगी। मिलिटरी में लेफ्टिनेंट था, बड़ी परेशानी हो गई। उसके आफिसरों ने भी कहा कि यह क्या मामला है? कुछ तुम्हारा, कुछ मन ठीक नहीं है।
पर उसने सोचा, अपने गुरु को कहा। उसने कहाः अड़चनें तो आती हैं भगवान
के मार्ग में, बड़ी अड़चनें आती हैं। तो इससे तुम डरो मत, हिम्मत से लगे रहो। वह पागल था, हिम्मत से लगा रहा। हिम्मत से लगा रहा, छह महीने के बाद उसकी नींद उचट गई। क्योंकि अगर चौबीस घंटे कोई टेंशन मन में हो--यह बड़ा टेंशन है कि राम-राम, राम-राम जपता रहे कोई आदमी चौबीस घंटे--तो इतना भीतर तनाव हो तो चित्त का विश्राम खो गया। विश्राम खोने से वह उदास हो गया, अस्वस्थ हो गया, मन में न मालूम क्या-क्या परेशानियां पैदा होने लगीं। लेकिन गुरु ने कहाः यह सब तो होगा। यह सब तो होता है। तो तुम जारी रखो।
तो उसने और भी जारी रखा। सामान्य आदमी होता, लौट आता। उसने और जारी रखा। मिलिटरी का आदमी था, लौटना जानता नहीं था। और मिलिटरी के आदमी धीरे- धीरे बुद्धिहीन हो ही जाते हैं। क्योंकि मिलिटरी में सब रिपीटीशन करवाया जाता है। ऐसे ही जैसे रिपीटीशन मिलिटरी करवाती है--एक आदमी को कहते हैंः बाएं घूमो, दाएं घूमो; आगे जाओ, पीछे जाओ। तीन-चार साल तक किसी आदमी से ऐसा मूर्खतापूर्ण काम करवाया जाए, उसकी बुद्धि क्षीण हो जाती है। और मिलिटरी चाहती है कि बुद्धि क्षीण हो जाए। नहीं तो दुनिया में हिंसा नहीं करवाई जा सकती।
दुनिया में मैं मिलिटरी के विरोध में इसलिए नहीं हूं कि वह हिंसा करती है, इसलिए विरोध में हूं कि लाखों लोग बुद्धिहीन हो जाते हैं, उनकी बुद्धि खो जाती है। वे सिर्फ आज्ञा पाल सकते हैं। उनमें विचार नहीं रह जाता।
तो वह मिलिटरी का आदमी था, लेफ्ट-राइट करने की आदत थी, उसी तरह वह राम-राम भी जपने लगा भीतर। वह करता ही चला गया। वर्ष पूरा होते-होते उसके मन ने एक रट पकड़ ली, एक यांत्रिक दोहराने का भाव पकड़ लिया, तब खतरा शुरू हुआ, तब कोई उसे मेरे पास लाया।
खतरा यह हुआ कि राम-राम दोहराने से इतना मन विचारहीन हो गया-- विचारमुक्त नहीं, विचारहीन; विवेक जाग्रत नहीं हुआ, विवेक सो ही गया--और मन ने एक मेकेनिकल रिपीटीशन पकड़ लिया, यांत्रिक पुनरुक्ति पकड़ ली। फिर यह दिक्कत शुरू हो गई, अगर वह रास्ते से जा रहा है और उसे दिखाई पड़ गया कुत्ता, तो उसका मन दोहराने लगेगाः कुत्ता, कुत्ता, कुत्ता... । साइकिल जा रही है, तो उसका मन दोहराने लगेगाः साइकिल, साइकिल... । अब उसको निकालना भी चाहता है, तो नहीं निकाल सकता। क्योंकि वर्षों का अयास हो गया। और उस अयास ने मन को जड़ता दे दी।

मन को जड़ता नहीं देनी है, मन को उन्मुक्त करना है। उसके चैतन्य के प्रवाह को जगाना है। यानी केवल विचारहीन हो जाने से कुछ न होगा, नहीं तो अनेक जड़बुद्धि लोग हैं, वे परमात्मा को उपलब्ध हो जाएंगे। पशु-पक्षी हैं, वे परमात्मा को उपलब्ध हो जाएंगे, विचारहीन हैं।
विचारहीन नहीं होना है, विचारमुक्त होना है। विचारहीनता में और विचारमुक्ति में बड़ा फर्क है। इस भांति की चेष्टाएं आपके विचार को जड़ कर देंगी। आपका बोध क्षीण हो जाएगा। इसलिए आपने देखा होगा, इस तरह के लोग, जप करने वाले या किसी मंत्र को बार-बार दोहराने वाले लोग बेहोश होते देखे जाएंगे। जब वे बेहोश हो जाएंगे, लोग कहेंगे, समाधि में चले गए। वे केवल बेहोश हैं, आप समझ रहे हैं समाधि में चले गए। समाधि में कोई बेहोशी में नहीं जाता, समाधि में तो परिपूर्ण होश पैदा हो जाता है। बुद्ध के जीवन में सुना कभी कि बेहोश हो गए? क्राइस्ट के जीवन में सुना कभी कि बेहोश हो गए? बेहोश होना, मूर्च्छित हो जाना, और आप समझते हैं कि यह ध्यान है? आप राम-राम जपेंगे, थोड़ी देर में आपको बाहर का बोध खो जाएगा।
मेरे पास लोग आते हैं, अभी एक प्रश्न भी आया, पीछे किसी ने आकर भी पूछा
कि आपका जो ध्यान है, हम करते रहते हैं, लेकिन हमें पक्षियों की आवाज सुनाई पड़ती है, हमें आस-पास का पता चलता है। तो मैंने कहाः पता तो बढ़ना चाहिए, क्योंकि भीतर हम बोध को जगाने की कोशिश कर रहे हैं, बोध को सुलाने की नहीं। लोग सोचते हैं, ध्यान का अर्थ है, कुछ भी पता न चले।
वह तो मूर्च्छा है। कुछ भी पता न चले, वह मूर्च्छा है। सब कुछ पता चले, लेकिन भीतर रिएक्शन न हो। सब कुछ पता चले, लेकिन भीतर प्रतिक्रिया न हो। एक कौवे की आवाज आए, सुनाई पड़नी चाहिए। जो आदमी ध्यान में है, उसे आपकी बजाय ज्यादा स्पष्ट सुनाई पड़नी चाहिए। उसकी सेंसिटिविटी बढ़ जाएगी। उसकी संवेदनशीलता बढ़ जाएगी। क्योंकि वह इतना शांत बैठा है, उसके भीतर कोई विचार नहीं चल रहा है, होश में बैठा है, एक सुई भी गिरेगी तो उसे उसकी आवाज मालूम पड़नी चाहिए। आप विचार में उलझे हुए हैं, आपको पता नहीं चलेगा। अभी मैं बोल रहा हूं, आप मुझमें उलझे हुए हैं; यह इतनी बड़ी मशीन चल रही है, हो सकता है वह आपको सुनाई न पड़े। जब मैं कहूंगा, तब सुनाई पड़ेगी, नहीं तो आपको पता नहीं चल रही थी कि वह है, चल रही है। एक कौआ बोलेगा, आपको सुनाई नहीं पड़ेगा। आप मुझमें उलझे हुए हैं, उलझे होने की वजह से कौआ सुनाई नहीं पड़ रहा है। लेकिन आप जब बिल्कुल नहीं उलझे हुए हैं, बिल्कुल शांत हैं, तो धीमी सी आवाज भी सुनाई पड़ेगी। फर्क क्या पड़ेगा? आवाज तो सुनाई पड़ेगी, लेकिन आपके भीतर कोई प्रतिध्वनि पैदा नहीं होगी। आप यह नहीं सोचेंगे--कौआ बोल रहा है, कैसा कौआ है, काला है, कि किसका है कि किसका नहीं है, या क्यों बोल रहा है, या नहीं बोलना था, यह मुझे क्यों सुनाई पड़ गया--इस तरह की कोई प्रतिक्रिया आपके भीतर नहीं होगी। बोध होगा, प्रतिक्रिया नहीं होगी। बोध नहीं मर जाना चाहिए। अगर बोध मर गया, तो आप मूर्च्छित हो रहे हैं। मूर्च्छित नहीं होना है।
लेकिन जप जैसी क्रियाएं मूर्च्छित करती हैं मन को। मूर्च्छा में सुख आता है। निश्चित सुख आता है। असल में दुनिया में जब भी सुख आता है, समझ लेना किसी न किसी भांति की मूर्च्छा काम कर रही है। मूर्च्छा में ही सुख आता है। और अमूर्च्छा में आनंद आता है। मूर्च्छा में सुख, अमूर्च्छा में आनंद। मूर्च्छा में संतुष्टि, अमूर्च्छा में सत्य। वह जो मैंने पहले आपसे पहले दिन कहा था, एक खोज संतुष्टि की है, संतुष्टि की खोज का अर्थ है, मूर्च्छा की खोज, किसी भांति हम मूर्च्छित हो जाएं। हमें अपना पता न रहे। हम किसी भांति अपने को भूल जाएं। फिर चाहे शराब में भूलें, चाहे संगीत में भूलें, चाहे सेक्स में भूलें और चाहे भजन-कीर्तन में भूलें, जप-तप में भूलें, भूल जाएं किसी तरह अपने को, तो बड़ा अच्छा रहे। ये सब आत्मघाती प्रवृत्तियां हैं, स्युसाइडल प्रवृत्तियां हैं, अपने को मारने की प्रवृत्तियां हैं, अपने को, अपने जीवन को जगाने की प्रवृत्तियां नहीं हैं।
मेरी दृष्टि में, किसी भांति की पुनरुक्ति चित्त के तल पर जीवन के बोध
को ऊपर नहीं ले जाती, न ले जा सकती है। कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है ले जाने

का। पुनरुक्ति नहीं; होश, सजगता। उसकी मैं कल चर्चा करूंगा कि सजगता क्या है, विधायक अंग में कि सजगता कैसे जगे और कैसे वह सत्य की ओर और चैतन्य जीवन की ओर, परमात्मा की ओर, आत्मा के परिपूर्ण विकास की ओर ले जाने में सहयोगी हो जाए।

कुछ प्रश्न पूछे गए हैं, जो इस बात से संबंधित हैं कि मैंने कहा कि धर्म की शिक्षा नहीं देनी चाहिए।
तो पूछा हैः हम बच्चों को क्या शिक्षा दें? धर्म की शिक्षा न दें, तो फिर उन्हें क्या शिक्षा दें?

मजा यह है कि शिक्षा देने में बड़ा रस आता है। उपदेश करने में बड़ा मजा आता है। जरा उम्र बड़ी हुई, तो छोटी उम्र के आदमी को उपदेश देने में बड़ा रस आता है। जरा पद बड़ा हुआ, तो छोटे पद वाले को जरा उपदेश देने में रस आता है। उपदेश और शिक्षा में जो रस है, वह अहंकार का रस है। आप उनके जीवन को बदलने के लिए उतने उत्सुक नहीं; न इस बात में उत्सुक हैं कि उनका जीवन शुद्ध और पवित्र हो जाए; न इस बात में उत्सुक हैं कि वे सत्य की ओर उत्सुक हो जाएं। आप इस बात में उत्सुक हैं कि किसी भांति हम शिक्षा दें।
औरंगजेब ने जब अपने बाप को बंद कर दिया, जेल में बंद कर दिया, तो बादशाह था, सारी शक्ति थी, उसने कहा, बंद करने के बाद उसने औरंगजेब को कहाः एक काम कम से कम करो, मुझे तीस बच्चे दे दो, तो मैं उनको पढ़ाता-लिखाता रहूंगा।
औरंगजेब ने किसी से कहाः उसकी बादशाहत नहीं जाती। जेल में बंद है, तीस बच्चों के ऊपर मालिक हो जाएगा। उनको समझाएगा, बुझाएगा, ज्ञान देगा, वहां वह फिर केंद्र हो जाएगा।
जब आप किसी को शिक्षा देना चाहते हैं तो सच में आपकी उत्सुकता क्या है? अगर आप अपने बच्चे को ही शिक्षा देना चाहते हैं, आपकी उत्सुकता क्या है? क्या आप इस बात में उत्सुक हैं कि वह जीवन को, श्रेष्ठतर जीवन को उपलब्ध हो? अगर आप इस बात में उत्सुक हैं कि उसे जीवन को समझने की योग्यता दें, शिक्षा नहीं। जीवन को देखने की क्षमता दें, संस्कार नहीं। जीवन को पहचानने और जानने की प्रतिभा दें, विचार नहीं। अपना प्रेम दें, लेकिन अपनी समझ नहीं, उपदेश नहीं। आपके उपदेश, आपकी शिक्षाएं उसे जड़बद्ध करेंगी, उसके चित्त को परतंत्र करेंगी, वह स्वयं जानने में असमर्थ हो जाएगा। आप उसके बोध को जगाएं।

पूछा है दूसरा प्रश्नः बोध हम कैसे जगाएंगे उसमें?

सबसे पहली बात होगीः अपने में बोध को जगाएं। क्योंकि कितनी हैरानी होगी कि आपमें बोध नहीं है और आप दूसरे में बोध के जगाने का विचार कर रहे हैं! अपना दीया बुझा हुआ है, पूछते हैं, दूसरे का दीया कैसे जलाएं?
पहली जरूरत होगी अपने बोध को जगाने की। जब आपका बोध जगेगा तो आप जानेंगे कि क्या नियम हैं बोध के जगने के।

साक्षी की साधना
तेरहवां प्रवचन

ध्यान का द्वार: सरलता

जो अपने मन को शांत और मौन दर्पण बना लेगा, उसे चारों तरफ परमात्मा के दर्शन शुरू हो जाएंगे। वह एक पक्षी का गीत सुनेगा, तो पक्षी के गीत में भी उसे परमात्मा की वाणी सुनाई पड़ेगी। वह एक फूल को खिलते देखेगा, तो उस फूल के खिलने में भी परमात्मा की सुवास की सुगंध उसे मिलेगी। उसे चारों तरफ एक अपूर्व शक्ति का बोध होना शुरू हो जाता है। लेकिन यह होगा तभी जब मन हमारा इतना निर्मल और स्वच्छ हो कि उसमें प्रतिबिंब बन सके, उसमें रिफ्लेक्शन बन सके।
तुमने देखा होगा झील पर कभी जाकर, अगर झील पर बहुत लहरें उठती हों, आकाश में चांद हो, तो फिर झील पर कोई चांद का प्रतिबिंब नहीं बनता। और अगर झील बिल्कुल शांत हो, उसमें कोई लहर न उठती हो, दर्पण की तरह चुप और मौन हो, तो फिर चांद उसमें दिखाई पड़ता है। और जो चांद झील में दिखाई पड़ता है, वह उससे भी सुंदर होता है जो ऊपर आकाश में होता है।
प्रकृति चारों तरफ फैली हुई है, लेकिन हमारा मन दर्पण की भांति नहीं है। इसलिए उसके भीतर उस प्रकृति की कोई छवि नहीं उतरती, कोई चित्र नहीं बनते। और तब हम वंचित हो जाते हैं उसे जानने से जो हमारे चारों तरफ मौजूद है।

लोग पूछते हैं, तुमने भी प्रश्न पूछेः ईश्वर है या नहीं?

यह वैसे ही है जैसे कोई मछली पूछे कि सागर कहां है? समुद्र कहां है? तो
उस मछली को हम क्या कहेंगे? उससे कहेंगेः तुम्हारे चारों तरफ जो है वह सागर ही है, समुद्र ही है।
जब हम पूछते हैं, ईश्वर है या नहीं है? उसका मतलब क्या हुआ? उसका मतलब
यह हुआ कि हमारे पास ईश्वर को देखने वाला दर्पण नहीं है। अन्यथा ईश्वर तो चारों तरफ मौजूद है। लेकिन हमारे भीतर दर्पण मौजूद नहीं है, इसलिए कठिनाई है।
कैसे हमारा मन दर्पण बन जाए? थोड़ी सी बातें इस संबंध में मैंने तुमसे
की हैं, आज और दो-तीन सूत्रों पर तुमने बात करूं।
अगर इन सूत्रों पर थोड़ा प्रयोग करो, श्रम करो, तो कोई कठिनाई नहीं है
कि तुम भी एक निर्मल चित्त को उपलब्ध हो जाओ, एक शांत मन को उपलब्ध हो जाओ।
और फिर उस शांत मन में उन सारी चीजों के प्रतिबिंब बनें जो परमात्मा की ओर इशारा करती हैं।
पहला सूत्र हैः सरलता।
मनुष्य की सयता जितनी विकसित हुई है, मनुष्य उतना ही जटिल, कठोर और कठिन होता गया है। सिंप्लीसिटी, सरलता जैसी कोई भी चीज उसके भीतर नहीं रह गई है। उसका मन अत्यंत कठोर और धीरे-धीरे पत्थर की भांति, पाषाण की भांति सख्त होता गया है। और जितना हृदय पत्थर की भांति कठोर हो जाएगा, उतनी ही कठिन है बात। उतना ही जीवन में कुछ जानना कठिन है, मुश्किल है।
सरल मन चाहिए। कैसे होगा सरल मन? सरल मन की जो पहली ईंट है, जो पहला आधार है, जो पहली बुनियाद है, वह कहां से रखनी होगी?
आमतौर से तो जीवन में, हम जैसे-जैसे उम्र बड़ी होती है, कठोर ही होते चले जाते हैं। और यही तो वजह है, तुमने सुना होगा बूढ़ों को भी यह कहते हुए कि बचपन के दिन बहुत सुखद थे। बचपन बहुत आनंद से भरा था। बचपन बहुत आनंदपूर्ण था। तुम्हें भी लगता होगा, अभी यूं तो तुम्हारी उम्र ज्यादा नहीं, लेकिन तुम्हें भी लगता होगा--जो दिन बीत गए बचपन के, वे बहुत आनंदपूर्ण थे, और अब धीरे-धीरे उतना आनंद नहीं है। क्यों? यह तुमने सुना तो होगा, लेकिन विचार नहीं किया होगा कि बचपन के दिन इतने आनंदपूर्ण क्यों होते हैं?

बचपन के दिन इसलिए आनंदपूर्ण हैं कि बचपन के दिन सरलता के दिन हैं। हृदय होता है सरल, इसलिए चारों तरफ आनंद का अनुभव होता है। फिर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, हृदय होने लगता है कठिन और कठोर, फिर आनंद क्षीण होने लगता है। दुनिया तो वही है, बूढ़ों के लिए भी वही है, बच्चों के लिए भी वही है, लेकिन बच्चों के लिए चारों तरफ आनंद की वर्षा मालूम होती है। मौज ही मौज मालूम होती है। सौंदर्य ही सौंदर्य मालूम होता है। छोटी-छोटी चीज में अदभुत दर्शन होते हैं। छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर को भी बच्चा बीन लेता है और हीरे-जवाहरातों की तरह आनंदित होता है। क्या कारण है?
कारण हैः भीतर हृदय सरल है। जहां हृदय सरल है, वहां कंकड़-पत्थर भी हीरे-मोती हो जाते हैं। और जहां हृदय कठोर है, वहां हीरे-मोती भी ढेर लगे रहें तो भी कंकड़-पत्थरों से ज्यादा नहीं होते। जहां हृदय सरल है, वहां छोटे से फूल में अपूर्व सौंदर्य के दर्शन होते हैं। जहां हृदय कठिन है, वहां फूलों का ढेर भी लगा रहे, तो उनका कोई दर्शन नहीं होता। जहां हृदय सरल है, छोटे से झरने के किनारे भी बैठ कर अदभुत सौंदर्य का बोध होता है। और जहां हृदय कठिन है, वहां कोई कश्मीर जाए या स्विटजरलैंड जाए, या और सौंदर्य के स्थानों पर जाए, वहां भी उसे कोई सौंदर्य का बोध नहीं होता है। वहां भी उसे कोई आनंद की अनुभूति नहीं होती है।
लेकिन बूढ़े लोग यह तो कहते हैं कि बचपन के दिन सुखद थे, लेकिन यह विचार नहीं करते कि क्यों सुखद थे? अगर इस बात पर विचार करें, तो पता चलेगा, हृदय सरल था इसलिए जीवन में सुख था। तो अगर बुढ़ापे में भी हृदय सरल हो, तो जीवन में बचपन से भी ज्यादा सुख होगा। होना भी यही चाहिए। यह तो बड़ी उलटी बात है कि बचपन के दिन सुखद हों और फिर सुख धीरे-धीरे कम होता जाए, यह तो उलटी बात हुई। जीवन में सुख का विकास होना चाहिए। जितना सुख बचपन में था, बुढ़ापे में उससे हजार गुना ज्यादा होना चाहिए। क्योंकि इतना जीवन का अनुभव, इतना विकास, इतनी समझ का बढ़ जाना, सुख का भी बढ़ना होना चाहिए।
लेकिन होती बात उलटी है, बूढ़ा आदमी दुखी होता है और बच्चा सुखी होता है। इसका अर्थ है कि जीवन की गति हमारी कुछ गलत है, हम जीवन को ठीक से व्यवस्था नहीं देते। अन्यथा वृद्ध व्यक्ति को जितना आनंद होगा, उतना बच्चे को क्या हो सकता है! यह तो पतन हुआ। बचपन में सुख हुआ और बुढ़ापे में दुख हुआ, यह तो पतन हुआ, हमारा जीवन नीचे गिरता गया। बजाय बढ़ने के जीवन नीचे गिरा। बजाय ऊंचा होने के हम पीछे गए। यह तो उलटी बात है। अगर ठीक-ठीक मनुष्य का विकास हो, तो बुढ़ापे के अंतिम दिन सर्वाधिक आनंद के दिन होंगे। होने चाहिए। और अगर न हों, तो जानना चाहिए, हम गलत ढंग से जीए। हमारा जीवन गलत ढंग का हुआ।
अगर किसी स्कूल में ऐसा हो कि पहली कक्षा में जो विद्यार्थी आए वह तो ज्यादा समझदार, और जब वह कालेज छोड़ कर निकले तो कम समझदार हो जाए, तो उस कालेज को हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे, यह तो पागलखाना है। होना तो यह चाहिए कि पहली कक्षा में जो विद्यार्थी आए, बच्चे आए, उनकी समझ तो बहुत कम थी। जब वे कालेज को छोड़ें, स्कूल को छोड़ें, तो उनकी समझ और बढ़ जानी चाहिए।
जीवन में जो बच्चे आते हैं वे तो ज्यादा सुखी मालूम होते हैं और जो बूढ़े जीवन को छोड़ते हैं वे ज्यादा दुखी हो जाते हैं। तो यह तो बहुत उलटी बात हो गई। इस उलटी बात में हमारे हाथ में कुछ गलती होगी, कोई कसूर होगा। सबसे बड़ा कसूर हैः सरलता को हम खो देते हैं, कमाते नहीं। सरलता कमानी चाहिए। सरलता बढ़नी चाहिए। गहरी होनी चाहिए। विस्तीर्ण होनी चाहिए। जितना हृदय सरल होता चला जाएगा, उतना ही ज्यादा जीवन में--इसी जीवन में--सुख की संभावना बढ़ जाएगी।
कैसे चित्त सरल होगा? मन कैसे सरल होगा? और कैसे कठिन हो जाता है? इन
दो बातों पर विचार करना जरूरी है।
उन लोगों का मन सर्वाधिक कठिन हो जाता है जिनके भीतर अहंकार का भाव जितना ज्यादा होता है। जितना उन्हें लगता है कि मैं कुछ हूं, जिन्हें समबडी होने का भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं कुछ खास हूं, मैं कुछ हूं; अहंकार जिनमें, ईगो जिनमें बहुत तीव्र हो जाती है, जिनमें दंभ बहुत गहरा हो जाता है, उनका हृदय कठोर होता चला जाता है। जिसके भीतर अहंकार का भाव

जितना कम होता है, उसका हृदय उतना ही सरल होता है। बच्चे में कोई अहंकार नहीं होता, इसलिए वह सरल है।
क्राइस्ट से किसी ने एक बार पूछा, वे एक बाजार में खड़े थे, कुछ लोग उन्हें घेर कर खड़े हुए थे और उनसे कुछ बातें पूछ रहे थे, तभी किसी ने उनसे पूछा कि परमात्मा के राज्य में कौन लोग प्रवेश कर सकेंगे?
क्राइस्ट ने एक छोटे से बच्चे को उठाया और कहाः जिनके हृदय इस बच्चे
की भांति होंगे, वे ही केवल परमात्मा के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं। जिनके हृदय बच्चों की भांति होंगे!
लेकिन हम तो सभी बच्चों के हृदय खो देते हैं धीरे-धीरे। खो देते हैं, क्योंकि हमारे भीतर एक अहंकार पैदा होना शुरू हो जाता है कि मैं कुछ हूं। लगने लगता है कि मैं कुछ हूं। अगर हम धन वाले घर में पैदा हुए हैं, तो लगता है कि मैं धनी हूं। अगर हम बहुत पद वाले घर में पैदा हुए हैं, तो लगता है कि मैं कुछ हूं, विशिष्ट, और लोगों से भिन्न। अगर एक व्यक्ति अच्छे कपड़े पहनता है, तो सोचता है, मैं कुछ हूं। अगर एक व्यक्ति ज्यादा शिक्षा पा लेता है और कुछ उपाधियां उपलब्ध कर लेता है, तो सोचता है, मैं कुछ हूं।
यह "मैं कुछ" होने का भाव जितना तीव्र होता जाता है, उतना ही हृदय कठोर होता चला जाता है। जब कि आश्चर्यजनक बात यह है कि मनुष्य की शक्ति क्या है? मनुष्य की सामर्थ्य क्या है? कुछ होने का बोध कितना गलत है, इसे अगर विचार करो तो दिखाई पड़ेगा। जैसे, तुम्हें यह भी पता नहीं होगा कि तुम क्यों पैदा हुईं? तुम्हें यह भी पता नहीं होगा कि तुम क्यों मर जाओगी? तुम्हें यह भी पता नहीं होगा कि तुम्हारी जो श्वास बाहर गई है, अगर वह भीतर नहीं आई, तो तुम्हारा क्या वश है उसके ऊपर?
श्वास पर भी हमारा कोई वश नहीं है, कोई शक्ति नहीं है, कोई ताकत नहीं है, फिर भी हम सोचते हैं, मैं कुछ हूं! क्या हमारी सामर्थ्य है? कितनी हमारी शक्ति है? मनुष्य का बल कितना है? अगर हम जीवन को देखें, तो ज्ञात होगा, हमारा कोई भी तो बल नहीं है। बहुत छोटी सी सीमित सामर्थ्य है। उसी सामर्थ्य में हमारे भीतर दंभ और अहंकार पैदा हो जाता है। समझेंगे तो ज्ञात होगा हम तो ना-कुछ हैं। जैसे हवा में उड़ते हुए पत्ते होते हैं, वैसी हमारी स्थिति है। पैदा हुए, हमें ज्ञात नहीं, क्यों? पैदा होने में तुमसे किसी से पूछा नहीं गया कि पैदा होना है या नहीं? तुमसे कोई, तुम्हारा कोई चुनाव, तुम्हारी कोई इच्छा काम नहीं की। मरते वक्त भी कोई पूछेगा नहीं। जीवन की क्रिया में भी तुम्हारा कोई वश नहीं है। जिस दिन श्वास आनी बंद हो जाएगी, तुम चाहो तो भी श्वास आ नहीं सकती। अगर मनुष्य के हाथ में यह होता कि वह जब तक चाहे श्वास ले सकता, तब तो कोई आदमी मरता ही नहीं। और कितना छोटा सा जीवन है! और उस जीवन में हमारे हाथ में क्या है?
एक छोटी सी घटना कहूं, उससे मेरी बात तुम्हें समझ में आए।
हमारे हाथ में करीब-करीब कुछ भी नहीं है। लेकिन फिर भी हमको यह वहम पैदा होता है कि मैं कुछ हूं। और उससे हम कठोर हो जाते हैं। बड़े से बड़ा धनी आदमी, जिसके पास कितनी ही संपत्ति हो, जब मृत्यु उसके द्वार खड़ी हो जाती है, उसे पता चलता है, मेरी कोई ताकत नहीं। बड़े से बड़ा सम्राट, जिसके पास बहुत शक्ति हो, जिसने दुनिया में न मालूम कितने लोगों की हत्या की हो, जब मौत उसके द्वार खड़ी हो जाती है, तो पाता है, मैं कुछ भी नहीं हूं। अब तक किसी मनुष्य को भी इस वहम को कायम रखने का कोई कारण नहीं मिला है कि उसकी कोई शक्ति है कि वह कुछ है।
एक घटना मैं तुम्हें कहने को हूं।
एक बहुत बड़े राजमहल के निकट कुछ थोड़े से बच्चे खेल रहे थे। एक बच्चे
ने एक पत्थर की ढेरी में से एक पत्थर उठाया और राजमहल की खिड़की की तरफ फेंका। वह पत्थर अपने पत्थर की ढेरी से ऊपर उठा। बच्चे ने फेंका तो पत्थर ऊपर उठा। उस पत्थर ने, नीचे जो पत्थर पड़े थे, उनसे कहाः मित्रो, मैं आकाश की सैर को जा रहा हूं।
बात ठीक ही थी, गलत कुछ भी न था। जा ही रहा था, नीचे के पत्थर पड़े देख रहे थे, उनके वश के बाहर था कि वे भी जाएं, इसलिए इस पत्थर की विशिष्टता को अस्वीकार करने का कोई कारण भी न था, स्वीकार करना ही पड़ा। वह पत्थर ऊपर

उठता गया। वह जाकर कांच की खिड़की से टकराया महल की, कांच चकनाचूर होकर टूट गया। उस पत्थर ने जोर से कहा कि मैंने कितनी बार कहाः मेरे रास्ते में कोई न आए, नहीं तो चकनाचूर होकर टूट जाएगा!
यह भी बात ठीक ही थी। कांच टूट ही गया था, टुकड़े-टुकड़े हो गया था। पत्थर का यह गरूर भी ठीक ही था कि मैंने कहा है कि मेरे रास्ते में जो आएगा वह टूट जाएगा। फिर पत्थर भीतर गिरा। वहां ईरानी कालीन बिछा हुआ था, उस पर गिरा। उस पत्थर ने मन में कहाः बहुत थक गया, एक शत्रु का भी सफाया किया, अब थोड़ी देर विश्राम कर लूं।
उसने विश्राम भी किया। लेकिन तभी महल के नौकर को खबर पड़ी, कांच के फूटने की आवाज पहुंची, वह भागा हुआ आया, उसने उस पत्थर को उठा कर वापस खिड़की से नीचे फेंका। जब वह पत्थर वापस लौटने लगा, तो उसने कहाः मित्रों की मुझे बहुत याद आती है, अब मुझे वापस चलना चाहिए।
वह नीचे गया, जब वह ढेरी के ऊपर वापस गिरा अपने पत्थरों की ढेरी पर, तो उसने पत्थरों से कहाः मित्रो, बड़ी अदभुत यात्रा रही, बड़ी अच्छी यात्रा रही।...
तो उस खाली, पवित्रतम, शुद्धतम व्यक्तित्व को जान कर ही व्यक्ति जीवन में आनंद को, अमृत को उपलब्ध हो सकता है। उसे हम जान लें, उसकी कोई मृत्यु नहीं है, उसका फिर कोई अंत नहीं है, उसकी कोई समाप्ति नहीं है। उसे हम जान लें, उसके जानने के बाद कोई दुख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं है, कोई अपमान नहीं है। उसे हम जान लें, फिर जीवन में कोई विषमता नहीं है। समता है, फिर जीवन में शांति है। फिर जीवन में कुछ अदभुत है, जिसे शब्दों में कहना कठिन है। लेकिन उसे जानने के लिए सरल होना जरूरी है। और सरल होने के लिए, जो-जो झूठ हमने ओढ़ रखे हैं, उन सबको विदा कर देना जरूरी है। जो-जो अभिनय हमने ओढ़ रखे हैं, वे सब समाप्त कर देने जरूरी हैं। झूठा व्यक्तित्व टूट जाए तो ही सत्य का अनुभव हो सकता है। और अगर यह बचपन से ही स्मरण हो, और यह बहुत छोटी उम्र से ख्याल में हो, तो फिर हम झूठे व्यक्तित्व को ओढ़ने से भी बच सकते हैं। तुम खुद ख्याल करोगी--कितनी बातें हम झूठी ओढ़े रखते हैं! कितनी बातें!
हम जैसे होते हैं वैसा हम कभी बताते नहीं। हम जैसे नहीं होते हैं वैसा हम बताने की कोशिश करते हैं। हम जितने सुंदर नहीं हैं, उतने सुंदर दिखने की कोशिश करते हैं। हम जितने सच्चे नहीं हैं, उतने सच्चे दिखने की कोशिश करते हैं। हम जितने ईमानदार नहीं हैं, उतने ईमानदार दिखने की कोशिश करते हैं। हम जितने प्रेमपूर्ण नहीं हैं, उतने प्रेमपूर्ण दिखने की कोशिश करते हैं। तब क्या होगा? तब इस कोशिश में झूठ धीरे-धीरे हमारे चारों तरफ लिपटता चला जाएगा। और जो हम नहीं हैं, वही हमें ज्ञात होने लगेगा कि हम हैं। निरंतर के प्रयास से झूठ को ओढ़ने से ऐसा लगने लगेगा कि हम हैं। और तब भ्रांति हो जाएगी। और तब भीतर पहुंचना कठिन हो जाएगा।
अगर इस उम्र से ही यह बोध रहे कि मैं जो हूं, उससे भिन्न न मुझे दिखाई पड़ना चाहिए, न मुझे कोशिश करनी चाहिए। जो भी सीधा-सच्चा मेरा व्यक्तित्व है, वही जगत जाने, वही दुनिया जाने, वही उचित है। और मैं तो कम से कम जानूं ही कि मैं कौन हूं, क्या हूं। और अगर धीरे-धीरे इसका साहस बढ़ता चला जाए, तो तुम्हारे ऊपर झूठे व्यक्तित्वों का, फाल्स पर्सनैलिटीज का तुम्हारे ऊपर प्रभाव नहीं होगा। तुम्हारा कोई व्यक्तित्व झूठा खड़ा नहीं होगा। धीरे- धीरे तुम्हारे जीवन में सरलता घनी होती जाएगी। और जैसे-जैसे उम्र बढ़ेगी, वैसे-वैसे सरलता बढ़ेगी। और एक क्षण आएगा जीवन में जब तुम्हारा हृदय इतना निर्मल होगा, इतना सरल और सीधा होगा, उसमें कोई कठोरता, उसमें कोई कृत्रिमता, उसमें कोई झूठ न होने से वह इतना निर्दोष होगा, जैसे पानी का झरना होता है, जिसमें कोई कचरा नहीं है, जिसमें कोई धूल नहीं है, जिसमें कोई गंदगी नहीं है, जिसमें कोई मिट्टी नहीं है। उस झरने के निर्दोष जल में नीचे के कंकड़-पत्थर सब दिखाई पड़ते हैं, नीचे की रेत भी दिखाई पड़ती है। ठीक वैसे ही जब मन इतना झरने की भांति सरल होता है, सीधा होता है, स्पष्ट होता है, साफ होता है, तो उस मन के भीतर जो आत्मा छिपी है, उसकी अनुभूति शुरू होती है। और आत्मा की अनुभूति हो, तो परमात्मा की खबर मिलनी शुरू हो जाती है। जो अपने ही भीतर के सत्य को नहीं जानता, वह सारे जगत में छिपे हुए सत्य

को कैसे जान सकेगा? पहला द्वार खुद के भीतर जाकर स्वयं को जानने का है। और खुद के भीतर वही जा सकता है, जिसने अपने जीवन में झूठ और असत्य न ओढ़े हों। लेकिन सारे लोग ओढ़े हुए हैं। जो आदमी साधु नहीं है, वह साधु बना हुआ है। जो आदमी सेवक नहीं है, वह सेवक बना हुआ है। जिस आदमी के जीवन में कोई प्रेम नहीं है, वह प्रेम की बातें कर रहा है। जिसके जीवन में कोई सौंदर्य नहीं है, वह सौंदर्य के गीत गा रहा है। तो फिर तो जीवन विकृत हो जाएगा, दूर हो जाएगा सत्य से। और जितना यह दूर होता जाएगा, उतनी कठिनाई होती जाएगी। और हम सब धोखा देने को अति उत्सुक हैं। दूसरों को नहीं, अपने को भी धोखा देने को उत्सुक हैं। दूसरों को धोखा देना उतना खतरनाक नहीं है, जितना अपने को धोखा दे लेना।
मैंने सुना है, लंदन में कोई सौ वर्ष पहले शेक्सपियर का एक नाटक चल रहा था। वहां का जो सबसे बड़ा धर्म-पुरोहित था, धर्मगुरु था, जो सबसे बड़ा बिशप था लंदन का, वह भी देखना चाहता था उस नाटक को। लेकिन संन्यासी, साधु, धर्मगुरु नाटक देखने नहीं जाते। और अगर तुम्हें वे मिल जाएं सिनेमागृह में तो तुमको भी हैरानी होगी और वे तो परेशान हो ही जाएंगे। नाटक देखने वे नहीं जाते, क्योंकि जीवन में जहां भी सुख है और रस है, वे उस सबके विरोधी हैं। तो उस धर्मगुरु के मन में इच्छा तो बहुत थी कि नाटक देखूं। रोज-रोज लोग प्रशंसा करते थे, बहुत अच्छा नाटक है। लेकिन कैसे जाए? तो उसने एक पत्र उस नाटक के मैनेजर को लिखा। और उस पत्र में लिखा कि क्या तुम्हारे नाटकगृह में, तुम्हारे सिनेमा हॉल में पीछे की तरफ से कोई दरवाजा नहीं है कि मैं वहां से आकर नाटक देख सकूं? ताकि लोग मुझे न देख सकें और मैं नाटक देख लूं।
उस मैनेजर ने पत्र का उत्तर दिया कि मेरे नाट्यगृह में पीछे से दरवाजा है, और अनेक बार अनेक लोग पीछे के दरवाजे से भी देखने आते हैं। ऐसे अनेक लोग आते हैं देखने, जो चाहते हैं कि वे तो नाटक देखें, लेकिन लोग उन्हें न देख पाएं। लेकिन जहां तक आपका संबंध है, मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूंः ऐसा दरवाजा तो है जो पीछे है, लेकिन ऐसा कोई भी दरवाजा हमारे इस भवन में नहीं है जिसको परमात्मा न देखता हो। लिखाः ऐसा कोई भी दरवाजा हमारे भवन में नहीं है जिसको परमात्मा न देखता हो। मनुष्यों की आंख से छिपाना तो संभव हो जाएगा, लेकिन परमात्मा की आंख से और खुद की आंख से छिपाना कैसे संभव होगा?
हम खुद की आंख से बहुत सी बातें अगर छिपाते चले जाएं, तो फिर खुद को नहीं जान सकते हैं। खुद की आंख से कोई बात नहीं छिपानी चाहिए। साहस के साथ, हम जैसे हैं--जैसे भी हैं, बुरे और भले--स्वयं को वैसा ही जानना चाहिए। जब तुम अपनी सीधी-सीधी सच्चाई से परिचित होओगी, जब तुम अपने सीधे-सीधे व्यक्तित्व को जानोगी, तो तुम्हारे जीवन में एक क्रांति हो जाएगी। क्यों? क्योंकि अगर कोई व्यक्ति बहुत स्पष्ट रूप से स्वयं को देखे, तो उसमें जो भी गलतियां हैं उनका टिकना असंभव है। वे गलतियां इसीलिए टिकती हैं कि हम उन्हें छिपा लेते हैं। कोई आदमी गलत नहीं हो सकता, अगर वह अपने को सीधा और स्पष्ट देखने का साहस जुटा ले। अगर तुम्हें स्पष्ट दिखाई पड़े कि तुम्हारे भीतर झूठ है, और तुम अच्छी-अच्छी बातों से उसे न छिपाओ, तो झूठ के साथ बहुत दिन जीना असंभव है।
वैसे ही जैसे तुम्हें दिखाई पड़े कि तुम्हारे पैर में फोड़ा है और तुम बिना इलाज के जीना चाहो। या तुम्हें जैसे दिखाई पड़ जाए, तुम्हें पता चल जाए कि तुम्हारे फेफड़े खराब हो गए हैं, क्षयरोग हो गया है, टी.बी. हो गया है, कैंसर हो गया है, और तुम बिना इलाज के जी जाओ। अगर तुम्हें पता ही न चले तो दूसरी बात है। लेकिन अगर तुम्हें ज्ञात हो जाए कि तुम्हारे भीतर कोई गहरी बीमारी है, तो तुम उस बीमारी के इलाज में निश्चित ही उत्सुक हो जाओगे। अगर तुम्हें पता चल जाए कि तुम्हारे भीतर झूठ है, तो उस झूठ के साथ जीना कठिन है। क्योंकि झूठ बड़े से बड़े फोड़ों से भी ज्यादा पीड़ादायी है। और झूठ बड़ी से बड़ी बीमारियों से भी बड़ी बीमारी है।

एक बार तुम्हें स्पष्ट रूप से अपने पूरे व्यक्तित्व का बोध होना चाहिए कि मेरे भीतर क्या है और क्या नहीं है। और इसे कोई दूसरा तुम्हें नहीं बता सकता। यदि तुम खुद ही निरीक्षण करोगी, तो दिखाई पड़ेगा।
लेकिन निरीक्षण तभी सफल होगा, जब तुम अपने को धोखा देने के लिए निरंतर श्रम न करो। अगर तुम निरंतर अपने को धोखा देने में लगी रहो, तो बहुत कठिनाई है।
एक फकीर हुआ, गुरजिएफ। एक गांव से निकलता था। कुछ लोगों ने उसे गालियां दीं, अपमान भरे शब्द कहे, अभद्र बातें कहीं। उसने उनकी सारी बातें सुनीं और उनसे कहा कि मैं कल आकर उत्तर दूंगा।
वे लोग बहुत हैरान हुए। क्योंकि कोई गालियों का उत्तर कल नहीं देता! अगर मैं तुम्हें गाली दूं, तो तुम अभी कुछ करोगी। अगर कोई तुम्हारा अपमान करे, तो तुम उसी वक्त कुछ करोगी। ऐसा तो कोई भी नहीं कहेगा शांति से कि हम कल आएंगे और उत्तर देंगे।
गुरजिएफ ने कहाः मैं कल आऊंगा और उत्तर दूंगा।
उन लोगों ने कहाः यह तो बड़ी अजीब बात है, हमने कभी सुनी भी नहीं आज तक! कुछ तो कहो, हमने इतना अपमान किया!
उसने कहाः पहले मैं सोचूं जाकर कि तुमने जो अपमान किया, कहीं वह ठीक
ही तो नहीं है? हो सकता है तुमने जो बुराइयां मुझमें बताईं, वे मुझमें हों। और अगर वे मुझमें हैं, तब मैं तुम्हें कल धन्यवाद दूंगा आकर कि तुमने अच्छा मेरे ऊपर उपकार किया, मेरे ऊपर कृपा की। और अगर वे मुझमें नहीं हैं, तो मैं निवेदन कर जाऊंगा कि तुम और सोचना, वे बुराइयां मैंने अपने में नहीं पाईं। झगड़े का इसमें कोई कारण नहीं है। एक स्थिति में मैं तुम्हें धन्यवाद दे दूंगा कि तुमने मुझ पर कृपा की। और जो काम मुझे खुद करना चाहिए था, वह तुमने कर दिया। तुम मेरे मित्र हो। दूसरी स्थिति में मैं कह जाऊंगा कि मैंने खोजा, मेरे भीतर वे बुराइयां नहीं दिखीं जो तुमने बताईं, तो तुम और विचार करना। और इसमें तो कोई, इसमें कोई झगड़े का कारण नहीं है।
वह दूसरे दिन आया और उसने कहा कि तुमने जो बातें कहीं, वे मेरे भीतर हैं। इसलिए मैं धन्यवाद देता हूं। और भी तुम्हें कोई बुराई कभी मुझमें दिखाई पड़े, तो संकोच मत करना, मुझे रोकना और बता देना।
ऐसा व्यक्ति होना चाहिए। ऐसा हमारा चिंतन होना चाहिए। ऐसी हमारी दृष्टि होनी चाहिए। और ऐसा आदमी बहुत दिन तक बुराइयों में नहीं रह सकता, उसका जीवन तो बदल जाएगा। और इतनी सरलता होनी चाहिए। तो ऐसा सरल मनुष्य परमात्मा से ज्यादा दिन दूर नहीं रह सकता। इतनी सरलता होनी चाहिए। इतनी ह्युमिलिटी होनी चाहिए। इतनी विनम्रता होनी चाहिए मन की, इतना मुक्तपन होना चाहिए कि हम अपनी बुराइयां देख सकें, अपने ठीक-ठीक व्यक्तित्व को देख सकें, और झूठे व्यक्तित्व से बचने का साहस कर सकें।
नहीं तो सारे लोग करीब-करीब अभिनेता हो जाते हैं। जो उनके भीतर नहीं होता, उसको ओढ़ते हैं; जो नहीं होता, उसको दिखलाते हैं। और तब फिर चित्त कठिन और जटिल होता चला जाता है।
छोटी उम्र से अगर यह बोध तुम्हारे मन में आ जाए कि मुझे अपने भीतर कम
से कम अपनी सच्चाई को जानने की सतत चेष्टा में संलग्न रहना चाहिए। जो भी मेरे भीतर है, उसे देखने का मुझमें साहस होना चाहिए। उसे ढांकना, उसे ओढ़ना, उसे छिपाना... किससे छिपाएंगे हम? दूसरों से छिपा लेंगे, लेकिन खुद से कैसे छिपाएंगे? और जिस बात को हम छिपाते चले जाएंगे, वह जिंदा रहेगी, वह मिटेगी नहीं। उसे उघाड़ें और देखें और पहचानें। और जब उसकी पीड़ा अनुभव होगी, तो उसकी बदलाहट का विचार, उसको परिवर्तन करने का ख्याल, उसे स्वस्थ करने की वृत्ति भी पैदा होती है। और सबसे बड़ी बात है, इस सारी प्रक्रिया में चित्त सरल होता चला जाता है। इस सारी प्रक्रिया में चित्त में एक तरह की अदभुत शांति और सरलता आने लगती है। क्योंकि कुछ छिपाने को नहीं होता, तो आदमी जटिल नहीं होता है। और जो व्यक्ति इतना सजग हो कि उसे अहंकार का भाव न पैदा हो कि मैं कुछ हूं खास। जब उसे ऐसा दिखाई पड़ने लगे--जैसे घास-पात है, जैसे वृक्ष हैं, पशु हैं, पक्षी हैं; जैसे और सारी दुनिया है, वैसा मैं हूं। इस सारे विराट जीवन का एक छोटा सा टुकड़ा, एक अत्यंत छोटा सा अणु; मेरा होना

कोई बहुत मूल्य नहीं रखता, मेरे होने का कोई बहुत अर्थ नहीं है, मैं बिल्कुल ना-कुछ हूं।
अगर यह ख्याल भीतर निरंतर बैठता चला जाए, तो एक दिन तुम पाओगी, तुम्हारा मन दर्पण की भांति निर्दोष हो गया। एक दिन तुम पाओगी, तुम्हारे हृदय में एक ऐसी शांति आई है, जो अपूर्व है। एक दिन तुम पाओगी, एक ऐसा सन्नाटा आया है जिसको तुमने कभी नहीं जाना था। एक ऐसा अज्ञात आनंद तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाएगा जिसकी तुम्हें अभी कोई भी खबर नहीं है। और उस दिन तुम्हारे जीवन में नये अंकुरण होंगे, तुम्हारा जीवन धीरे-धीरे परमात्मा के जीवन में विकसित होने लगेगा।
एक छोटी सी कहानी, और मैं चर्चा को पूरा करूंगा। फिर तुम्हें कुछ प्रश्न होंगे इस संबंध में, तो वह रात्रि मैं बात करूंगा।
लाओत्से नाम का एक बहुत अदभुत फकीर चीन में हुआ। वह इतना विनम्र और सरल व्यक्ति था, इतना अदभुत व्यक्ति था, ऐसे उसकी एक-एक अंतर्दृष्टि बहुमूल्य है, उसके एक-एक शब्द में इतना अमृत है, उसके एक-एक शब्द में इतना सत्य है जिसका कोई हिसाब नहीं, लेकिन आदमी वह बहुत सीधा और सरल था। खुद सम्राट के कानों तक उसकी खबर पहुंची। और सम्राट ने कहा कि मैंने सुना है, यह लाओत्से नाम का जो व्यक्ति है, बहुत अति असाधारण है, बहुत एक्सटर आर्डिनरी है; सामान्यजन नहीं है, बहुत असामान्य है, बहुत असाधारण है।
तो उसके वजीरों ने कहाः यह बात तो सच है, उससे ज्यादा असाधारण व्यक्ति
इस समय पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।
सम्राट उसे देखने गया। सम्राट देखने गया, तो उसने सोचा था, कोई बहुत महिमाशाली, कोई बहुत प्रकाश को युक्त, कोई बहुत अदभुत व्यक्तित्व का कोई बहुत प्रभावशाली व्यक्ति होगा। लेकिन जब वह द्वार पर पहुंचा, तो उस झोपड़े के बाहर ही छोटी सी बगिया थी और लाओत्से उस बगिया में अपनी कुदाली लेकर मिट्टी खोद रहा था। सम्राट ने उससे पूछाः बागवान, लाओत्से कहां है? क्योंकि यह तो कोई ख्याल ही नहीं कर सकता था कि यही लाओत्से होगा। फटे से कपड़े पहने हुए बाहर मिट्टी खोद रहा हो, इसकी तो कल्पना नहीं हो सकती थी, सीधा-साधा किसान जैसा मालूम होता था।
लाओत्से ने कहाः भीतर चलें, बैठें, मैं अभी लाओत्से को बुला कर आ जाता हूं।
सम्राट भीतर जाकर बैठा और प्रतीक्षा करने लगा। वह जो लाओत्से था जो बगीचे में मिट्टी खोद रहा था, वह पीछे के रास्ते से गया, झोपड़े में से अंदर आया, आकर नमस्कार किया और कहाः मैं ही लाओत्से हूं।
राजा बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः तुम तो वही बागवान मालूम होते हो जो बाहर थे।
उसने कहाः मैं ही लाओत्से हूं। कसूर माफ करें, क्षमा करें कि मैं छोटा
सा काम कर रहा था। लेकिन आप कैसे आए?
उस राजा ने कहाः मैंने तो सुना है कि तुम बहुत असाधारण व्यक्ति हो। तुम तो एकदम साधारण मालूम होते हो।
लाओत्से बोलाः मैं बिल्कुल ही साधारण हूं। आपको किसी ने गलत खबर दे दी।
राजा वापस लौट गया। अपने मंत्रियों से उसने जाकर कहा कि तुम कैसे नासमझ हो, एक साधारणजन के पास मुझे भेज दिया।
उन सारे लोगों ने कहाः उस आदमी की यही असाधारणता है कि वह एकदम साधारण है। मंत्रियों ने कहाः उस आदमी की यही खूबी है कि वह एकदम साधारण है। साधारण से साधारण आदमी भी यह स्वीकार करने को राजी नहीं होता कि वह साधारण है। उस आदमी की यही खूबी है, यही विशिष्टता है कि उसने कुछ भी असाधारण होने की इच्छा नहीं की, वह एकदम साधारण हो गया है।
राजा दुबारा गया। और उसने लाओत्से से पूछा कि तुम्हें यह साधारण होने
का ख्याल कैसे पैदा हुआ? तुम साधारण कैसे बने?
उसने कहाः अगर मैं कोशिश करके साधारण बनता, तो फिर साधारण बन ही नहीं सकता था। क्योंकि कोशिश करने में तो आदमी असाधारण बन जाता है। नहीं, मुझे तो दिखाई पड़ा, और मैं एकदम साधारण था, मैंने अनुभव कर लिया, बना नहीं।

मैंने जाना कि मैं साधारण हूं। मैं बना नहीं हूं साधारण। क्योंकि बनने की कोशिश में तो आदमी असाधारण बन जाता है। मैं बना नहीं, मैंने तो जाना जीवन को, पहचाना। मैंने पाया, मुझे न मृत्यु का पता है, न जन्म का पता है। मैंने पाया, यह श्वास क्यों चलती है, यह मुझे पता नहीं; यह खून क्यों बहता है, यह मुझे पता नहीं। मुझे भूख क्यों लगती है, मुझे प्यास क्यों लगती है, यह मुझे पता नहीं। मैंने पाया, मैं तो बिल्कुल अज्ञानी हूं। फिर मैंने पाया, मैं तो बिल्कुल अशक्त हूं, मेरी कोई शक्ति नहीं। फिर मैंने पाया, मैं तो कुछ विशिष्ट नहीं हूं। जैसी दो आंखें दूसरों को हैं, वैसी दो आंखें मेरे पास हैं; जैसे दो हाथ दूसरों के पास हैं, वैसे दो हाथ मेरे पास हैं। मैं तो एक अति सामान्य व्यक्ति हूं, यह मैंने देखा, पहचाना। मैं साधारण बना नहीं हूं, मैंने तो देखा और समझा और पाया, तो मैंने पाया कि मैं साधारण हूं। लेकिन यह घटना ऐसे घटी, कि मैं एक जंगल गया था, लाओत्से ने कहाः और वहां मैंने लोगों को लकड़ियां काटते देखा। बड़े-बड़े दरख्त काटे जा रहे थे, ऊंचे-ऊंचे दरख्त काटे जा रहे थे, सारा जंगल कट रहा था, बढ़ई लगे हुए थे और जंगल कट रहा था। लेकिन बीच जंगल में एक बहुत बड़ा दरख्त था, इतना बड़ा दरख्त था कि उसकी छाया इतने दूर तक फैल गई थी, वह इतना पुराना और प्राचीन मालूम होता था कि उसके नीचे एक हजार बैलगाड़ियां विश्राम कर सकती थीं, इतनी उसकी छाया थी। तो मैंने अपने मित्रों से कहा कि जाओ और पूछो, इस दरख्त को कोई क्यों नहीं काटता है? यह दरख्त इतना बड़ा कैसे हो गया? जहां पूरा जंगल कट रहा है, वहां एक इतना बड़ा दरख्त कैसे? जहां सब दरख्त ठूंठ रह गए हैं, जहां नये दरख्त काटे जा रहे हैं रोज, वहां यह इतना बड़ा दरख्त कैसे बच रहा? इसको क्यों लोगों ने छोड़ दिया?
तो मेरे मित्र और मैं वहां गए, और मैंने वृद्ध बढ़इयों से पूछा, जो लकड़ियां काटते थे, कि यह इतना दरख्त बड़ा कैसे हो गया?
उन्होंने कहाः यह दरख्त बड़ा अजीब है। यह दरख्त बिल्कुल साधारण है। इसके पत्ते कोई जानवर नहीं खाते। इसकी लकड़ियों को जलाया नहीं जा सकता, वे धुआं करती हैं। इसकी लकड़ियां बिल्कुल एड़ी-टेढ़ी हैं, इनको काट कर फर्नीचर नहीं बनाया जा सकता, द्वार-दरवाजे नहीं बनाए जा सकते। दरख्त बिल्कुल बेकार है, बिल्कुल साधारण है। इसलिए इसको कोई काटता नहीं। लेकिन जो दरख्त सीधा है और ऊंचा गया है, उसे काटा जाता है, उसके खंभे बनाए जाते हैं। लाओत्से हटा और वापस लौट आया। और उसने कहाः उस दिन से मैं समझ गया कि अगर सच में तुम्हें जीवन में बड़ा होना है, तो उस दरख्त की भांति हो जाओ जो बिल्कुल साधारण है, जिसके पत्ते भी अर्थ के नहीं, जिसकी लकड़ी भी अर्थ की नहीं। तो उस दिन से मैं वैसा ही दरख्त हो गया, बेकार। मैंने फिर सारी महत्वाकांक्षा छोड़ दी--बड़ा होने की, ऊंचा होने की। असाधारण होने की सारी दौड़ छोड़ दी। क्योंकि मैंने पाया कि जो ऊपर होना चाहेगा, वह काटा जाएगा। मैंने पाया कि जो बड़ा होना चाहेगा, वह काट कर छोटा कर दिया जाएगा। मैंने पाया कि प्रतियोगिता में, प्रतिस्पर्धा में, महत्वाकांक्षा में सिवाय मृत्यु के और कुछ भी नहीं है। और तब मैं अति साधारण, जैसा मैं था, ना-कुछ, चुपचाप वैसा ही बैठ रहा। और जिस दिन मैंने सारी दौड़ छोड़ दी, उसी दिन मैंने पाया कि मेरे भीतर कोई अदभुत चीज का जन्म हो गया है। उसी दिन मैंने पाया कि मेरे भीतर परमात्मा के अनुभव की शुरुआत हो गई है।
जो व्यक्ति साधारण से साधारण और सरल से सरल होने को राजी हो जाता है, सत्य खुद उसके द्वार आ जाता है। और जो व्यक्ति असाधारण होने की, विशिष्ट होने की, बड़ा होने की, महत्वाकांक्षा होने की, अहंकार को तृप्त करने की दौड़ में पड़ जाता है, उसके जीवन में असत्य घना से घना होता जाता है और सत्य से उसके संबंध सदा के लिए क्षीण होते जाते हैं। अंततः-अंततः उसके पास झूठ का एक ढेर रह जाता है और सत्य की कोई भी किरण नहीं। लेकिन जो सरल हो जाता है, सीधा, साधारण, सामान्य, उसके जीवन में झूठ की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती, उसके जीवन में सत्य की किरण का जन्म होता है और सारा अंधकार समाप्त हो जाता है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं सरलता के लिए, इन पर विचार करना, इन पर सोचना, अपने जीवन में निरीक्षण करना और देखना कि क्या तुम्हारे जीवन में

सरलता बढ़ रही है या जटिलता बढ़ रही है? अगर जटिलता बढ़ रही हो तो समझना कि तुमने गलत मार्ग चुना है--और जीवन के अंत में तुम्हें विफलता मिलेगी, दुख मिलेगा, पीड़ा, चिंता के अतिरिक्त तुम्हारे हाथ में कुछ भी नहीं आएगा। और अगर तुमने सरलता का मार्ग जीवन में चुना, और स्मरणपूर्वक रोज सरल से सरल होती गईं, तो तुम पाओगी कि बचपन में जो आनंद था, उससे बहुत बड़ा आनंद निरंतर बढ़ता जाएगा। और बुढ़ापा तुम्हारा एक अदभुत गौरव-कलश की भांति होगा, जिसमें आनंद की पूरी छाया, जिसमें आनंद की पूरी अनुभूति, जिसमें एक आंतरिक सौंदर्य, सत्य का एक बल, और जिसमें आंतरिक रूप से अमृत का अनुभव, उसका अनुभव जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती है, उपलब्ध होता है।
इन पर तुम विचार करना, इन पर तुम सोचना और अपने जीवन से तौलना कि तुम्हारे जीवन की दिशा क्या है।
स्मरण रहे, जो व्यक्ति भी परमात्मा की दिशा के प्रतिकूल जाता है, वह अपने ही हाथों अपने को नष्ट कर लेता है। और जो व्यक्ति परमात्मा की दिशा में चरण उठाता है, वह धीरे-धीरे विकसित होता है, उसके भीतर अनुभूतियां घनी होती हैं, उसके जीवन में अर्थ आता है, उसके जीवन में बहुत आंतरिक संपदा आती है, और अंततः उसे कृतार्थता और धन्यता का अनुभव होता है।

इन बातों को इतनी शांति और प्रेम से तुम सुनती रही हो, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। जो तुम्हारे प्रश्न हों, वह मैं रात उत्तर दे सकूंगा।